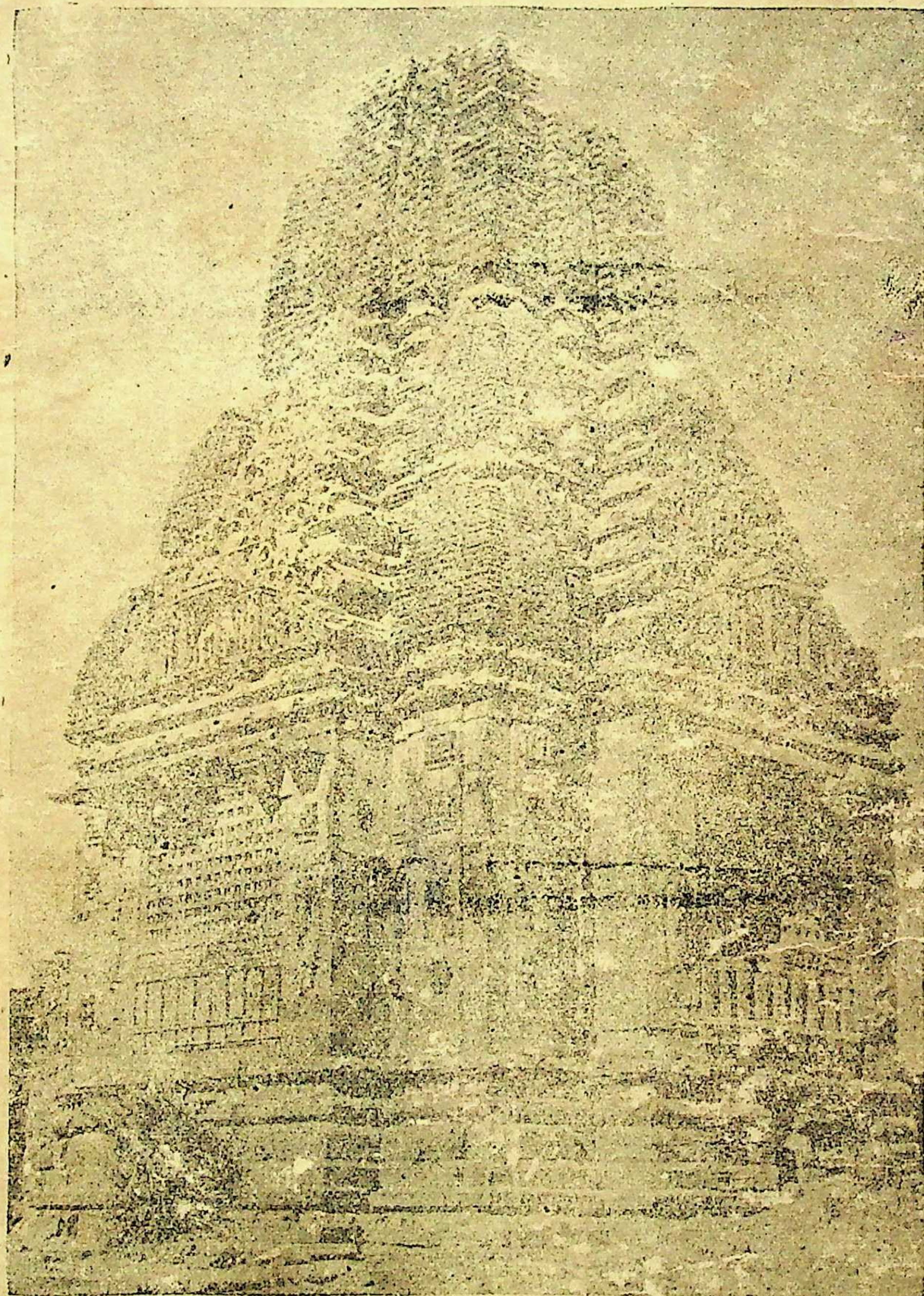
प्रासादमञ्जरी

PRASADA-MANJARI



संपादक–प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुरा,

[illegible]

॥ श्री विश्वकर्मणे नमः ॥

सूत्रधार नाथजी विरचित वास्तुमञ्जर्यान्तर्गत

॥ प्रासादमञ्जरी ॥

॥ सुप्रभ नाम्नी भाषाटीका ॥

PRASADAMANJARI.

BY

SUTRADHARA : NATHJI.

संपादक

स्थपति : प्रभाशंकर ओघडभाइ सोमपुरा

शिल्प विशारद – पालीताणा सौराष्ट्र

भूमिका :

डो. वासुदेवशरण अग्रवालजी

अध्यापक–हिन्दु युनिवर्सिटि–बनारस–वाराणसी.

: प्रकाशक :

श्री बलवंतराय प्र० सोमपुरा एवं भ्राताओ

वि. सं. २०२१ सने १९६५

ग्रंथ प्राप्तिस्थान :

स्थपति प्रभाशंकर ओ. सोमपुरा, शिल्पविशारद
गोरावाडी, शिल्पिनिवास-पालीताणा-(सौराष्ट्र)

*

श्री बलवंतराय प्र. सोमपुरा
३. पथीक सोसायटी
सरदार पटेल कोलोनी-अहमदाबाद नं.१३

*

गुर्जर ग्रंथरत्न कार्यालय,
गांधी रोड—अहमदाबाद

भारतीय विद्याभवन
चोपाटी रोड
बंबइ ७

*

एन. एम. त्रिपाठी एण्ड कुं.
प्रिन्सेस स्ट्रीट—बंबइ २

सरस्वती पुस्तक भंडार,
रतनपोळ-हाथीखाना
अहमदाबाद

*　*　*



प्रथमावृत्ति :
प्रत १०००—हिन्दी अनुवाद तथा मूल
प्रत १०००—गुजराती अनुवाद तथा मूल

प्रत्येकका मूल्य :
रुपीया ६—५०
पोस्टेज पृथक

मुद्रक : श्री चंदुलाल लल्लुभाई भट्ट : अपना छापखाना : भावनगर (सौराष्ट्र)

देव स्तुति तथा ग्रंथकर्ता का परिचय

गणाधिपं नमस्कृत्य देवीं सरस्वतीं तथा
ब्रह्मा विष्णु महेशादिं सूर्यं दिनकरं सदा ॥१॥

शिल्पशास्त्रप्रकर्त्तारं विश्वकर्मा महामुनिम् ।
मनसा वचसा नत्वा ग्रंथारम्भ करोम्यहम् ॥२॥

गणोंके अधिपति श्री गणेश, देवी सरस्वती, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिको और दिनको प्रज्वलित करने वाले सूर्यको नमस्कार करके शिल्पशास्त्रोको उत्कृष्ट करनेवाले (प्रयोजक) महामुनि श्री विश्वकर्माको मनवचनसे वंदन करके में प्रभाशंकर इस ग्रंथके अनुवादका प्रारंभ करता हूं।

वंशेऽस्मिन् रामजी शिल्पी ख्यातोऽवं वास्तुकर्मणि ।
तस्मिन्नैवान्वयेजातः प्रभाशङ्करः पञ्चमः ॥३॥

सूत्रधार इति ख्यातो नाथनामाभिधानवान् ।
वास्तुमञ्जरी नामाऽयं ग्रंथः प्राणकृतवान् शिवः ॥४॥

तस्मिन्नैवान्तरगते प्रासादमञ्जरी संज्ञके ।
सुप्रबोधिनीं टीकां ग्रन्थेऽस्मिन् हि करोति सः ॥५॥

भारद्वाज गोत्र जिसमें श्री रामजीभा जेसे वास्तुकर्म में प्रख्यात शिल्पी हो गये। ऊसी कुलमे श्री ओघडभाइ के कनिष्ठ पुत्र प्रभाशङ्कर पांचवी पीढीमें हुए। नाथजी नामके विख्यात सूत्रधारने कल्याणकारी "वास्तुमञ्जरी ग्रन्थ सोलहवीं शताब्दिमें" लिखा। जिसके अंतर्गत "प्रासाद मञ्जरी नामके ग्रन्थ पर सुप्रबोधिनी नामकी टीका उसी विख्यात कुलमें पैदा हुए स्थपति श्री प्रभाशंकरने लिखी है।

ગણોના અધિપતિ એવા શ્રી ગણપતિને, શ્રી સરસ્વતી દેવી અને બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને મહેશ આદિ દેવોને અને દિવસને ઉજ્જ્વળ કરનારા એવા સૂર્યનારાયણને નમસ્કાર કરીને તથા શિલ્પશાસ્ત્રના ઉત્કૃષ્ટ કરનારા (પ્રયોજક) મહામુનિ શ્રી વિશ્વકર્માને મન અને વાણીથી નમસ્કાર કરીને હું પ્રભાશંકર આ ગ્રંથના અનુવાદનો પ્રારંભ કરૂં છું.

વાસ્તુકર્મમાં પ્રખ્યાત એવા જે ભારદ્વાજ ગોત્રમાં શ્રી રામજીભા નામના સ્થપતિ થયા તેમના વંશમાં પાંચમા શ્રી પ્રભાશંકર જે સ્થપતિ ઓઘડભાઇના કનિષ્ઠ પુત્ર થયા તેઓએ શ્રીનાથજી નામના વિખ્યાત સૂત્રધારે કલ્યાણકારી "વાસ્તુમંજરી" નામનો ગ્રંથ પહેલાં સોળમી સદીમાં રચેલો. તેના અંતર્ગત "પ્રાસાદ મંજરી" નામનો ગ્રંથ ઉપર સુપ્રબોધિની નામની ટીકા તે પ્રસિદ્ધ વંશકુળમાં ઉત્પન્ન થયેલા શ્રી પ્રભાશંકર સ્થપતિએ કરી.

अभिनन्दनपत्रम्

॥ श्री शंकरः पातु वः ॥

इह खलु गीर्वाणगीर्ज्ञा विपश्चितोऽविपश्चितश्च जनन्ति ब्रह्मस्वरूपिणं शिल्पशास्त्रदक्षं वहुकलाप्रवीणं नाम प्रभाशंकरम्। सोमपुराविप्रसमाजे जरीजागर्ति तस्य विपुलं यशः, तद्यथा—

श्लोक—मुदाधिकयोत्फुल्लं द्विजवरशतास्य श्रुतिखावलि ।
व्याप्तं शश्वज्जयतु यमुने पालितानः ॥
प्रभा पूर्वो यत्र द्विज कपटवेषी स्मरहरः ।
गृहिणी तु पार्वती रूपा मोतीबाईति विश्रुता ॥ १ ॥

अनेक शिल्पशास्त्रेषु कृत भूरि परिश्रमः ।
ओघडभाई जनकस्तस्य शिल्पशास्त्रसुदीक्षितः ॥ २ ॥

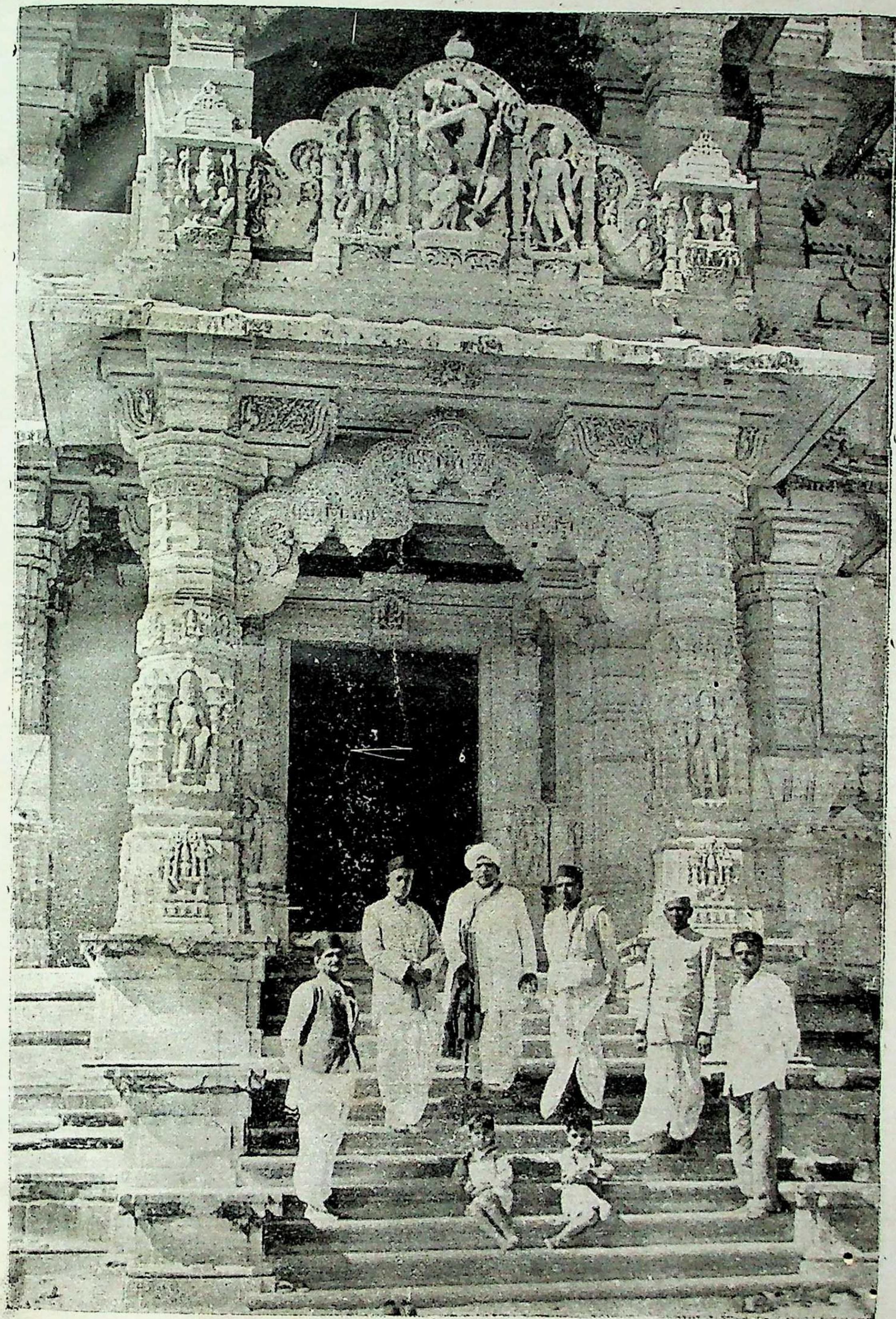
स साक्षा त्त्विश्वकर्मा हि जगत्यां मन्यते बुधैः ।
क्षीरार्णव टीकायां चमत्कारः प्रदर्शितः ॥ ३ ॥

वेधवास्तु प्रभाकरस्य टीका ग्रन्थान्नधीत्यापि सः ।
वेदाया प्रासादतिलकमुभयं शास्त्रान्समभ्यस्य च ॥
नूतनाचैक स्वहस्तलेखनकला लोके समक्षीकृता ।
सोयं वै विदधातु तस्य मनसः कीर्तिं सदा माधवः ॥ ४ ॥

सर्वशास्त्रान् समाधीत्य शुद्धाशुद्धिविवेकतः ।
निरमापि प्रयत्नेन प्रभाशंकर धीमता ॥ ५ ॥

तत्र भवतां शुभचिंतकः।
पं. चुन्नीलाल व्याकरणाचार्यः
ठे. नगरापाइसा, मु. मथुरा.

अद्यावधि न केनापि विदुषा पूर्वोक्तानां ग्रन्थानामेतादृशी टीका निर्मिता निर्मायिता च। यस्याः पठनमात्रेण पामरोपि वुधायते। किमधिकंजल्पितेनेतिशम्।





१ श्री सोमनाथ प्रासादके निर्माता श्री प्रभाशंकरजी. २ राष्ट्रपति डो. राजेन्द्रप्रसादजी.
३ ना. जामसाहेब.

प्रस्तावना

देशकी संस्कृतिका मूल्य प्राचीन स्थापत्य और साहित्य पर निर्भर है। विद्या और कला देशका अनमोल धन है। शिल्प स्थापत्य मानव जीवन का अत्यंत उपयोगी और मर्मसे भरा हुआ अंग है। अुसके द्वारा ही प्रजा जीवनका विकास, सुघडता, ध्येय, कलाप्रियता स्पष्ट देखनेमें आता है। यह फन हृदय और चक्षु दोनोंको आकर्षित करता है। शिल्प सौंदर्य मात्र तरंग नहीं है किन्तु हृदयका भरपूर भाव है। जगतमें भारतीय स्थापत्य अुच्च कोटिका और गौरवान्वित करे अैसा है। धर्मबुद्धिसे प्रेरित होकर भारतमें सर्व साहित्यका प्रारंभ हुआ है। इससे शिल्प शास्त्रभी धर्मभावना के साथ संकलित हुआ है और अुसकी बुद्धि पूर्वककी रचना प्राचीन ऋषि मुनियोंने की है।

प्रागैतिहासिक कालमे संसारके प्रत्येक प्राणीको शीत. ताप वर्षा आदि विविध प्राकृतिक कठिनाअी के सामने अपनी रक्षाकी जरूरत महसूस हुअी। अिसीसे वास्तु विद्याका प्रारंभ स्थूलरूपसे आदि कालसे हुआ मनाया जाय। जिस तरह भूचरोंने जमीनमें बिल बनाया, खेचरोंने घोंसला बनाया, अुसी तरह मनुष्यने भी घासफूसकी पर्णकुटी बनायी या तो पहाडोमें गुफा खोज वास किया है। अिस तरह मानव निवास के प्रारंभ के बाद सामुहिक वासका ग्राम स्वरूप और बादमें नगररूप देखनेमें आता है। मानव सभ्यताके साथ ही शिल्प विज्ञानका विकास क्रमशः होता रहा।

भारतीय वास्तुविद्याका प्रारंभ काल बहुत प्राचीन है। वेद, ब्राह्मणग्रंथ, पुरान, रामायण, महाभारत, जैन आगम ग्रंथ, बौद्धग्रंथ, संहिता, और स्मृति ग्रंथोंमें भी वास्तुविद्याके अुल्लेख पाये जाते हैं। ऋग्वेदादिमें वास्तुविद्याके वर्णन और अन्य उल्लेख जब नजर आते है तब ज्ञात होता है कि अिनके भी पूर्व कालमें यह विद्या व्यवहारमें होनी चाहिये। अथर्व वेदके सूक्तोंमें स्थापत्य कलाके बारेमें बहुत कुछ कहा है। शिल्प शब्दका प्रथम अुपयोग ब्राह्मणग्रन्थोंमें हुआ है। प्रतिमा पूजनका प्रारंभ वैदिक ब्राह्मण युगमें हुआ है। आश्वलायन गृह्यसूत्र और अन्य सूत्रग्रंथोमें वास्तुविद्याके कितने सिद्धांत देखने मिलते हैं। सामवेदमें गृह्यसूत्र गोभिल में वास्तुविद्याके सिद्धांत दिये हैं। घरका द्वार किस दिशामें रखना, अिसका फल क्या है, किन किन दिशा या विदिशाओंमें कौन कौनसे वृक्ष बोना, भूमिफल, स्तुति, भूमि परीक्षा, रस, वर्ण, गंध, प्लव (ढाल) और आकार परसे कहे हैं।

प्राचीन आर्ययुगमें यह कला सरल रूपमें अल्पजीवी पदार्थ युक्त थी। काष्ठ, पाषाण, बादमें इष्टिका, धातु आदि वास्तु द्रव्योंका अुपयोग शनैः शनैः होता गया। रामचरित मानस और महाभारत जैसे अैतिहासिक महाकाव्योंमें देवालय, महालय और सामान्य गृहोंके विविध वर्णनके शाब्दिक चित्र हैं। मानव उत्क्रांतिके साथसाथ शिल्प विद्याका भी विकास होता गया।

समरांगण सूत्रधार और अपराजित सूत्रसंतानमें वास्तुउद्भवकी पौराणिक आख्यायिकाओंमें अेक मनोरंजक कथा है। पृथ्वीके विकासके प्रारंभकालमें पृथुराजासे भयत्रस्त पृथ्वी सृष्टिकर्ता ब्रह्माके पास गअी। और अपने पर गुजरते त्रासका निवेदन किया। ब्रह्माजीने पृथुराजको बुलाया और हकीकत पूछी। पृथुने ब्रह्माजीसे प्रार्थना करते हुअे कहा कि हे जगन्नाथ, आपने मुझको जगतस्वामि बनाया। पृथ्वी के अूपर तो गढे, टीले, पर्वत आदि बहुत हैं तो वर्णाश्रमधर्मके योग्य लोगों के वास के लीये समतल भूमि बनाना अनिवार्य है ही। अिसके सिवा उपाय क्या है? महाराजा पृथुकी बात सुनकर, दोनोंको शांत करके प्रजापतिने कहा "हे महीपाल, आप मही याने कि पृथ्वीका विधिवत् पालन करें तभी यह पृथ्वी निस्संदेह निष्पाप होकर आप और समस्त प्राणिवर्गके उपभोगके लिये योग्य बनेगी। अपने स्थानादि के लिये सर्व सिद्धि प्रवर्तक भृगुऋषिके भानजे (प्रभास के पुत्र) विश्वकर्माका बहुमान करे, अुनकी सेवा संपादन करें। वे बृहस्पतिसम प्रखरबुद्धिवाले हैं। वे आपके राज्यमें पुर, ग्राम, नगर गृहादि बसायेंगे जिससे यह पृथ्वी स्वर्गसम बसने योग्य बनेगी। अतः हे वत्स, तुम जाओ अपना काम करो। और हे पृथ्वी, तुम भी भय छोडके राजा पृथुकी प्रियंकर बनो और हे विश्वकर्मा आप भी राजा प्रजाके अिच्छित कार्य कीजिये॥" अिस तरह पृथुराजाने विश्वकर्माकी सेवा प्राप्त की और पृथ्वीको शिल्प-स्थापत्यसे सजाया।

जैन आगम ग्रंथोमें भी वास्तुदेवों के नाम और अुनकी बलिपूजादि विधियां दी गयी है। अुस संप्रदायके स्थापत्योमें चैत्य, स्तूप, विहार और स्तंभोंकी प्रथा थी। बौद्धोंने भी अुनका अनुसरण किया या नहीं यह बात खोजनेकी है। ईसवीसनके पूर्वका मथुरामें अेक जैन स्तूप था। जैन आगमोंमें देवालय को चैत्य कहते हैं। जैनसाधुओंके वासके लिये विहारकी प्रथा अुस संप्रदाय में थी। अिस प्रथामें परिवर्तन हुआ और वर्तमानमें शहेरोंमें "उपाश्रय" होने लगे। जैनोंमें स्तंभकी प्रथा अबतक दिगम्बर संप्रदायमें मौजुद है।

भगवान वृषभदेवके बाद अुनके पुत्र भरत चक्रवर्ती और बाहुबलीने कअी

स्थापत्योंकी रचना की, और अुसका व्योरा जैन ग्रंथोमें किया गया है । बाहुबली ने तक्षशिला बसायी जहाँ इक्कीस इक्कीस २१×२१ प्रत्येक बाजूके मंडपवाला चतुर्मुख प्रासाद अुन्होंने बंधाया भरतचक्रवर्तीके पुत्र सोमयशाने त्रैलोक्य दीपक नामका प्रासाद बनाया जिसका अद्‌भुत वर्णन जैन ग्रंथोंमें है । पवित्र शत्रुंजय नदीकी पूर्वमें और दक्षिणमें "सुरविश्राम" और "रत्न तिलक" नामके प्रासाद, और गिरनार पर "सुरसुंदर" नामके चतुर्मुख प्रासादके अिर्दगिर्द ४×११ चौवालीस मंडपवाला उद्यान सहित प्रासाद और पश्चिममें "स्वस्तिका-वर्तिक" नामका प्रासाद भी बनवाया था ।

भरत चक्रवर्तीने अष्टापद पर्वतपर की जहाँ ऋषभदेव के अग्नि संस्कार हुअे थे अुसी स्थलपर तीन बडे स्तूप बंधाये और अेक योजन लंबा और चौडा चतुर्मुख 'सिंहनिषद्या" नामक प्रासाद बनवाया और वहाँ पर अूँचा स्तूप और छोटे छोटे स्तूप बँधाये । अिन सबोंके वर्णन जैन ग्रंथोमें दिये हैं । परंतु अुनके अवशेष आज देखनेमें आते नहीं ।

महाभारतकी पांडवोंकी सभाका वर्णन देते हुअे "विश्वकर्मा" या "मय" स्थपतिके स्थानपर अर्जुनके मित्र मणिचुडविद्याधरने विद्याबलसे इंद्रसभा जैसी नवीन सभाका निर्माण किया था अैसा वर्णन दिया है ।

बौद्ध संप्रदायके स्थापत्योमें भी जैनियों जैसी चैत्य. स्तूप विहार और स्तंभकी प्रथा विद्यमान थी । बुद्ध निर्वाण के दो शताब्दि बाद प्रतिमा पूजनका प्रारंभ हुआ । अुनके अूपर देवालय बनाये गये जिनको चैत्य कहते हैं। बुद्ध या अुनके संप्रदायके महापुरुषोंके अस्थि, बाल, या भस्मके अूपर स्मारक बनानेमें आते । अैसे स्थापत्यको "स्तूप (उलटे टोकरेके आकारका)" कहते हैं । बौद्रसाधुओंके रहनेके या अध्ययन करनेके स्थानको "विहार" कहते हैं । खुद बुद्ध भगवानने विहारके मापके बारेमें कहा है । बुद्ध भगवानने जहाँ जहाँ वास किया हो या अुपदेश दिया हो, अैसे पवित्र स्थानोंपर अनुयायीयोंने स्मृतिरूप विशाल "स्तंभ" खडे किये हैं । वर्तमानमें यह सब स्थापत्य संपूर्ण रूपसे या अवशेष रूपमें देखनेमें आते हैं ।

वैदिक, जैन, या बौद्धसंप्रदायकी कंदराअें बनाअी जानेके बाद देवालयोंको बांधनेकी प्रथा शुरु हुअीं होगी अैसा माननेका कारण मिलता है । देशके पृथक पृथक भागोंमें कंदराअें बन सके अैसी गिरिमालाअें मौजुद हैं । वहाँ पहले तो सरल रूपमें गुफाअें होने लगीं और बादमें घाट और नक्काशी कामसे अलंकृत होने लगीं । अिनमेंसे कअी गुहाओंकी छत काष्ठकी प्रतिकृति रूप हैं । अैसा माना जाय कि यह कला लकडीपरसे पत्थरमें उतरी । अैसी कलामय गुफाओंकी छत-

दिवारोंपर पौराणिक धार्मिक प्रसंग सुंदर मूर्तिओंके साथ तराशी गयी हैं। अुनको देखते ही जगत भरके कला रसिकोंके सर भारतीय शिल्पियोंके सामने झुक जाते हैं।

महाबलिपुरम्, धारापुरी, नासिक, भज, अजंटा अिलोरा बिहार अुडीसाकी उदयगिरि खंडगिरि इत्यादि गुफाअें दर्शनीय हैं। जहाँ शिल्पियोंने जड पत्थरको सजीव रूप दिया, और पुराण के कालका हूबहू प्रदर्शन किया, वैसे स्थानोंको देखकर गुणज्ञ प्रेक्षक शिल्पि की सर्जनशक्तिको सराहते हैं। यहाँपर टाँकीके शिल्पसे या (पीछी) तूलिकाके चित्रोंसे ये शिल्प अमर कृतियाँ सिरज गये हैं। अखंड पहाडमेंसे बनायी गयी इलोराके कलामंदिरकी रचना तो शिल्पिकी अद्भुत चातुर्यकलाका अजोड नमूना है।

मूर्तिपूजा और देवालयोंकी आवश्यकता

भारतके प्रत्येक संप्रदायमें मूर्तिपूजा प्रधान है। अुसके आरंभ कालके बारेमें विद्वानोंका मतभेद है। वेदोंमें मूर्तिके विषयमें उल्लेख हैं। ध्यान योगकी सिद्धिके लिये ज्ञानी महापुरुषोंने प्रतिमाकी जरूरी स्विकारी। वेदकालमें यज्ञके क्रियाकाडोंमें देवोंकी स्तुतिके साथ बलि दिये जाते थे। अिन देवोंके वर्णनमें अुनके आयुध, वाहन, वर्ण इत्यादिकी कल्पना परसे प्रतिमाका स्वरूप निर्माण हुआ। भक्तिमार्गमें प्रतिमा पूर्ण अवलंबनरूप होनेसे मूर्तिपूजाकी जरूरत खडी हुअी।

अिस विचारका मूल प्रारंभ निराकार लिङ्ग पूजनसे हुआ, जिसके बादमें ही साकार मूर्तियाँकी कल्पना पैदा हुअी। आर्यावर्तके सिवा पच्छमके देशोंमें आदम-इवाको पृथ्वीकी प्रजोत्पत्तिका आद्य मानने लगे। आर्यावर्तने अुनको शिव और शक्ति स्वरूपमें स्विकारा। बादमें वैदिक धर्ममें सर्जक, पालक और संहारक देवो-ब्रह्मा विष्णु और महेशकी कल्पना प्रादुर्भूत हुअी। धार्मिक दृष्टिसे साधक, साध्य और साधन अनुक्रमसे भक्त, प्रतिमा और मोक्ष,-माने जाते हैं।

प्रतिमा-मूर्तिकी जरूरत स्वीकार्य होनेके बाद देवालयोंकी आवश्यकता हुअी। त्रिमूर्ति और बादमें पंचदेव-ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, और सूर्य की पूजा भारतमें स्थल स्थल पर होने लगी। विविध तीर्थ स्थानोंके माहात्म्य अनुसार देव-देवियोंके मंदिर भारतके प्रत्येक प्रांतमें बंधाने लगे।

शिल्प स्थापत्यकी कितनी अेक शैलियोंका जन्म ही भारतीय आध्यात्मिक विचार धारा से हुआ है। पुनर्जन्म के सिद्धांत अनुसार जीव-प्राणी विकास करते करते अनेक उच्च कोटियोंमें जन्म लेते हुअे आखिरको ब्रह्ममें विलीन हो जाता हैं

यह सिद्धांत देवमंदिरके शिखररूप शंकु आकारमें समाया हुआ है। अिसमें भारतीय शिल्प पद्धति अंडसृष्टिके सिद्धांत की विलीनताका दर्शन कराती है। शिल्प की आध्यात्मिक भावनाका यह अेक स्पष्ट चिन्ह हैं। धर्मप्रवृत्तिसे ही धार्मिक स्थापत्य भारत भरमें खडे हुअे है। और अिनके द्वारा ही शिल्पि वर्गको प्रोत्साहन भी मिला है। प्राचीन कालमें शिल्पीको ब्रह्माका पुत्र मानते थे और अुसका पूजन होता था। अेशिया खंडमें जापानमें बौद्ध धर्मका प्रचार हुआ तब अुस देशकी राजमाताने वाखुशी मुनार्द द्वारा अपनी अिच्छा प्रदर्शित की थी कि "अपने राज्यके नगरों या अुद्यानोंमें शिल्पियोंके टाँकोंका गुंजार हमेशां सुनाता रहे"।

संहिता और स्मृतिग्रंथोंमें स्थापत्य ॥

अैसा कहा है कि चतुर्विध स्थापत्य, अष्टादश आयुर्वेद और ज्योतिष–अिन सब शास्त्रोंके मूल प्रवर्तक ब्रह्माजी हैं। चतुर्विध स्थापत्यमें (१) पुरनिवेशादि (२) भवन निर्माणादि (३) प्रासाद वास्तुशास्त्र (४) जलाशयादि का समावेश होता है। वास्तुविद्या अथर्ववेदका अुपवेद है। जिस तरह शुक्राचार्यजी कहते है अनंत विद्या और असंख्य कलाओंकी गिनती नहीं हो सकती किन्तु मुख्य विद्या बत्तीस ३२ हैं और मुख्य कला चौसठ ६४ अुन्होंने कही हैं। अिन विद्या और कलाओंकी व्याख्या देते हुअे शुक्राचार्यजी कहते हैं—

यद् यत्स्याद् वाचिकं सम्यक्कर्म विद्याभिसंज्ञितम्।
शक्तो मूकोऽपि यत्कर्तुं कलासंज्ञं तु तत्स्मृतम्॥

जो कार्य वाणीसे हो सके अुसे "विद्या" कहते हैं। और गूंगा भी जिस कार्यको कर सके वह कला। शिल्प, चित्र, नृत्य आदि मूक भावसे हो सकते है। अतः अुन सबको कला कहते हैं।

शुक्राचार्यजीने ६४ कला कही हैं। जैन सूत्रोंमें समुद्रपालने ७२ कला गिनाअी हैं। कामशास्त्रमें यशोधरने ६४ कला कही हैं जिन के अभ्यंतर भेदसे ५१२ कला दीं हैं। ललित विस्तारमें ६४, कामसूत्रमें २७ और श्रीमद् भागवतमें ६४ कही हैं। मालाकार (माली), लोहकार (लोहार) शंखकार (शंखके आभूषण बनाने वाला) सुवर्णकार (सुनार), कुलिन्दर (जुलाहा), कुंभकार (कुम्हार) केसकार (कसेरा), सूत्रधार और चित्रकार। अिस तरह कलाओंमे विविध हुन्नर का समावेश किया है। नृत्य, गीत, वादित्र ये सब कलाअें हैं। महाभारतमें विश्वकर्माको हजार शिल्पिका स्रष्टा कहा है।

भृगुसंहितामें महर्षि भृगुने १ धातुखंड, २ साधनखंड ३ वास्तुखंड का

वर्णन दिया है जिनमें (१)धातुखंडके तीन वर्ग कृषि, जल और खनिजखेती करना जलबाँध बनाना और जमीनमेंसे खनिज द्रव्य खोद कर निकालना ।

(२) साधनखंडमें "नौकारथाग्नियानानां कृतिः साधनमुच्यते । नौका, रथ, अग्निसे चलता वाहन (अेंजिन) ये तीन वाहन पृथ्वी पर रथ, अग्नियान, और जलमें नौकायान और हवामें व्योमयान "आकाशे अग्नियानं च व्योमयानं तदेव हि" अिस तरह जलचर, भूचर और खेचर तीन प्रकारके वाहन कहे हैं ।

(३) वास्तुखंडमें "वेश्मप्राकारनगररचना वास्तुसंज्ञितम्" मकान, किले, नगर, देवालय, जलाशय इत्यादि कहे हैं ।

आजीविकाके साधनकी हैसियतसे जिस कलाको मनुष्यने स्विकार किया, अुसी व्यवसाय वर्गके समूह के अनुसार ज्ञातियां हुअीं विविध कला विविध क्रिया-द्वारा होती हैं । मनुष्य जिस कलाका आश्रय लेता है अुसीके अनुसार अुसकी ज्ञाति या बिरादरीका नाम होता है । अिस तरह कलाके वर्ग अनुसार पेशेवाली ज्ञातियोंके समूह हुअे ।

वास्तुशास्त्र, शिल्प और स्थापत्यकी व्याख्या

वास्तु स्थापत्य और शिल्प शब्दकी स्पष्ट व्याख्या के अभावमें उनका मिश्र स्वरूप समजकर भाषा प्रयोग हम करते हैं किन्तु वास्तुशास्त्र अिन सर्वके विस्तृत अर्थमें है । अुसके अंतर्गत स्थापत्य और स्थापत्य के अंतर्गत शिल्प है—

वास्तुशास्त्र–स्थापत्य–शिल्प

वास्तुशास्त्र—देशपथ, नगर, दुर्ग, सरोवरादि जलाशय, उद्यान, वाटिका, आराम-स्थान, राजप्रासाद, देवप्रासाद, सामान्यगृह, शल्यज्ञान, सिराज्ञान, भूमि परीक्षा अिन सर्व विद्याके शास्त्र को वास्तुशास्त्र कहते हैं ।

स्थापत्य नगर, दुर्ग, जलाशय, राजप्रासाद, देवप्रासाद, सामान्य गृह इत्यादिका काम स्थापत्यमें आता है ।

शिल्प—दुर्गद्वार, राजभवन, देवप्रासाद, जलाशय, आदि स्थापत्योंमें सुशोभन, अलंकरण, गोखा, झरोखा वगेराह को अलंकृत करना इस कलाको शिल्प कहते हैं ।

स्थापत्य का विकास

भारतीय स्थापत्यका विकास बहुधा धार्मिक भावनासे हुआ है । देवमंदिरो के बाद राजाद्वारा नगर, दुर्ग और राजभवन हुए । धनिकोंने अपनी जरूरतके

मुताबिक अुदार वृत्तिसे इस कामको आगे बढाया। इसवीं पूर्व पाँचवीं शताब्दि के प्राचीन भग्नावशेष मिलते हैं जिनको देखकर हम कह सकते हैं कि यह विकास राजा और धनिकोंकी बदौलत ही हुआ है। इस देशकी शिल्प स्थापत्य और विद्याकला कौशल्यकी समृद्धि अजोड है जिसके वर्णन प्राचीन महाकाव्योंमें उपलब्ध हैं।

प्राचीन स्थापत्यके कालक्रमसे हम अैसा अंदाजा लगा सकते हैं कि दीर्घकालकी व्यवहारू अनुभूति के बादही स्थापत्यके नियम गढ़े गये थे। भारतके अलावा और प्रदेशोंमें भी अिसका असर देखनेमें आता है।

स्थापत्योंमें खास करके देवमंदिरोंके विविध विभागों की रूप पद्धति का विकास पृथक्पृथक् कालमें प्रत्येक विभागमें स्वयम् होता गया। धार्मिक मान्यता, भावना और साधनके योगसे भिन्नभिन्न रूपोंका अुद्भव हुआ है। अिससे यह कहना कि अमुक पद्धति चौकस संप्रदायकी है यह गलत है। अमुकरूपका प्रवर्त्तन अमुक संप्रदायने किया अिससे यह ब्राह्मणी, वैदिक, बौद्ध या जैन संप्रदाय की शैली है यह कहना ठीक नहीं, मनगढंत है। देशके चौकस विभागमें प्रचलित अेक या दूसरे संप्रदायकी शैलीमें देशके अुस विभागमें कालक्रमानुसार नवीं दसवीं शताब्दि पर्यंत स्थापत्योंके रूप संबंधी परिवर्तन होते ही रहे हैं, जिसके बाद ही स्थायी सिद्धांत तय हुअे होंगे अैसा मानना होता हे। पाश्चात्य विद्वान-लोग भारतीय स्थापत्य कलाके सांप्रदायिक भेद बताकर रचनाकी पहचान कराते हैं यह बिल्कुल असत्य हैं। ये तो मात्र कालभेद और प्रांत भेदसे प्रचलित शिल्प पद्धति के भेद हैं। भारतीय स्थापत्य कलाका खास लक्षण तो अिसमें बाँधकामके रूपकी सहेतुक रचना है जो वैदिक, बौद्ध या जैन किसीभी संप्रदायके मंदिरमें स्पष्ट रूपसे देखनेमें आती है।

कलाको प्रोत्साहन

भारतमें राजा, धर्माध्यक्ष, आचार्य और श्रीमंत वर्गने शिल्प स्थापत्य और कलाको प्रोत्साहन देकर अुसे जीवंत रखा है। वे अुसे अपना प्रधान धर्म मानते। द्रविडके बडे बडे राजाओने अपना राज्य धन देवधर्म मानकर खूब खरचा था। अिसीसे ही द्रविडके स्थापत्य बिशाल और भव्य हुअे हैं। वर्तमानमें राज्याध्यक्ष, धर्माध्यक्ष, और धनाध्यक्ष ये तीनो वर्ग अदृश्य होते जाते हैं। अिस तरह कलाका कदरदान वर्ग घिसता जाता हैं। अफसोसके साथ कहना पडता है कि वर्तमान राज्य सरकार भारतीय शिल्प स्थापत्य प्रति उदासीन है। वर्तमान सरकार नाटक, चेटक, नृत्य, संगीत जैसी क्षणिक मनोरंजक कलाको स्थान देकर

प्रोत्साहित करती हैं, जब स्थायी स्थापत्य कला और अुसके प्राचीन ग्रथोंके संशोधन की और दुर्लक्ष करती है। अतः प्रर्मज्ञ कलाविदोंको लाजिम है कि वे अिस प्रश्नको अुठा लें और अुत्तेजन के लिये प्रबल प्रयत्न करके बचेखुचे कला-मर्मज्ञोंको प्रोत्साहित करें। विद्यापीठोंका भी यह कर्तव्य है। अेंजिनीयरींग कालेजोंमे अिस विद्याको स्थान मिलना चाहिये। उसमें थीअरेटिकल और प्रेक्टिकल (क्रियात्मक) ज्ञानकी व्यवस्था होनी चाहिये।

शिल्पि प्रशंसा

भारतीय शिल्पियेंाने पुराण प्रसंगोंको पत्थरसें सजीव किया है। ऊनके टाँकेकी सर्जन शक्ति परम प्रशंसापात्र है। पाषाण शिल्पसे शौर्य और धर्मका बोध होता है। अचेतन पत्थरको वाचा देने वाले अैसे कुशल शिल्पि भी कवि हैं। सचमुच वे हमारे धन्यवाद के काबिल हैं। अलबत्ता, कला कोअीं धर्म या जाति विशेषकी पूंजी नहीं, यह तो समग्र मानव समाज की है। भारतीय शिल्पियेंाने अिस कलाद्वारा स्वर्ग वैकुंठको पृथ्वीपर ऊतारा है। राष्ट्र जीवनको समृद्ध बनाया और प्रेरणा अर्पण की है। हमारी अैसी स्थापत्य कलाकी ओर आज राजकर्ता सरकार विरक्त हुअी है। धनीवर्ग दुर्लक्ष करे अैसे संयोग है। देशका यह दुर्भाग्य है।

जड पाषाणमें प्रेम, शौर्य, हास्य या करुण भाव दिखाना मुश्किल है। चित्रकार तो रंगरेखासे यह दिखा सकता है। किन्तु शिल्पी विना रंग पाषाणमें अिनका भावात्मक सर्जन कर सकता है यही उसकी खूबी है यहाँ पर उसकी अपूर्व शक्तिके दर्शन होते हैं। भारतीय कलाने तो जगत के शिल्प स्थापत्यमें अनमोल हिस्सा दिया है ॥

सार्वजनिक उद्यानोंमें नग्नस्वरूप बनाअी हुअी प्रतिमा अभद्र विकारोंको जगाती हैं। अपने शास्त्र अिसका निषेध करते हैं और अैसे शिल्पींको अपराध मानते हैं। किन्तु कअी आधुनिक कला विवेचक कहते हैं कि नग्न देह तो नैसर्गिक है। उसके उपर (कृत्रिम) बनावटी वस्त्रोंके परिधानसे कलाकी हत्या हो जाती हैं। उनके प्रति हमारा अेक ही सवाल है कि कलाके साथ नीतिका कोअी संबंध है या नहीं?

मूर्तिविधानमें सर्व शिल्पि समान कर्तव्यशील नहीं हैं। अप्रतिम कौशल्य विना किसीको मूर्ति घडना ही नहीं अैसा प्रतिबंध तो शक्य नहीं। अिससे ही भिन्न भिन्न कलाकारोंसे निर्मित मूर्तियोंमें कम या अधिक सौन्दर्य देखनेमें आते हैं।

कलाकृति कुदरतके साथ साम्य धराती होनी चाहिये। अिस दृष्टिसे भारतीय कलाकृतियोंको हम देखें तो भारतीय शिल्पि कुदरतकी बनिस्बत भावनाको प्रबल मानते हैं।

वास्तु शास्त्रके महान प्रणेता—

मत्स्यपुराण और अन्य शिल्पग्रंथोमें वास्तुशास्त्रके अठारह आचार्यके नाम दिये हैं। उन्होंने शिल्पग्रंथों की रचना की और अन्य शास्त्रों पर भी उन्होंने लिखा है। वे ऋषिमुनि अरण्य के शांत वातावरणमें रहते थे और विद्याके जिज्ञासुओंको अपने आश्रममें रखकर उन्हें विद्यादान देते थे। अिनके नाम हैं— १ भृगु, २ अत्रि, ३ वसिष्ठ, ४ विश्वकर्मा, ५ मय, ६ नारद ७ नग्नजित, ८ विशालाक्ष, ९ पुरंदर, १० ब्रह्मा, ११ कुमार, १२ नंदीश, १३ शौनक, १४ गर्ग, १५ वासुदेव, १६ अनिरुद्ध, १७ शुक्र, १८ बृहस्पति।

अिनके अतिरिक्त बृहत्संहितामें और सात नाम दिये हैं। ये हैं १ मनु, २ पराशर, ३ काश्यप, ४ भारद्वाज, ५ प्रल्हाद, ६ अगस्त्य और ७ मार्कंडेय।

अग्निपुराण अ० ३९ की लोकाख्यायिकामें शिल्पशास्त्रके २५ ग्रंथोंकी नोंध मिलती है। वे तंत्र ग्रंथ हैं। पर अिनमें शिल्प उल्लेख मिलते हैं। उनमें १ शांडिल्य, २ गालव, ३ स्वयंभूव, ४ कपिल और ५ नृसिंह आदि के नाम हैं। वे तांत्रिक शिल्पग्रंथोके प्रणेता माने जाते हैं।

उपरोक्त मुनिप्रणित शिल्पग्रंथ आज प्राप्य नहीं हैं किन्तु उन ग्रंथोके अलग अलग अध्याय मिलते हैं। या उन ग्रंथोके अवतरण या रेफरन्स अन्य ग्रंथोंमें देखनेमें आते हैं। बृहत्संहितामें गर्गमत का समर्थन है।

स्मृति, संहिता और नीतिशास्त्र के ग्रंथोमें शिल्प के उल्लेख हैं। पुराणों में तो अध्याय के अध्याय दिये हैं। तांत्रिक ग्रंथोंमें भी अैसा ही है। ज्योतिष ग्रंथों में भी शिल्प का विषय बहुत कुछ मिलता है। हमारे कमभाग्य हैं कि उपरोक्त आचार्यों का अेक अखंड अटूट ग्रंथ उपलब्ध नहीं है।

प्रासाद शिल्पशैली के प्रकार—

नागरादि शिल्प ग्रंथोंमें कहा है कि भारतके विविध प्रांतोंके प्रासाद शिल्पकी चौदह जातियाँ विद्यमान थीं, जिनमेंसे आठ जातियोंको उत्तम कहा है। देशके किन किन भागोंमें उस जातिके प्रासादकी रचना होती थी अिसका अस्पष्ट उल्लेख है।

२

नागरा द्राविडाश्चैव भूमिजा लतिनास्तथा ।
सांधाराश्च विमानाश्च मिश्रकाः पुष्पकान्विताः ।। १ ।।
एते चाष्टौ शुभा ज्ञेयाः शुद्धच्छंदाः प्रकीर्तिताः ।
दशजाति--कुल--स्थान--वर्णभेदैरुपस्थिताः ।। २ ।।

१ नागरादि, २ द्राविडादि, ३ भूमिजादि, ४ लतिनादि, ५ सांधारादि, ६ विमानादि, ७ मिश्रकादि, ८ पुष्पकादि अिन आठ जाति के प्रासाद (चौदहमेंसे) शुद्ध छंदकी, देश, जाति, कुल, स्थान अनुसार वर्ण रूप भेदसे उपस्थित हुओं । और आगे किस प्रांतमें किस जातिके प्रासादकी रचना होती है यह भी कहा है। शिल्पग्रंथोमें प्रासादोंकी जातियोंके उद्भवके बारे में कथा आती है कि हिमालयकी उत्तरमें दारुकावनमें जिन जिन देव दानवादि गणोंने जिस जिस प्रकार और आकारमें शिवजी के पूजनकी रचना की उसी के अनुसार प्रासाद के अिस घाटकी आकृति का जन्म हुआ ।

द्रविड शिल्पग्रंथोंमें १ नागर, २ द्राविड ३ वेसर—ये तीन जातियां कही हैं । उत्तरमें नागरादि जाति, दक्खनमें द्राविडजाति, और अिन दोनों के मध्यभागमें वेसरजाति के प्रासाद कहे हैं । तब उत्तर भारतके ग्रंथोमें विस्तार पूर्वक चौदह जातियाँ कही हैं । ब्रह्मदेश, सियाम, बाली, सुमात्रा आदि अग्नि पूर्वमें प्रवर्तती हुओं जातियाँ, भारतकी अिन चौदह जातियोंमें से हैं अैसा लगता है ।

अिन सब जाति के प्रासाद किन किन प्रांतोमें किन किन स्वरूपोंमें बनाये जाते थे, अिसके संशोधन की जरूरत हैं । विद्वान और अनुभवी ज्ञाता स्थपतियोंकी नियुक्ति करके सरकार को यह आवश्यक श्रेष्ठ पुरातत्व कार्य त्वरित करना चाहिये।

स्थापत्याधिकारी—

वास्तुशास्त्रके ग्रंथमें कहा है कि यजमानको चाहिये कि शिल्पके गुणदोषकी कसौटी के बाद ही श्रेष्ठ शिल्पिको चुनकर कार्यका आरंभ कराना । स्थपति के गुणदोष संबंधमें कहा है—गुणवान्, शास्त्रज्ञ, गणितज्ञ, धार्मिक, सदाचारी, चरित्रवान्, मिष्टभाषी, निष्कपटी, निर्लोभी, बहु बंधुवाला, नीरोगी और शारीरिक दोषहीन, निर्व्यसनी, चित्ररेखा कार्यमें भी प्रवीण, कुशल होना जरूरी हैं । स्कंदपुराण के प्रभास खंडमें सोमपुरा शिल्पि श्रेष्ठ माना गया हैं । शास्त्रकारोंने बाँधकाम के अधिकारी के वर्ग कहे हैं – १ स्थपति, २ सूत्रग्राही, ३ तक्षक, ४ वर्धकी । अिन चारोंके कर्तव्यकी नोंध है ।

१ स्थपति—स्थापत्यकी स्थापनामें संपूर्ण योग्यतावाला (चीफ अेंजीनीयर)

२ सूत्रग्राही—स्थपति के गुणकर्मको अनुसरनेवाला पुत्र या शिष्य जिसे शिल्पिओंकी भाषामें "सूतर छोडो" कहते हैं । रेखा चित्र बनानेवाला ड्राफ्ट्समेन

और सर्व कार्योंका चलान कर सके अैसा निपुण, स्थपतिका आज्ञापालक। सूत्रग्राही=आर्किटेक्ट अेंजिनीयर।

३ तक्षक—सूत्रमान प्रमाणको जाननेवाला छोटेबडे पत्थरोंका काम करनेवाला या करानेवाला। सरल या नक्काशी या रूप काम करनेवाला, सदा प्रसन्न चित्त, स्थपति प्रति सद्भाव धरानेवाला तक्षक (ओवरसीयर) है।

४ वर्धकी—शास्त्रमें अिसके दो प्रकार कहे हैं। अेक तो काष्ठ कार्य करनेवाला (सूत्रधार) और दूसरा मिट्टी कार्यमें निपुण (मोडलिस्ट) गुरुभक्त चर्धकी जानना।

आधुनिक कालमें सोमपुरा शिल्पिओंको कच्छ देशमें "गअीधर" कहते हैं। वह शब्द गजधर (गज को धारण करनेवाला) का अपभ्रंश है। सौराष्ट्र गुजरात आदि पश्चिम भारतके पुराने शिलालेखोंमें शिल्प शास्त्रीको "सूत्रधार" कहा है। उसका अपभ्रंश "ठार" हुआ और सौराष्ट्रके शिल्पी परस्पर अिस शब्दका प्रयोग करते हैं। अंग्रेजी राज्य शासन कालमें कारीगरोंके समूहके अधिकारी को "मिस्त्री" कहते हैं परंतु यह शब्द शिल्पियोंके लिये ठीक नहीं। शिला को घडने वाला शिलावट, जिसका अपभ्रंश सलाट हो गया। उत्तर भारतमें "शिलाव्रट" शब्द विद्यमान है।

भारतका शिल्पि वर्ग—भारतके प्रत्येक प्रांतमें प्राचीन शिल्पका अभ्यासी वर्ग बसा हुआ था। अपने अपने प्रांतोंमें वे प्रचलित जाति (नागरादि, द्राविडादि, भूमिजा, इत्यादि) के प्रासादोंकी रचना करते। परंतु कालधर्म और विधर्मीयोंकी धर्मांधतासे असुक प्रांतोंमें अिस वर्गका नाश हो गया और उसके स्थापत्य भी (नष्ट) मलियामेह हो गया। प्राचीन शैलीके शास्त्रोक्त नियमानुसार अैसे स्थापत्य होते जिससें उन प्रांतोकी शिल्पशैली (पद्धति) मूलमें किस प्रकारकी और किस कालकी थी यह जानने के साधन अल्प हैं। बंगाल, बिहार, सरहद प्रांत, पंजाब, उत्तर प्रदेश, कश्मिर या आंध्र प्रदेशमें प्राचीन शिल्प स्थापत्य अभ्यासके लिये तुलनात्मक दृष्टिसे अल्प हैं। यद्यपि खुदाअी में ये अवशेषरूपमें पाये जाते हैं। उपर कहा हुवा शिल्पका अभ्यासी वर्ग तेरहवीं चौदहवीं शताब्दि तक अस्तित्वमें था। उन्होंने शिल्पग्रंथों की अच्छी हिफाजत की थी। ग्रंथोके अनुसार उन्होंने कार्य करवाये थे। अैसा शिल्पिवर्ग आज भी सोमपुरा शिल्पिवर्ग पश्चिम भारत गुजरात राजस्थान और मेवाड़में भी है। उनकी उत्पत्ति का अितिहास सोमनाथ महादेव की स्थापना के साथ जुडा हुआ है। स्कंदपुराणके प्रभासखंडमें सर्वश्रेष्ठ शिल्पि सोमपुराको विश्वकर्मा रूप मानकर देवोंने शिल्प स्थापत्यका व्यवसाय उनको सुपूर्द किया था। उन के पास प्राचीन शिल्पग्रंथोका संग्रह है। पूर्व

भारतमें उडिया–आरिस्सा प्रांतमें महापात्रका अपभ्रंश महाराणा जातिका शिल्पिवर्ग आज भी विद्यमान है, उनके पास भी शिल्प ग्रंथोका संग्रह ठीक प्रमाणसें है। पुरी और भुवनेश्वर के अनेक मंदिरोंका निर्माण उनके पूर्वजोंने किया था। भुवनेश्वरमें उनके दो परिवार (कुटुम्ब) है। जगन्नाथपुरी में बीस परिवार (कुटुम्ब) है और याज पुरमें दो बसते हैं।

द्रविड के शिल्पि विश्वकर्माके वंशज—ब्राह्मणकुल के होनेका दावा करते हैं। उनमेंसे कअी सिलोनमें बसते हैं। कुंभकोणम् के पास शिल्पिओंका अेक छोटासा गांव बसा है। वे धातुकी मूर्तिकलामें प्रवीण हैं।

म्हैसुर प्रदेशमें कर्णाटकमें शिल्पि वर्ग बसनेका सुना है। हलशाल राज्य कालने बँधाये हुअे हलीबड, वेलुर और सोमनाथपुरम् के मंदिरोंकी सर्वोत्तम आश्चर्यकारक कृतियाँ अिनके पूर्वजोंकी बनाअी हुअी हैं। १११७ ईसवीमें डंकनाचार्य नाम के प्रसिद्ध शिल्पि हो गये। उस काल के अन्य शिल्पियोंके नाम–मलितम्मा, वालेया, चंदेया, बामया, भर्मया, नानज्या, पालमसिया इत्यादि के नाम उपरोक्त मंदिरोंसें पाषाण पर खुदवाये मिलते हैं। कर्णाटककी शिल्पशैली वेसर या विराट जातिकी द्रविडसें उत्तरमें होती।

जयपुर और अल्वर की तर्फ के प्रदेशोंमें गौड ब्राह्मण जाति के शिल्पि प्रासाद शिल्पि की बनिस्बत प्रतिमा विधानके व्यवसाय में प्रवीण हैं। उत्तर प्रदेशके कितने भागोंमें "जांगड" नामकी जाति है जो अपनेको शिल्पिवर्गमें खपाती है। वे काष्ठकाम, सादा पाषाणकार्य, चित्रकाम, कृषि, और लोहेका काम भी करते हैं। विश्वकर्माको अपना इष्टदेव मानते हैं।

गुजरात और मेवाडमें वैश्य, मेवाडा, गुर्जर और पंचाल ये चारों शिल्पिवर्गकी ज्ञातियाँ हैं। वे दावा करते हैं कि हम विश्वकर्माके पुत्र हैं। वैश्य, मेवाडा, और गुर्जर काष्ठकर्म करते हैं। और पांचाल लोहकार्य में कुशल हैं।

भारतके कअी प्रांतोंमें धर्माधता और धर्मभ्रष्टता से धर्म परिवर्तन के कारण कुल परंपरा के व्यवसाय वाला शिल्पिवर्ग नष्ट हो गया हो अैसा लगता है। शिल्पकार्य में आजीविका की अभाव महसूस होने से वे अन्य व्यवसायमें जुटे हों।

वास्तुशास्त्र के ग्रंथोंका साहित्य—

वास्तुविद्या, ज्योतिष, गणित, भूमिति इत्यादि शास्त्रोंका प्रादुर्भाव, भारतमें ही हुआ है। ये शास्त्र अरब और ग्रीक प्रजाद्वारा पश्चिमके देशोंमें गये। प्रत्येक विद्याके सिद्धांतोंका वर्णन उस विद्याके प्राचीन संस्कृत ग्रंथोंमें उसकाल के प्रसिद्ध ऋषिमुनियोंने किये हुअे, पाये जाते है। उन ग्रंथोंमें उनके नाम भी जुटे हुअे

हैं। यह साहित्य अमूल्य था। पिछले समयमें प्रयोगाभावसे ये वैज्ञानिक अद्‌भुत विद्याओं पडी रहीं। दुर्भाग्यसे चौदहवीं सदी के बाद विधर्मी धर्मांध शासकोंके हाथ से स्थापत्योंके साथ अिस अमूल्य साहित्य का भी नाश हुआ। अिसके अलावा शिल्पियों की संकुचित वृत्ति के कारण भी विद्याचोरीसे विकास रुक गया। कालक्रमसे शिल्प ग्रंथ द्रीमकोंके भोग बने। और अज्ञान विधवाओंने अिन ग्रंथोंको भिगोकर "थेपडे" (कागजसे बनाये हुअे बरतन) भी बनाये! उनमें से जो कुछ बचाखुचा साहित्य रहा वह छिन्न भिन्न अवस्थामें हस्तलिखित प्रतोंके रूपमें प्राप्य है। पूरेपूरा संपूर्ण ग्रंथ क्वचित् हि मिलता है। देवमंदिरोंके बाँधनेवाले शिल्पियोंके पास अपने पेशेकी जरूरत के लिये पर्याप्त भाग मौजुद होता है, बाकी के ग्रंथका कोई हिस्सा अप्राप्य हैं हस्तलिखित प्रतों परसे बनी हुअीं नकलोंमें भी असंख्य अशुद्धियाँ होती है क्योंकि शिल्पिवर्गमें बहुधा संस्कृत पढे कम हैं। पिता पुत्रको सक्रिय ज्ञान दे जिससे परंपरासे विद्याका क्रियात्मक ज्ञान टिक रहा। ग्रंथों पर या सिद्धांतो पर लक्ष कम रहा।

सोलहवीं सदीमें शिल्पग्रंथ जिस कालमें छिन्न भिन्न हुअे थे उसीकालमें भारद्वाज गोत्र के सोमपुरा मंडनका जन्म सूत्रधार क्षेता – खेता के घर हुआ। अिस विद्वान कुलको मेवाडके कुंभाराणाने गुजरात पाटणसें बुलाया, राज्याश्रय दिया और उनके पास भव्य स्थापत्योंकी रचना करवाअी। विद्वान मंडनने छिन्न भिन्न शिल्पग्रंथोंका उद्धार किया। अस्त व्यस्त शिल्पग्रंथोंका संशोधन किया। संक्षिप्त रूपमें वास्तुविद्याका पुनरुद्धार किया। ग्रंथोद्धार का महान कार्य किया जिसके लिये शिल्प जगत उनका अत्यंत ऋणी है। उन्होंने पूर्वाचार्य के मतानुसार– राजवल्लभ, वास्तुसार प्रासाद मंडन, रूप मंडन, रूपावतार, देवता मूर्ति प्रकरणम्– ग्रंथोंकी रचनाएं कीं उनके छोटे भाअी नाथुजीने भी वास्तुमंजरी नामक ग्रंथ तीन स्तवक (अध्याय) का लिखा। उस ग्रंथका मध्यका प्रकरण "प्रासाद मञ्जरी"।

सूत्रधार वीरपाल, सूत्रधारमल्ल, सूत्रधार राजसिंह सूत्रधार गोविंद, सूत्रधार गणेश, सूत्रधार कौशिक, सू. सुखानंद, पंडित वासुदेव आदि विद्वानोंने शिल्प पर छोटे बडे ग्रंथ लिखे हैं। ये ग्रंथ शिल्पियोंके ग्रंथ संग्रह और भंडारोंमें मिलते हैं। अिन विद्वानोंके स्थल और काल संबंधी निर्णय अभी तक नहीं हो सका है।

शिल्प हमारे कुल परंपराका व्यवसाय होने से नीचे के ग्रंथ संग्रहमें उपलब्ध हैं। कितने ग्रथोंकी एक, दो तीन या पाँच प्रतें, जुदे जुदे कालकी थोडे बहुत प्रमाणमें मिलती हैं। ज्ञान रत्न कोश की एक प्रत चौदहवी सदीकी पडीमात्रा शैलीकी है। पंद्रहवीं सदीका एक ज्योतिष ग्रंथ है। अन्य कितने ग्रंथ तीनसौ से सौ वर्षकी अंदर के हैं।

श्री विश्वकर्मा प्रणीत

१ क्षीरार्णव
२ वृक्षार्णव
३ दीपार्णव
४ वास्तुविद्या
५ सूत्रसंतान
अपराजित
६ ज्ञानरत्नकोश
७ जय पृच्छाधिकार
८ सूत्रप्रतान
९ विश्वकर्मप्रकाश
१० विश्वकर्म विद्याप्रकाश
११ वास्तुशास्त्रकारिका

महाराज भोजदेव कृत

१२ समराङ्गण सूत्रधार

सूत्रधार मंडन प्रणीत

१३ राजवल्लभ
१४ वास्तुसार
१५ वास्तुमंडन
१६ प्रासादमंडन
१७ रूपमंडन
१८ रूपावतार
१९ देवता मूर्ति प्रकरण

ठक्कुर फेरू कृत

२० वास्तुसार

सूत्रधार नाथु कृत

२१ वास्तुमञ्जरी

सूत्र. वीरपाल

२२ वेडाया प्रासाद तिलक

सू. मल्लदेव रचित

२३ प्रमाणमञ्जरी

स्. राजसिंह रचित

२४ वास्तुराज
२५ वास्तुराज
(अन्य सवी विष्य)

सू. गणेश रचित

२६ वास्तुकौतुक

सू गोविंद रचित

२७ कलानिधि
२८ वास्तु उद्धार धोरणी

सू. कौशिक रचित

२९ वास्त्वध्याय

सू. सुखानंद

३० सुखानंदवास्तु
३१ वास्तुराजतिलक
३२ सूत्रप्रतान
३३ देव्याधिकार

पं. वासुदेव

३४ वास्तुप्रदीप
३५ सच्छिल्पतंत्र

ये ३५ ग्रंथो अन्य ग्रंथोकें प्रकरण हैं

ये अुपग्रंथ अन्य ग्रंथोका छूटे अध्याय है

१ आयतत्व
२ केशराज
३ जिनप्रासाद
४ ऋषभादि प्रासाद
५ प्रासाद तिलक
६ अेकविंशति मेरु

मुद्रित ग्रंथोंमें द्रविडके

१ मयमत्तम्
२ शिल्प रत्नम्
३ मानसार
४ काश्यप शिल्प
५ वास्तुविद्या
६ मनुष्यालचंद्रिका
७ ईशान शिव

गुरुदेव पद्धति

पुराण

१ मत्स्य २ अग्नि
३ भविष्य ४ गरूड
५ स्कंध ६ अुत्कल
७ विष्णुधर्मोतर

संहिता स्मृति आदि

१ बृहत संहिता
२ वसिष्ठ ३ नारद ४ गर्ग

शुक्रनीति विवेकविलास

जैन ग्रंथ

१ शत्रुंजय महात्म्य
२ बृहद्वृत्ति
३ प्रवचन सारोद्धार
४ आचार दिनकर
५ मत्राधिराज
६ त्रिषष्ठि शलाका पुरुष
७ जिन चतुर्विंशतिका
८ कुमारपाल भूपाल चरित्र

आगमग्रंथ

१ सुप्रभेद २ कीमिका
३ किरण ४ अंशुमभेद
५ सकला ६ पूर्व किरणा
७ सिद्धांत शेखर ८ सार संग्रह ९ जीर्णोद्धार दशक

प्रासाद रचना और राज्याश्रय—

भारतके प्रत्येक प्रांतकी प्रासाद शिल्पशैली भिन्नभिन्न देखनेमें आती हैं, किन्तु उसमें तलदर्शन प्लानकी रचना का विकास होता गया। ओरिस्सा, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, द्रविड, हलशाल, आंध्र, कश्मिर, बिहार, बंगाल वगैरह प्रांत बचे खुचे स्थापत्योंका अभ्यास दर्शन करते। उनकी शिल्प शैली और रचनामें थोडी बहुत भिन्नता है। मूलदेव, स्थापन गर्भगृह (निजमंदिर) को द्रविड उडीसामें विमान कहते हैं। उससे आगे अंतराल, अिसके बाद प्रार्थना मंडप और आगे चतुष्किका (चौकी) इतना सामान्यतः होता है। उडीसामें नृत्य मंडप और भोग मंडप खास करके होते हैं। गुजरात राजस्थानमें गूढमंडप (दीवार वाला मंडप) स्रींकमंडप और नृत्य मंडप—तीन मंडप तेरहवीं सदीके बाद जैनोंमें होने लगे। अिस तरह क्रमशः विकसते हुए देवमंदिरोंकी रचना पूर्ण हुअी।

हरेक मंदिरमें थोडे बहुत खंडोका आधार देव महात्म्य, द्रव्य औंर स्थान पर निर्भर हैं। यह रचना उत्तर भारतके मंदिरोंमें देखने मीलती है। जब द्रविड मंदिर तो एक छोटी नगरी जैसे विस्तारमें होते हैं। निजमंदिर और प्रार्थना मंडप तो उत्तर भारत जैसे ही हैं, परंतु द्रविड मंदिरोंमें सुंदर कलामय प्रदक्षिणा पथ एक दो तीन या सात तक की संख्यामें होते है। दो प्रदक्षणाके बीच चौक होता है मंदिरकी सुरक्षाके लिये अुत्तरोत्तर दुर्ग–कीला जैसे प्रदक्षणा मार्ग होता है। मंदिर के विस्तार में जलाशय, कुंड, भजनकिर्तन मंडप, अन्य परिवार देवोंके मंदिर खुला चौक और बाजार भी होते हैं। कअी मंदिरोंमें तो मंडप भी हजार हजार स्तंभो के हैं। अिससे ही द्रविड मंदिरोंकी विशालता अधिक होती है। मंदिरकी ऊँचाअी भी बहुत और भव्य है। प्रवेशद्वार भव्य और अुनके अुपर के सातसे बारह दरजे तक के गोपुर मीलोंतक देखने में आते हैं।

द्रविड मंदिरोंका विशाल स्थापत्य समूहरुपसे ग्रेनाअिट जैसे काले पत्थरोंका है। करोडों का खर्च हुआ होगा। विख्यात पांड्य, चौल, पल्लव, चेरा और चालुक्य राजकुलोंने शिव, विष्णु, देवी, कार्तिकस्वामि आदि जुदे जुदे देवों के ये मंदिर हैं। ये राज्यकुल मंदिर निर्माणको भावप्रधान मानते। प्रत्येक भाविक भक्त भगवान के साकाररूपका पूजन अर्चन करनेमें अपने को धन्य समजता। अपने राज्य को देवोंका राज्य मानते राजकी विपुल आयका ज्यादा भाग देव द्रव्य मानते। परिणामरूप द्रविडमें अैसे भव्य और विशाल देवमंदिरोंके निर्माण हुअे है। विधर्मीअेांके ध्वंससे वंचित होनेसे आजभी अुनका अस्तित्व हैं।

अुत्तर भारतके राज्यवंशोकी धर्मभावना द्रविडोंसे कम न थी। गुजरातमें

दशवीं से तेरहवीं सदी तक अैसे विशाल स्थापत्य चालुक्य राज्यकुलने बँधाये। सिद्धपुरका रुद्रमहालय, सरस्वती के पूर्वमें महाराज प्रासाद, पाटण के सहस्रलिंग तालाब की विशाल रचना सोलंकी राजाअेांने की थी। अुत्तर भारतमें अैसे विशाल स्थापत्योंका नाश विधर्मीयोंकी धर्मांधताके कारण हुआ। अुनके कालमें अैसा भय सात सदी तक रहा अतः मंदिर रचना का अुद्भव संकुचित स्वरूपका हुआ।

भारतके पूर्वमें समुद्रपार हिंदी चीन, अनाम (चंपा), श्याम (सियाम –थाअिलेन्ड), जावा, सुमात्रा वगैरह दूर पूर्वके अग्निअेशियाके टापुअेांमें भारतकी साहसिक प्रजा देढ दो हजार वर्षोसे बसी हुअी थी। वहाँ के भव्य स्थापत्य भारतीय कला और धर्मके हैं। कंबोडियाके अंकोरवाटके विशाल मंदिरका वर्णन करते तो बडा ग्रंथ हो जाय।

भारतकी मय जातिके शिल्पियोंका समुदाय समुद्रपार (पातालभूमि) अमेरिकाकी ओर जाके वर्तमान मेकिसको प्रदेशमें बसे। हालमें भी माया नामकी अलग प्रजाकेरूपमें वे विद्यमान हैं। अुनके रस्म–रिवाज, धर्म पृथक् हैं। अिजनेरी कलामें अमेरिकामें ये लोग–मेक्सिकन होशियार हैं।

ये लोग सर्व विश्वकर्माके शिष्य शिल्पशास्त्री मय के वंशज हजारो वर्षोंसे यहाँ बसे हैं अैसा माना जाता है।

मुस्लिम शासक और भारतीय शिल्प।

मुस्लिम राजाअेांने तेरहवीं या चौदहवीं शताब्दि के बाद कितने शहर बसाये। दरगाहें, मस्जिदें, राजसभा, दीवान–अे–खास, दीवान–अे–आम और किल्ले देशकी राजपूत शैलीके बँधाये। अिस प्रकार अुन्होंने भी कलाको अुत्तेजन दिया यह न भूलना चाहिये। बाहरके मुस्लिम बादशाह भारतमें आये, पुष्कल द्रव्यकी लूटके साथ, हमारे शिल्पियोंको भी साथमें ले गये और अपने देशमें सुंदर भवन निर्माण कराया।

ताजमहल और दक्षिण के बीजापुर के विशाल गुंबद आवाज के परावर्तनके कारण खूब प्रशंसनीय हैं। दिल्ही, आग्रा, फतहपुरसीक्री, लखनौ, लाहौर, मांड़वगढ, अहमदाबाद, चांपानेर आदि शहर मुस्लिम बादशाह और सुलतानोंने बँधाये और अुनमें बेजोड काम कराये।

भारतीय शिल्प के साथ पाश्चात्य शिल्पकी तुलना।

भारतीय कला अधिक मौलिक और वैविध्य पूर्ण है अन्यत्र अैसा कम देखनेमें आता है। भारतीय शिल्प स्थापत्य पर आज सातसौ वर्षोंके प्रहारके

बाद जीवती कलाके दर्शन होते हैं । पाश्चात्योंके साथ भारतीय शिल्पियोंकी तुलना करते कहना पडता है कि भारतीय शिल्पिका लक्ष्य अपनी कृतिमें सिर्फ भावना अुतारनेका होता है जब पाश्चात्य शिल्पि ताद्दश्यताका निरूपण—अनुकरण करते हैं । भारतीय शिल्पियोंने अपनी कृतियोंमें पृथक्करणीय भावना अुंडेलनेका कठिन कार्य किया है ।

भारतीय और पाश्चात्य शिल्पियोंके मूर्ति विधानका अेक ही अुदाहरण पर्याप्त है । अनेक कवियोंने स्त्रीकी प्रकृति–विकृति के गान गाये हैं । अुसके सौंदर्य पान करानेवाले भवभूति–कालिदास जैसे महान कवियोंने अुसके रूपगुण की शाश्वत गाथा गाअी है । भारतीय शिल्पियोंने स्त्री सौंदर्यको मातृत्व भावनासे प्रदर्शित किया जब पाश्चात्य शिल्पियोंने वासनाके फल स्वरूप अुसको कोरा है ।

भारतीय शिल्पियोंने भारतीय जीवन दर्शन और संस्कृतिको अपना सर्वोत्तम लक्ष्य माना, राष्ट्र के पवित्र स्थानों को पसंद किया, और अपना सर्वस्व जीवन बीताकर विश्वकी शिल्पकलाके अितिहासमें अद्वितीय विशाल भवन निर्माण किये जिनको देखते हम दंग रह जाते हैं । भारतीय शिल्पियोंने पहाडोंके सफेद, मुंगिया, रक्त राता, श्याम, रेतीला और चूनेदार पत्थरोंकी दीर्घकाल शिलाओंको तोडा और भूख प्यासकी परवाह किये बिना अपने धर्मकी महत्तम भावनाको राष्ट्रके चरणोंमे अर्पित किया । जनता जनार्दन और धर्मकी संस्कृतिके प्रतीक को प्रस्थापन किया । जनताने भी शंखनादसे अपने शिल्पकारोंकी अक्षय कीर्तिको फैलाया । अैसे शिल्पियोंकी अजब स्थापत्य कलाके कारन जगतने भी भारतको अजर अमर पद पर संस्थापित किया है । अैसे पुण्यवान शिल्पियोंको कोटि कोटि धन्यवाद ।

प्रासाद मंजरी ग्रंथ के बारेमें

यह छोटासा ग्रंथ "प्रासाद मञ्जरी" –मूलमें वास्तु मञ्जरी नामक ग्रंथ के तीन स्तबकों में से मझला प्रकरण है । पंदरहवीं शताब्दि के प्रारंभ में जब मेवाडके राणा कुंभा के बाद अुनके पुत्र रायमलजी गद्दी नशीन थे अुस कालमें सूत्रधार खेताके पुत्र नाथजीने यह ग्रंथ लिखा है । सूत्रधार क्षेत्र यानी खेताके ज्येष्ठ पुत्र मंडन महान स्थपति थे जिन्होंने शिल्पग्रंथोका अुद्धार किया और सातेंक ग्रंथोंकी रचना की । अुनके लघुबंधु नाथजी अिस ग्रंथके कर्ता हैं । ये भारद्वाज गोत्र के थे । सोमपुरा के पूर्वज गुजरात पाटण के रहेनेवाले थे । महाराणा कुंभाने अुनको मेवाडमें बुलाया और चितौडगढ में बसाया ।

मूल ग्रंथ वास्तुमञ्जरीमें तीन स्तबकों में से प्रथम स्तबक गणित, ज्योतिष, नगर, जलाशय, सामान्य गृह, राजगृह, किल्ला वगेरे विषयका है। दूसरा स्तबक –प्रासादमञ्जरी,–प्रासाद विषयका है। तीसरा प्रकरण मूर्ति विधानका है। कुंभाराणा के बाद महाराणा रायमल्लजीने विक्रम संवत् १५३० से ६६ तक राज्य किया और अुनके समयमें नाथजीने वास्तुमञ्जरी ग्रंथकी रचना की।

प्रासाद मंडन के कितनेक श्लोक मंडनने रचे हुअे प्रासाद मंडनसे मिलते जुलते हैं। अमुकको काट छाँट करके नयी रचना की है। मंडनने भी विश्वकर्मा प्रणीत ग्रंथों में से अपने ग्रंथमें लिया हो अैसा महसूस होता हैं। और यह स्वाभाविक भी है। पूर्वाचार्योका कहा हुआ भूतकाल के आचार्य दुहराते हैं।

सूत्रधार खेताके दो पुत्र मंडन और नाथजी, मंडनके दो पुत्र गोविंद और अिशन। अिशनका छिता वि. सं. १५२५। सूत्रधार गोविंदने कला निधि, अुद्धार धोरणी और द्वार दीपिका ग्रंथ लिखे। अिस ग्रंथकी पाँचेक प्रतें अपने पास हैं जिनमें अेक ओळिया (टीपणा) वि. सं. १८०० का है। जिसको मेरे पूर्वज श्री नरभेराम मंगलजी जब अुदेपुर गये थे तब लिख आये थे अुस प्रतका आधार भी लिया है।

निजी नोंध—सामान्यतः आत्मश्लाघाके भयसे मनुष्य निजी नोंध देनेमें संकुचाता है। मैं भी अैसा ही महसूस करता हूं, फिर भी वृद्धजन, मित्र और शुभेच्छकोंका यही आग्रह रहा हैं कि जिससें अैसी नोंध द्वारा जिज्ञासु पाठकों को कुछ प्रेरणा या मार्ग मिले। अतः नोंध लिखने प्रोत्साहित हुआ हूँ जिसे सुज्ञ वाचक क्षमा करे।

शिल्प स्थापत्यका पेशा हमारे वंशपरंपराका व्यवसाय है। बालवयमें अंग्रेजी विद्याभ्यासकी अिच्छा थी परंतु विधिने कुछ और ही निर्माण किया था। कौटुम्बिक आर्थिक स्थिति के कारण शिल्प व्यवसायमें जुटना पडा। समय मिलने पर घरमें पुराने बडे पिटारों में से शिल्पग्रंथोकी पोटलियाँ, संग्रहकी हस्तलिखित पाथियाँ, टीपणे, नोंधके कागजात, पुर्वजोंने किये हुअे बाँधकाम के नक्शे–अिन सर्व मैं पढता। नकल करता। दिनको काम पर जाता रातको यह पढाओीका काम चलता। प्रथम तो शिल्प के प्राथमिक गणितका "आयतत्व" नामक सौएक श्लोकोंका ग्रंथ मुखपाठ किया। यह "दीपार्णव" का प्रथम अध्याय है। अिसके बाद "केशराज" और प्रासाद मंडनके चार अध्याय जबानी किया। ये सब फर्राटेसे बोल जाता।

अिन तीन ग्रंथोंकी समज और गणित के अटपटे अंगोको जानकारी के

बाद, अुनके सक्रिय ज्ञान आलेखन (ड्रॉअिंग) भी करता । जहाँ वडिलोंकी सहाय जरुरी लगती वहाँ पहुँच जाता । सबसे छोटा होने के कारण कुल परंपराकी यह विद्या चालू रहेगी अिस हिसाबसे अुनको भी संतोष होता ।

शिल्प शास्त्रके संस्कृत ग्रंथ लोक भोग्य भाषामें अनूदित हो तो सामान्य शिल्पि वर्ग अुसका लाभ अुठा सके अैसी तमन्ना दिलमें होती थी । शिल्पका सक्रिय ज्ञान गुरुजनों द्वारा दिनको काम पर मिलता ही था और रातको अनुवाद करने की कोशिश करता । शुरू शुरू में तो यह कठिन लगा किन्तु दृढ संकल्प बल साथ था । कभी कभी तो रात को दो तीन बजे तक बैठता । निष्ठाके साथ जब कामके पीछे पड जाते हैं तो कठिन विषयोंके प्रश्न आपही हल हो जाते हैं । विश्वकर्मा और सरस्वतीकी प्रार्थना की कि अपनी बानी बुद्धि और लेखनीमें बल सींचे ।

ई. स. १९१७ में प्रासाद मंडन ग्रंथका अनुवाद शुरू किया । कठिनाअी तो बहुत हुअी । शब्दोंका भाषा और क्रियामें मेल बैठे तभी यह अुपयोगी हो सकता है अैसी मानसिक मुश्किलें पैदा होती थी । अिसमें पुरखोंने किये हुअे आलेख भी कभी मददगार होते । अिस तरह अनुवादकी गाडी प्रगति करती गयी ।

ई. स. १९२४ से २९ के समयके वर्षोमें आरासण कुंभारीयाजीकी स्थिरता और शान्ति के कालमें मेरे अनुवाद कार्यमें जोश मिला । क्षीरार्णव, दीपार्णव जैसे दुष्कर ग्रंथोंका संशोधन कार्य यथा शक्ति पूर्ण किया । अिसके बाद रूपमंडन, प्रासादमञ्जरी, वास्तुसार और जिनप्रासाद के अनुवाद किये । संस्कृत भाषाका अपना मर्यादित ज्ञान होने से अिन सर्व साहित्योंकी टीप पेन्सीलसे करता । दरमियान कुटुम्बकी आर्थिक स्थिति सुधरती चली ।

शिल्प ग्रंथोंमें अनगिनत अशुद्धियाँ पायी जाती हैं । अमुक शब्दों के मूल, अुनकी व्याकरण शुद्धि यह काम विद्वानों के लिये भी दुष्कर है क्योंकि पारिभाषिक शब्दोकी सूझ बडों बडों के लिये भी कठिन है । ई. स. १९३० से छ सालों के मेरे कदमगिरिके वास दरम्यान अिन सर्व अनुवादोंको–कि जो मैने पेनसिलसे किये थे—पक्का किताबोंमें सुधारकर लिख लिये । अिसमें वृक्षार्णव जैसे अमूल्य ग्रंथकी घृद्धि हुअी ।

तेरहवीं सदी के बाद सांधार प्रासाद जैसे महाप्रासाद बँधाते नही । अिनके प्रमाण और यमनियम बिलकुल जूदा होनेसे हमारे शिल्पि वर्ग अिनको भूल गये थे । किन्तु क्षीरार्णव, दीपार्णव और वृक्षार्णव ग्रंथोंमें अिनके विशद वर्णन हैं जिससे प्रारंभमें अिनको समजने में बहुत दिकतें हुअी । परंतु पुरखोंके पुराने नक्शे (स्केच) और अैसे कसोंके प्रत्यक्ष अवलोकन के बाद श्री विश्वकर्मा

और सरस्वती देवीकी कृपासे ये भेद स्वयम् समजने में आते रहे और अुनके पाठोंके प्रत्यक्ष प्रमाण मिलते रहे । अिससे मेरा मन मयूर नाच अुठता । मेरे अिन प्रयत्नोंका प्रयोग श्री सोमनाथके भ्रमयुक्त सांधार महा प्रासादके निर्माण में सफल करनेका मौका मिला। यह आकस्मिक ही हुआ। किसी भी विद्याकी साधना किसी भी समय पर–जल्द या देरीसे–सफल होती ही है ।

शिल्पग्रंथों के प्रकाशनकी अपनी महेच्छा मैंने दीपार्णवसे शुरू की। और पाँचेक पुस्तकोंकी प्रेस कापी अपने पास हैं–जिनको क्रमशः यथाशक्ति प्रकाशन करनेकी अपनी अिच्छा है । दीपार्णव के प्रकाशनमें खर्च ज्यादा हुआ यद्यपि राष्ट्रपतिजीने मुझे ४००० रुपयेंका पारितोषिक दिया था। अिसके बाद प्रासादमञ्जरी प्रकाशित करनेका अपना और प्रयत्न है जिसे शिल्पज्ञ और कलारसिक विद्वान अपनायेंगे अैसी आशा रखता हूँ ।

प्राचीन विद्याग्रंथोंका संशोधन अेक बात है और संशोधनके साथ अुनका अनुवाद करना यह तो अिससे ही कठिन बात है । अनुवादके साथ मर्म तो सिर्फ अुस कलाके परंपरागत वारिस ही समझते हैं अगर केवल अनुवाद मर्म और रेखाचित्र विहीन हो तो अुसकी कीमत ही नहीं । भाषानुवादके साथ प्रत्येक अंगकी टीका, अन्य ग्रंथोंके मतभेदोंकी नोंध भी देना जरूरी है। विषयोंका मर्म समझने के लिये अुनके नीचे फूटनोट देकर समझानेकी कोशिश की है । कोठे, नक्शे, चित्र देकर विषयको बराबर समझानेकी भरसक कोशिश की है । क्रियात्मक (प्रेक्टीकल) ज्ञान के मर्म देने से ग्रंथ संपूर्ण होता है। ग्रंथ के मूल पाठों के साथ गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजी आवृत्तियोंका प्रकाशन करके देश और विदेशमें रसज्ञ विद्वान वर्ग अुसकी कदर करेंगे अैसी आशा है ।

किसी भी विषयमें मतमतांतर तो होते ही हैं । मूलपाठका अर्थ बिठानेमें मतभेद हो सकता है । कअी बार मूलपाठ और क्रियामें भिन्नता होने से अैसा होता है । किन्तु विद्वान कभी दुराग्रह नहीं रखते । क्रियाका अलग अर्थ बिठाकर कोअी कार्य हुआ हो तो वह गलत है अैसा नहीं कहा जा सकता।

क्षमायाचना—

कविकी जिह्वामें और शिल्पिके हाथमें सरस्वती का वास है । अिससे शिल्पिकी वाणी या कलममें कोअी त्रुटी या गलती हो तो अिसके प्रति दुर्लक्ष करना अैसी सिन्नत है । अशुद्धि की ओर उपेक्षा करके ग्रंथका मूल अर्थ–भाव ही ग्रहण करें और हंस रस वृत्तिको करें यही आशा है ।

कैलास वासी पूज्य पिताजी और अपने ज्येष्ठ बंधु श्री. त्र्यंबकलाल भाअी और भाअीशंकर भाअी ने संस्कारका सिंचन किया और मार्गदर्शन दिया—जिसका कर्ज कभी नहीं चुका सकुंगा। कनिष्ठ बंधु रेवाशंकर भाअीने अपने ग्रंथ प्रकाशनमें जो श्रम अुठाया और अपने अनुभव का लाभ दिया अिसके लिये मैं अुनका भी ऋणी हूँ। अिस तरह बड़ों—बुजर्गोका ऋण स्विकारते में पुलकित हो अुठता हूँ। अुनके शुभाशिर्वादोंकी कृपा वर्षा अहर्निश अपने पर होती रहे अैसी जगन्नियंता श्री हरिके पास अपनी नम्र प्रार्थना है।

अिस ग्रंथका हिन्दी अनुवाद डुंगरपुर निवासी कुशल आचार्य श्री. भारतानंदजी सोमपुराने किया और प्रस्तावना का हिन्दीकरण अपने स्नेही मित्र श्री. कपिलराय जेसुखलाल आचार्य ने किया। अिन दो भाअियोंका मैं आभारी हूँ।

ग्रंथकी भूमिका समर्थ पुरात्वज्ञ डो. वासुदेव श्री शरणजीअग्रवालजीने लिखने की कृपा की अुन महाशयका में ऋणी हुँ।

अिस ग्रंथका अंग्रेजी अनुवाद तथा प्रस्तावना अपने परम मित्र पुरातत्व रसज्ञ श्री. मधुसुदनभाअी अमीलालभाअी ढाकीने कर दिया जिसके लिये अुन्होंने मुझे उपकृत किया है। अगर अुनकी मदद न होती तो यह कार्य अितना न हो सकता और बार बार अैसे प्रकाशनों के लिये अुन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया।

ग्रंथका छपाअी काम अितनी जल्दी से अपने प्रिन्टिंग प्रेसमें कर देने के लिए श्री. चंदुलाल भाअी (अपना प्रेस भावनगर) और प्रेस कामदारोंको धन्यवाद। ग्रथमें दिये हुअे चित्र—नक्शे आदिके ब्लोक के लिये राजकोटकी रूपम् प्रिन्टरी के मालिक श्री. बाबुभाअी वाघेला का अहसानमंद हूँ।

" सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु, मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ॥ "

ता. ३० ओगष्ट—१९६४.
श्रावण वद ८ जन्माष्टमी वि. सं. २०२०.
शिल्पि निवास, पालीताणा (सौराष्ट्र)

स्थपति—प्रभाशंकर ओघडभाअी
सोमपुरा शिल्पशास्त्री

अथ प्रासादमञ्जरी की विषयसूची



प्रासादमञ्जरी ग्रन्थमैं उपर्युक्त शास्त्रीय ग्रन्थसूचि

ऋण स्वीकार

विश्वकर्मा प्रणित :-

१ क्षीरार्णव
२ दीपार्णव
३ वृक्षार्णव
४ ज्ञान रत्नकोश
५ सूत्र संतान अपराजित
६ विश्वकर्मा प्रकाश

सूत्रधार मंडन कृत :-

७ प्रासाद मण्डन
८ देवतामूर्ति प्रकरणम्

सूत्रधार विरपाल कृत :-

९ बेडाया प्रासादतिलक

सूत्रधार राजसिंह कृत :-

१० वास्तुराज

भोजदेव कृत :-

११ समराङ्गण सूत्रधार
१२ बृहद्संहिता

द्रविडग्रन्थ :-

१३ मानसार
१४ मयमतम्
१५ काश्यपशिल्पम्
१६ मत्स्यपुराण
१७ अग्निपुराण

हमारा शिल्प स्थापत्य ग्रन्थोंका प्रकाशन

१ दीपार्णव :–

श्री विश्वकर्मा प्रणित शिल्पका प्राचीन महान ग्रन्थ–७६+४८८:५५४ पृष्ठों, ३५० लाइन ब्लोक रेखाचित्र; १०५ हाफटोन ब्लोक सहित, मूल श्लोक, टीकायुक्ति, मर्म और टीपणी आदिसे भरपूर, संपूर्ण विवरण कें साथका। दलदार ग्रन्थ; अध्याय २७ जिनमें अनेक देव–देवीओंका शिल्पाकृतियाँ–सांधार तल प्लान इलिवेशन साथ दिये गये हैं। अिस ग्रन्थ पर ना० जामसाहेब, श्री कनैयालाल मुनशीजी, डो. वासुदेवशरण अग्रवालजीने विस्तृत भूमिका दी है। सरकारका टेम्पलसर्वे सुप्री. श्री कृष्णदेवजी, द्वारिका पीठके श्रीमद् शंकराचार्यजी, जैनाचार्य श्री विजयोदयसूरिश्वरजीने ग्रन्थकी प्रामाणिकता, उपयोगिता, और श्री प्रभाशंकरभाइके दीर्घ अनुभवकी प्रसंशा की है। ४४ पृष्ठोंकी विद्वतापूर्ण प्रस्तावना पढनेसे संपादकके अनुभव और विद्वताका परिचय होता है।

मूल्य रु. २५. डाक खर्च पृथक

२ प्रासादमञ्जरी (हिन्दी) :–

पंदरवीं शताद्बिका यह ग्रन्थ सूत्रधार नाथजी– जो सूत्रधार मण्डनके छोटे बन्धु थे उन्होने " वास्तुमञ्जरी " नामक वही ग्रन्थ लिखा था उसके मध्यका स्तबक प्रासाद विषयका संक्षिप्त रुप है। उसमें ९० पृष्ठ, ८० ब्लोक रेखाचित्र और हाफटोन २० है। इस ग्रन्थकी भूमिका एशिया खण्डके सुप्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ डो. वासुदेवशरण अग्रवालजीने लिखी है। जिसमें ग्रंथकी और संपादक श्री प्रभाशंकरभाइकी विद्वताका परिचय दीया है।

ग्रन्थकी हिन्दी आवृत्तिका मूल्य रु. ६–५० डाक खर्च पृथक

३ प्रासादमञ्जरी (गुजराती) :-

उपरोक्त लिखे विवरणवाली गुजराती आवृत्ति. मूल्य रु. ६-५० "

४ PRASĀDAMANJARI (अंग्रेजी) :-

उपरोक्त दीये हूये विवरणवाली अंग्रेजी आवृत्ति-जिसका अंग्रेजी अनुवाद और अन्य विभाग. प्रस्तावना आदि विभाग पुरातत्वज्ञ विद्वान श्री मधुसुदन भाई ढाकीने अच्छी तरहसे लिखा है। भारतके प्रत्येक प्रांत और विदेशके शिल्प विषयका रसज्ञ विद्वानोंको भारतीय प्राचीन कलाका परिचय हो। अिस तरहसे लिखा है। मूल्य रु. ७-०० सात, डाक खर्चा पृथक

५ वेधवास्तुप्रभाकर :-

इस ग्रन्थमें प्रासाद गृह, प्रतिमा आदिके वेधदोषका विवरण दीये हैं। विविध प्राचीन ग्रन्थोंके प्रमाणोंके सार अच्छी तरहसे लिखे हैं। यह ग्रन्थ "दीपार्णव" ग्रन्थकी पूर्तिरूप है। अुसमें क्रिया, विधि आदिका साहित्य भी दीया है। ये ग्रन्थ प्रेसमें छपा रहा है।

मूल्य रु. ६ छ, डाक खर्च पृथक

६-७ क्षीरार्णव—वृक्षार्णव :-

विश्वकर्मा और नारदजीका संवाद रुप दोनो ग्रन्थ-अद्भूत अद्वितीय है। सांधार महा प्रासादो, और चतुर्मुख महा प्रासादोंके विषयमें तीनसे-बारा भूमि तकका उदययुक्त महा प्रासादका अद्भूत विवरण दीया है। दुष्प्राप्य शिल्प साहित्य प्राप्ति हुआ है। क्षीरार्णवका २२ अध्याय, ८०० श्लोक संख्या है और प्रासाद १८०० श्लोक प्रमाण है। यह दुष्प्राप्य ग्रन्थका संशोधन हो रहा है। दोनु ग्रन्थमें महा चतुर्मुख प्रासादकी चारो और २७, २७ मंण्डप मेघनाथ आदि बनानेका विवरण है। तीन भूमितककी लिंङ्गकी स्थापना की विधि चतुर्मुखमें कहा है। एसा अद्भूत ग्रन्थ दुर्लभ है।

८ बेडाया प्रासाद तिलक :-

ये ग्रन्थ पंदरवीं शताद्वीका सूत्रधार विरपालकी रचना है। शिल्पका अन्य ग्रन्थकी अनुष्टुप छन्दमें रचना की है। ये प्रासाद तिलक संस्कृत राग रागिनीमें शार्दूलविक्रीडित, वसंततिलका आदि छंदमें ग्रन्थकी सुंदर रचना की है। अवतक उसका चार अध्याय प्राप्त हुआ है। ग्रन्थका संशोधन कार्य चल रहा है।

प्रकाशको :

बलवंतराय प्र. सोमपुरा एवं भ्रातृओ

३. पथिक सोसायटी सरदार पटेल कोलोनी

अमदावाद-१३

भूमिका लेखक, अेशियांखंड के सुप्रसिद्ध कला स्थापत्य का मर्मज्ञ–प्रखर पुरातत्वज्ञ डॉ. वासुदेवशरणजी अग्रवालजी–अध्यापक–कला और स्थापत्य विभाग–काशी विश्वविद्यालय

भूमिका

डॉ. श्री वासुदेवशरण अग्रवाल

श्री प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुरा हम सब के धन्यवाद के पात्र है। क्योंकि उन्होंने भारतीय स्थापत्य एवं शिल्प शास्त्र के कई उत्तमग्रन्थों का उद्धार किया है। इससे पूर्व वे शिल्प के महान् ग्रन्थ दीपार्णव का मूल सानुवाद और सचित्र प्रकाशन कर चुके हैं। वह प्रमाणिक ग्रन्थ देव मन्दिरों के निर्माण से संवान्वित बहुविध सामग्री से युक्त है। प्रस्तुत ग्रन्थ "**प्रासाद मञ्जरी**" को मूल अनुवाद और विस्तृत प्रस्तावना के साथ प्रकाशित करने का श्रेय श्री सोमपुराजी को है। मुझे इस बात का हर्ष हैं कि दीपार्णव की भांति "प्रासाद मञ्जरी" की भूमिका लिखनेका कार्य श्री प्रभाशंकरभाई ने अपने सहज–स्नेह वश मुझे सोंपा है। में उनके इस सत्प्रयत्न का स्वागत करता हूं। उन्होंने अपने इस ग्रन्थ का विस्तृत प्रस्तावना में भारतीय स्थापत्य शास्त्र और स्थपतियों के संबन्ध में बहुत सी मूल्यवान् और रोचक सामग्री दी हैं–उसे पढकर मुझे ज्ञान–लाभ और प्रसन्नता हुई हैं। **श्री प्रभाशंकर ओघडभाइ प्राचीन स्थापत्य वंश के रत्न हैं** और उन्होंने स्थापत्य शास्त्र के प्रायोगिक विज्ञानकी अभितक रक्षा की है। परंपरागत ऐसी किंवदत्ती है कि सौराष्ट्र देश में प्रभास पट्टन में भगवान सोमनाथ के महान् देवालय का निर्माण हुआ इसी समयसे सोमपुरा स्थपतियों के पूर्व वंशो का प्रारंभ हुआ। अवश्य ही उन स्थपतियों ने एक नवीन स्थापत्य शास्त्र,वास्तुशास्त्र और शिल्पशास्त्र का जन्म दिया। उन्हीं की संचिलित प्रयोग विधि से सौराष्ट्र प्रदेश में एक से एक विलक्षण मन्दिरों का निर्माण होता रहा। इस संबन्ध में रैवतक या गिरनार के शिखर पर बने जैन मन्दिरों का एवं पालिताना के निकट शत्रुंजय पर्वत पर बने मन्दिरों पर विशेष ध्यान जाता है। उसी संदर्भ में अर्बुद या आबूपर्वत पर बने महान् जिनालयों का स्मरण भी आता है। कितने देवालय सोमपुरा के स्थापतियों द्वारा बांधे गए अथवा उनके द्वारा प्रचारित शैली में निर्मित् हुए। इसका सर्वेक्षण गुजरात सौराष्ट्र और दक्षिणी क्षेत्रमें होना आवश्यक है। ऐसा उल्लेख है कि मेवाड

के महाराणा कुम्भा ने जब अपने प्रदेश में स्थापत्य और शिल्प को नवीन प्रोत्साहन देना चाहा तो उन्होंने सौराष्ट्र से शिल्पीयों को आमंत्रित किया।

राणा कुम्भा ने चित्तौड में सुप्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ का निर्माण कराया। उनके राज्य में कई प्रसिद्ध शिल्पी थे। उनके द्वारा राणा ने अनेक वास्तु और स्थापत्य के कार्य सम्पादित कराये। कीर्तिस्तम्भ के निर्माण का कार्य सूत्रधार 'जइता' और उसके दो पुत्र 'नापा' और 'पूँजा' ने १८८२ से १८९८ तक के समय में पूरा किया। इस कार्य में उसके दो अन्य पुत्र पामा और बलराज भी उसके सहायक थे। राणा कुम्भा के अन्य प्रसिद्ध राजकीय स्थपति सूत्रधार मण्डन हुए। वे संस्कृत भाषा के भी अच्छे विद्वान थे। उन्होंने निम्निलिखित ग्रन्थों की रचना की।

प्रासादमण्डन, वास्तुमण्डन, रूपमण्डन, राजवल्लभमण्डन, देवतामूर्ति-प्रकरण, रूपावतार, वास्तुसार, वास्तुशास्त्र। राजवल्लभ ग्रन्थ में उन्होंने अपने अपने संरक्षक राणाकुम्भा का गौरव के साथ उल्लेख किया है। रूपमण्डन ग्रन्थ में सूत्रधार मण्डनने अपने विषय में लिखा है :—

श्री मद्येशे मेदपार्यभिधाने क्षेत्राख्योऽभून सूत्रधारो वरिष्ठः।
पुत्रो ज्येष्ठो मण्डनस्तस्य तेन प्रोक्तं शास्त्रं मण्डनं रूप पूर्वम् ॥ ६-४०

इससे ज्ञात होता है कि मण्डन के पिता का नाम सूत्रधार क्षेत्र था। इन्हें ही अन्य लेखों में क्षेत्राक कहा गया हे। क्षेत्राक का एक दूसरा पुत्र सूत्रधार नाथ था जिसने वास्तुमञ्जरी नामक ग्रन्थ की रचना की। इस वास्तुमञ्जरी में तीन स्तबक हैं, उसी का मध्य स्तबक यह प्रासाद मंजरी है। जिसे अलग अलग करके श्री प्रभाशंकरजी ने यहां संपादित किया है और अभिप्रायसूचक अनुवाद भी प्रकाशित किया है। इस ग्रन्थ में १८७ श्लोक है। उनके वर्ण्य विषय प्रायः वही है जो प्रासाद शिल्प के अन्य ग्रन्थों में पाए जाते हैं। सूत्रधार मण्डन कृत प्रासाद भण्डन एवं ठक्कुर फेरु कृत वास्तुसार इसके निदर्शन हैं। फिर भी जसा ग्रन्थकर्ता सूत्रधार नाथ ने अपने ग्रन्थ के अंत में लिखा है। उन्हों ने प्रासाद या देवमन्दिर का जो उनके समकालीन या पूर्ववर्ती साहित्य था उसका सार ग्रहण करके अपने ग्रन्थ की रचना की। इसके अनेक वर्ण्य-विषय इस प्रकार जानने योग्य है :-

आरम्भ में कल्पना की गई है कि हिमालय में स्थित भगवान् शिवकी पूजा के लिए देवता असुर और मनुष्य एकत्र हुए और भगवान् की पूजा कि। सर्वोत्तम प्रकार उन्हें यही प्रतीत हुआ कि उन्होंने देश-भर में व्याप्त १४

जातियों के मन्दिर बनाकर उनमें शिवलिङ्गो की स्थापना की और भगवान् शिव की अर्चना की। यह लेखक की बुद्धिमण्डित कल्पना है जिसकी पृष्ठ भूमि में उन्होंने देशभर में व्याप्त १४ जातियों के प्रासादों के नाम गिनाए हैं (श्लोक १–३३)। इसके अनन्तर कहा है कि वास्तु निर्माण में मिट्टी, काष्ट, इष्टिका, शिला, धातु और रत्नों का यथारुचि-यथाशक्ति उपयोग किया जाता है और तदनुसार ही उत्तरोत्तर अधिक फल भी प्राप्त होता है (श्लो० ४–५)। फिर निर्माण कार्य आरम्भ करने के लिए शुभ मुहूर्त बताए गए हैं। भू परीक्षा (७) वास्तुपूजा, वास्तुपुरुष पूजन (८–११), त्याज्य या अशुभ मुहूर्त (१२ – १३), आयव्यय (१४ – १५) नाग वास्तु (१६) कूर्म (१७ – १८); शिलारोपण विधि (१९–२१) गृहारम्भ शुभ नक्षत्र (२२), शिला स्थापन शुभ नक्षत्र (२३), प्रासाद योग्य स्थान (२४ – २५) वास्तु द्रव्यानुसार पुण्य प्राप्ति (२६), वास्तु पूजन के सात विशेष अवसर (२७), वास्तु पुरुष शान्ति के १४ मुहूर्त (२८–२९); प्रासाद प्रमाण (३०) प्रदक्षिणा पथ के साथ सांधार प्रासाद का प्रमाण (३१–३३) प्रासाद की रेखा में रथ, प्रतिरथ, कोणरथ और फालनाओं का निर्गम (३३–३६): जगती (३७–४०) जगती पीठ के उदय का प्रमाण (४०–४१) चतुरस्र आयत वृत्त अष्टास्र, वर्तुलायत (बेंसर जिसका पीछे का भाग वर्तुल और आगे का आयत होता है) प्रासाद के संमुख भाग में बने हुए सोपान के ऊपर तोरण (४२–४३)। प्रासाद के सामने कुछ हय हुआ देवता के वाहन का मण्डप (४४) जिन प्रासाद रचना (४५–४७), नाभिवेध (४७–५०), प्रणाल विचार (५०–५१); आयतन अर्थात् मूल पुरुष के प्रासाद में अन्य देवों के स्थान, (५२ – ५४) त्रिदेवस्थानक्रम (५५) इतने विषयों का प्रस्तावना रूपमें वर्णन है। इसके अनन्तर ब्रह्मसूत्रमें प्रासाद निर्माण विधि का वर्णन करते हुए सर्वप्रथम अनगढ खंड शिला के अपर तीन भिट्टों की कल्पना का उल्लेख है। भिट्ट एक प्रकार से प्रासाद की नीव होते है। उनकी दृढता पर प्रासाद की दृढता निर्भर करती है (५६–५७) भिट्टों के उपरु पीठका निर्माण किया जाता है उसेही जगती पीठ भी कहते है। इसी पीठ में कई प्रस्तर के घर बनाए जाते थे किन्तु उनकी कल्पना ऐच्छिक थी श्री सोमपुराजी ने नामतः उनका उल्लेख किया है। इनके अन्तर प्रासाद के उत्सेध का वर्णन किया गया है जो छज्जे के भाथेतक लिया जाता हैं (६१–६२) इसी में मण्डोवर विभाग की कल्पना है। मण्डोवर शब्द अपना विशेष महत्त्व रखता है। प्रासाद के ऊत्सेध छन्द का मध्य भाग मण्डोवर में विशेष रूपमे से देखा जाता है। मण्डोवर शब्द की व्युत्पत्ति विशेषरुप से उल्लेखनीय है। किसी ऊचें मंच या चबुतरे को मण्ड कहते थे जैसे कुए की जगत मण्ड कही जाती

है। प्रासादका मण्ड उत्सेका जगती पीठ होता था उसके अपर प्रासादका जो भाग पीठ से छज्जे तक बनाया जाता था वह मण्ड के उपर होने के कारण मण्डोपरि या मण्डोवर कहलाया। इसी मण्डोवर भाग में गर्भगृह रहता है। यहां मण्डोवर के उत्सेध या उदय अथवा ऊँचाई के १४४ भाग करके उन भागों के भिन्न भिन्न नाम दिए गए हैं—जैसे खरा कुम्भा, कलश, अन्तराल, केवॉल आदि, मण्डोवर के रूप संपादन के लिए उनमें से प्रत्येक का अपना महत्त्व है (६३–६५) गर्भगृह के द्वारमान का वर्णन सुनिश्चियत और सटीक है। यह वर्णन प्रासाद–शिल्प संबन्धी सभी छोटे वडे ग्रन्थों में पाया जाता है। वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में द्वार के पार्श्वस्तंभोंपर माङ्गल्य विहंगों का उल्लेख किया हैं। अबतक केवल तेजपुर के दहपर्वतिया मन्दिर के पार्श्वस्तम्भों पर ही उत्कीर्ण पाए गए है। वे अत्यन्त सुन्दर उडते हुए हंसो के रूप में हें। द्वार के पार्श्वस्तम्भों को द्वार शाखा कहतें है और प्रत्येक शाखा के कई अवान्तर भाग होतें हैं जिन्हें संस्कृत में उपशाखा या हिन्ही-में बांट कहते है। प्रासाद मञ्जरी के अनुसार द्वार शाखों के १, ३, ५, ८ और ९ तक खांचे या अवांत्तर विभाग बनाए जाते हैं। हिन्दी में अभीतक त्रिसाही (त्रिशाखा) पंचसाही (पञ्चशाखा) शव्द चलते हैं। इन शाखाओं के अलंकरणों पर स्थपति और काष्ट कर्म करनेवाले बहुत ध्यान देते हैं। ज्ञात होता है कि इनकी रचना में प्राचीन परम्पराएं भी अवशिष्ट रह गई हैं। शाखाओं पर प्रतिहार या द्वारपाल की मूर्तियां विशेषत बनाई जाती थीं। कभी कभी उनके हाथ में पूजा को मालांएं भी रहती हैं। द्वारका सबसे विशिष्ट अलंकार गंगा और यमुनां की मूर्तियां हैं जो अपने वाहन मकर, कच्छप पर पूर्णघट और चामर लिए हुए दिखाई जाती है। गुप्त कालीन मन्दिरों में हीं इन्हें उत्कीर्ण किया जाने लगा था। जैसा कालिदास के स्पष्ट उल्लेख से ज्ञात होता हैं।

मूर्ते च गंगा यमुने तदानीं स चामरे देवमसेविषाताम्।
समुद्रगा रूप विपर्ययेऽपि सहंसपाते इव लक्ष्यभागे॥

[कुमार संभव ७–४२]

चामर लिए हुए गङ्गा यमुना की मूर्तियों के उडते हुए हंसो का वह उल्लेख बहुत ही महत्त्वपुर्ण है। इस अलंकरण का शवसे विशिष्ट स्वरूप देवगढ के गुप्तकालीन दशावतार मन्दिर में पाया जाता है। उसमें गङ्गा यमुना कीं मूर्तियां द्वार के अपरी कोनो में बनाई गई हैं किन्तु कालान्तर में वे पार्श्वस्तम्भों के लेचन भाग में बनाई जाने लगी। और भी उपशाखाओं पर मिथुन प्रथथ या गण चतुर्दल कमल आदि शोभनीय अलंकरणों से द्वार को सुन्दर वनाया जाता था।

भारतीय मन्दिर द्वारें का सर्वाङ्गीण अध्ययन अभीतक नहीं किया गया । द्वार के देहली भाग में निकलता हुआ अर्द्धचन्द्र और शंखोद्वार अलंकरण भी रखते थे जिनका उल्लेख श्री सोमपुराजीने किया है। मध्यकालीन उपशाखाओं में और भी कई प्रकार के अलंकरण बनाए जाते थे। द्वार के शीर्षदल (हिन्दी–सिरदल) या उत्तरंगे पर मध्यभाग में गर्भगृह के देवताके अनुरूप एक प्रतिमा बनाई जाती थी जिसे ललाट–बिम्ब कहा जाता था। विष्णु के मन्दिरें में वह गजलक्ष्मी की मूर्ति होती थी–जिसके कारण उसे लक्ष्मी–बन्ध भी कहते थे। देवगढ के दशावतार मन्दिर में कुण्डलित शेषनाग के आसन पर स्वयं विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति अङ्कित की गई है। उसी पृष्ठ भूमि में कालिदास ने विष्णु के लिए भोगीभोगासनासीन (रघु० १०–७) विशेषण का प्रयोग किया है ।

प्रासाद के निर्माण में दूसरा अङ्ग शिखर है। उसके विषय में उरुशृङ्ग और शृंङ्गो को कल्पना महत्त्वपूर्ण है। जिसका अच्छा वर्णन यहां किया गया है। मध्यकालिन मन्दिरें में शिखरें का बहुमुखी विस्तार हुआ। शिखर के अङ्ग प्रत्यङ्गों का और उनकी रेखाओं का संपूर्ण अध्ययन अभी स्पष्टता से करने योग्य है। शिखर के निर्माण में अण्डक तवङ्ग और तिलक का भी उल्लेख किया गया है किन्तु उनका स्पष्टीकरण व्याख्या सापेक्ष है। शिखर की चोटी के पर आमलक शिला का भी महत्त्व पूर्णस्थान है । अवयवें का कुछ स्पष्ट उल्लेख इस ग्रन्थ में पाया जाता है ।

इसके अनत्तर विभिन्न प्रकार के प्रासादें का वर्णन किया गया है। (श्लोक १०५–१३४) । प्रासादें के भेद मुख्यः शिखरें की विभिन्न कल्पनाओं पर निर्भर है। एवं शिखरें के भेद शृङ्ग ऊरुशृङ्ग अण्डक और तिलक आदि के भेंदोपभेदें पर निर्भर करतें हैं । उनका विवरण इस प्रासाद मञ्जरी ग्रंथ में तथा शिल्प के अन्य अनेक ग्रंथें में भी दिया गया है । परम्परा प्राप्त स्थपति इन्हें जानते आए है। और इन्ही के अनुसार विभिन्न प्रकार के शिखर युक्त प्रासादें का बन्धान बांधते है। प्रासाद निर्माण में मण्डपें का भी विशेष महत्त्व है । गर्भगृह के सामने अंत्तराल मण्डप रङ्गमण्डप, नृत्यमण्डप, मुखमण्डप, भोगमण्डप आदि कई प्रकार के मण्डपें का निर्माण किया जाता था । और उनके द्वारा ही प्रासाद का पूरा स्वरूप विकसित होता था । मध्यकाँलीन मन्दिरें में मण्डपें के स्वरूप का अध्यधिक विस्तार किया गया । मण्डपें के स्तम्भ, वितान, गुमट संवरण और शिखर आदि के विषय में बहुत अधिक सामग्री शिल्प ग्रंथें में पाई जाती है। उसका भी विशेष रूप सें अध्ययन आवश्यक है । विशेषतः उड़ीसा के मन्दिरें

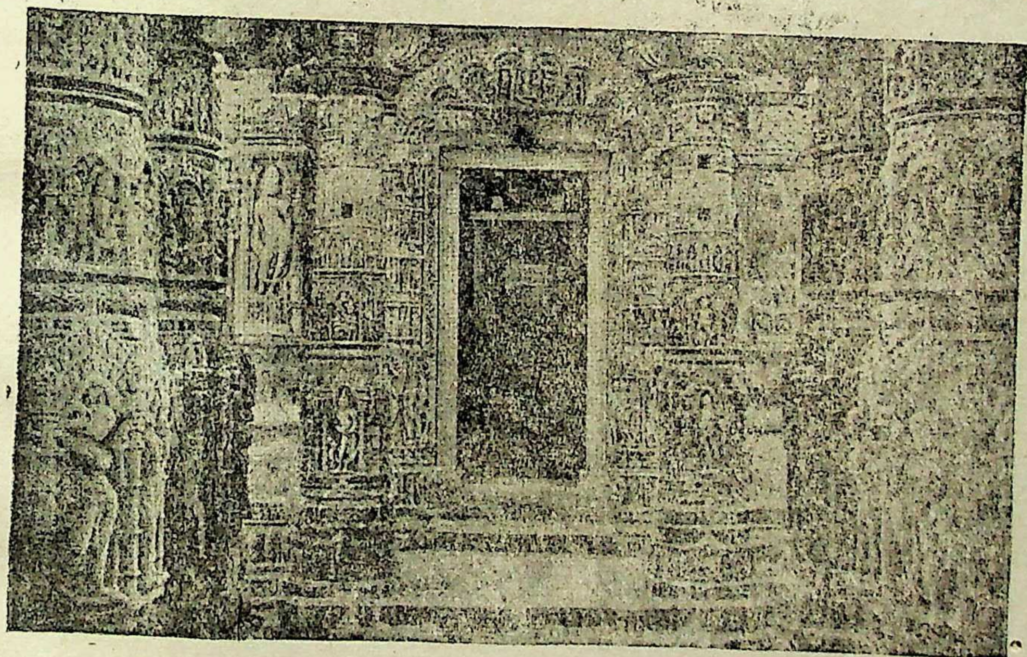
में रङ्गमण्डप को पीढ़ा देउल कहा जाता है और उनके कई प्रकार के उठान वाले पीढ या पीढाओं की संख्या उनके घण्टा और सिंह के विवरण पर विशेष ध्यान दिया जाता था। मध्यदेश के चन्देल मन्दिरों (खजुराहो) में भी रङ्गमण्डप के वितान की कल्पना अत्यन्त सुन्दर रूप में पाइ जाती है। चालुक्य कालीन मन्दिरों एवं राजस्थानी मन्दिरों में भी उनके शिल्प पर विशेष ध्यान दिया गया और उनके स्तम्भों की संख्या का अधिकाधिक विस्तार किया गया।

प्रासाद निर्माण में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान अर्चा या देवप्रतिमा का है जिसकी स्थापना गर्भगृह में की जाती है। इस शास्त्र की विशेष विधि प्रतिमालक्षण नामक ग्रन्थों में पाई जाती हैं। प्रतिमा का प्रमाण और स्वरूप दोनों ही वर्णन के विषय हैं। इन्हीं के सूक्ष्म परिचय के आधार पर कुशल शिल्पी सुन्दर प्रतिमाओं का निर्माण करते हैं। प्रतिमा जितनी सुन्दर होती है उतना ही अधिक देवता का सांनिध्य उसमें माना जाता है। प्रतिमा के सौन्दर्य से दर्शक को मनः समाधि प्राप्त होती है। देवता का सान्निध्य यही प्रतिमा का साफल्य है, और उसी की चरितार्थता के लिए प्रासाद का निर्माण किया जाता है। एक और सौंदर्यशास्त्र के अनुसार देवप्रतिमा की सुन्दरता का अस्तित्व रहता है, दूसरे और देवता की आराधन करने वाले भक्त के मन को शक्ति या मनः समाधि–अस्तित्त्व है। दोंनों के संयोग से प्रासाद में देव पूजन की सफलता सिद्ध होनी है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में कहा है कि प्रासाद निर्माण में अन्तर्वेदि ओर ब्रहिर्वेदि दोनो की सिद्धी प्राप्त होती है। अन्तर्वेदिका तात्पर्य यज्ञ–यागादि से एवं बाहिर्वेदि इष्टपूजादि धार्मिक कार्योंने हैं। प्रासाद निर्माण से इन दोनोका फल प्राप्त होता है। प्रासाद निर्माणका एक प्रत्यक्ष फल वास्तु स्थापत्य, शिल्प, चित्र, नृत्य, गीतादि कलाओं की आराधना भी है एवं इन कलाओका दर्शन सर्वसाधारण के लिए सुलभ हो जाता है। अतः प्रासाद निर्माण कोई साधारण बस्तु नहीं. अपितु महान् पुण्य है। जिसके द्वारा समस्त लोक को देवत्व के प्रभावका अनुभव होता है।

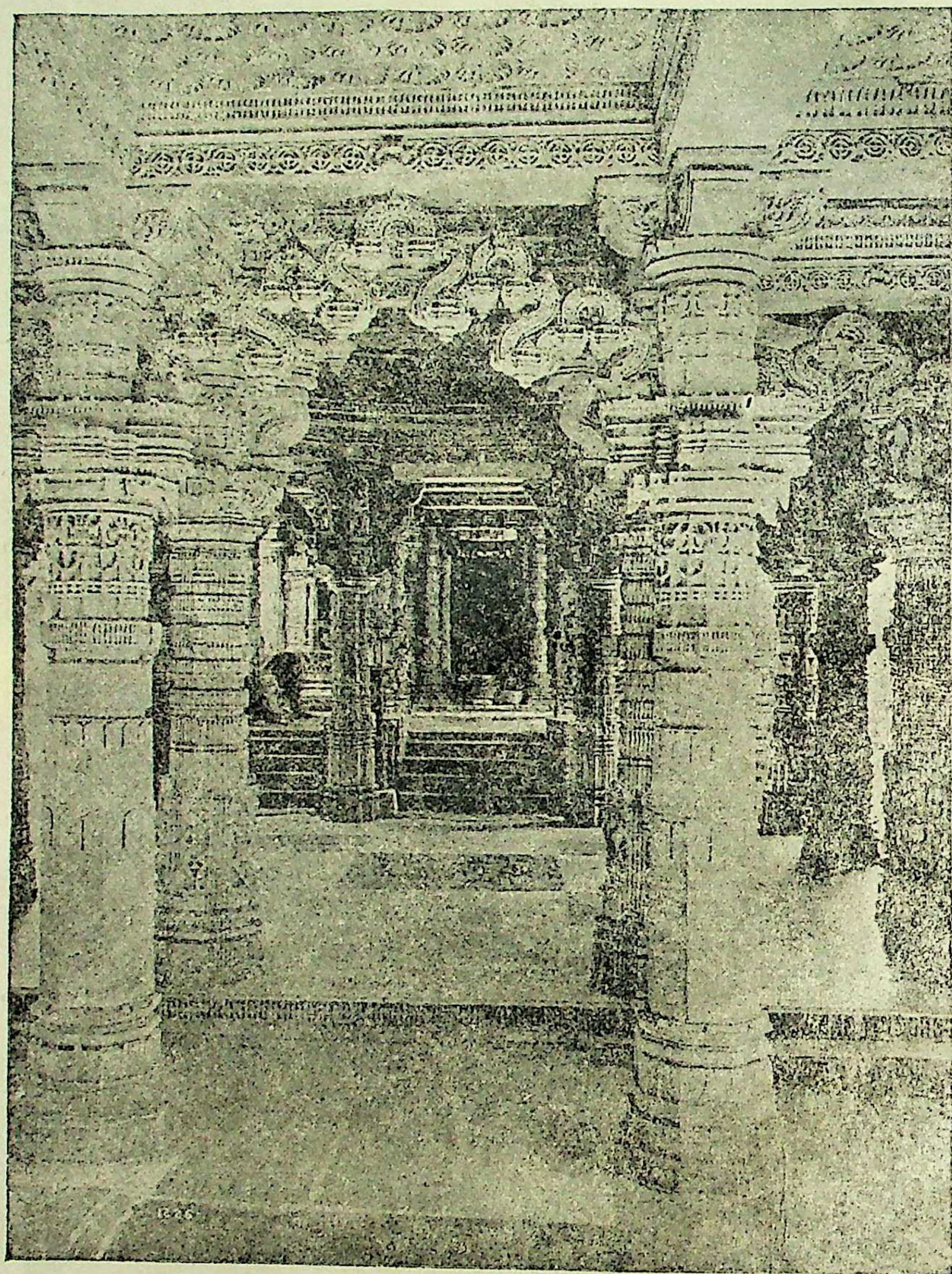
प्रासाद निर्माण के परिसमाप्ति पर सूत्रधार स्थपति का पूजन अवश्य करना चाहिए सूत्रधार की प्रतिमाही सुन्दर प्रासाद का रूप ग्रहण करती हैं सूत्रधार के आराधन ही प्रासाद निर्माण की सानंन्द समाप्ति समजनी चाहिए।

(ह.) वासुदेवशरण
का. हि. वि. वि. वाराणसी

सोमनाथ के सन्मुख दर्शन ।



मोढेराका सूर्यमंदिरका द्वार और स्थंभो



आबु – देलवाडा जैन मंदिरका स्थंभ और हिन्डोल के तोरण ।



सूत्रधार नाथुनी विरचित वास्तुमञ्जर्यान्तरगत

प्रासादमञ्जरी

प्रासादजाति

हिमालये दारुवने सुरासुर नरादिभिः ।
प्रासादाकार पूजाभिः पुरोदेवः शिवोऽर्चितः ॥१॥

प्रासादानां तत्र जाता जातयस्तु चतुर्दश: ।
नागरा द्राविडाश्चैव लतिनाख्या च विमानका ॥२॥

मिश्रकाख्या वराटाश्च सांधाराभूमिजास्तथा ।
विमाननागरास्तद्वद्विमानपुष्पका भिधाः ॥३॥

वलभी फांसनाकारा सिंहावलोक रथारुहाः ।

वास्तुद्रव्यानुसारपुण्यफल

मृदाकाष्टेष्टकाशैल धातुरत्नादिभिः सुधीः ॥४॥

कुर्यात् स्वशक्त्या प्रासादं चतुर्वर्ग फलप्रदः ।
पांसुनापि सुरागारे क्रीडया विहितेश्रियः ॥५॥

कार्यारंभेशुभमुहूर्त

सुलग्ने शुभनक्षत्रे पंचग्रहबलान्विते[1] ।
मास संक्रांतिवत्सादि निषिद्धकालवर्जिते ॥६॥

भू परिक्षा

सर्वदिक्षुप्रवाहो वा प्रागुदक् शंकरप्लवम् ।
भुवंपरीक्ष्यसिंचयेत् पंचगव्येन कोविदः ॥७॥

वास्तुपूजा

मणिना स्वर्णरुप्येण विद्रुमेण फलेन वा ।
चतुःषष्टिपदैर्वास्तु लिख्येद्वापि शतांशकैः ॥८॥

पिष्टे च वाक्षतैरुर्ध्वे ततोवास्तु समर्चयेत ।
पूर्वोक्तेन विधानेन बलिपुष्पादि पूजयेनैः ॥९॥

इन्द्रोवह्निः पितृपति नैऋत्यो वरुणो मरुत् ।
कुबेर इश पतयः पूर्वादिनां दिशांक्रमातः ॥१०॥

दिक्पालः क्षेत्रपालश्च गणेशश्चंडिका तथा ।
एतेषां विधिवत् पूजा कृत्वा कर्म समारंभेत् ॥११॥

त्याज्यमुहूर्त

धनुर्मीने स्थिते सूर्ये गुरौशुक्रेऽस्तगे विधौ ।
वैधृतौ व्यतिपाते च दग्धे नष्ट कदाचन ॥१२॥

कन्यादि त्रित्रिगेसूर्ये द्वारंपूर्वादिषु त्यजेत् ।
सृष्ट्या वत्समुखं तत्र स्वामिनोहानिप्रदभवेत ॥१३॥

1. VSS. 6–29 absent in B; VS. 17, however, is given elsewhere with a varient reading in the selfsame text.

आयादिगणित

आयो व्ययर्क्षमंशस्य भित्तिबाह्ये सुरालये ।
ध्वजायोदेवनक्षत्रं व्ययांशौ प्रथमौशुभौ ॥१४॥

केषां च मरुतां गेहे वृषसिंह गजाः शुभाः ।
मास नक्षत्र लग्नादि-चिन्तनं पूर्वशास्त्रजः ॥१५॥

नागवास्तु

नागवास्तुं समालोक्य कूर्यात् खातविधिं सुधीः ।
पाषाणांतं जलांतं वा ततः कूर्म निवेशयेत् ॥१६॥

रौप्यसुवर्णादिकूर्मप्रमाण

अर्द्धांगुलो भवेत् कूर्म एक हस्ते सुरालये[2] ।
अर्द्धांगुलो ततो वृद्धिः कार्यातिथि करावधि ॥१७॥

एक त्रिंशत् करांतं च तदर्द्धा वृद्धि रिष्यते ।
ततोऽर्द्धापि शतार्द्धांतं कूर्मोमिन्यङ्गुलोत्तमः ॥१८॥

चतुर्थांशोऽधिको ज्येष्ठः कनिष्ठो हीन योगतः ।

शिलारोपणविधि

सौवर्णो रौप्यजो वापि स्नाप्य पंचामृतेन साः ॥१९॥

इशानादग्निकोणाद्वा शिलाः स्थाप्या प्रदक्षिणाः ।
मध्ये कूर्मशिलापश्चाद् गीतवादित्र मंगलैः ॥२०॥

---

2. V. R. in B.

एकहस्ते सुरागारे कूर्ममर्द्धांगुलं न्यसेत् ।
अर्धांगुलाः प्रतिकर वृद्धिः पंचदशावधि ॥

बलिदानं च नैवेद्य न्विविधान्नं घृतप्लुतम् ।
देवताभ्यः सुधीर्दद्यात् कूर्मन्यासे शिलासु च ॥२१॥

गृहारंभशुभनक्षत्रो

सूत्रारंभो गृहादानां मुत्तरायां करत्रये ।
बाह्ये पुण्ये मृगे मैत्रे पौष्णे वासववारुणे ॥२२॥

शिलास्थापनशुभनक्षत्रो

शिलान्यासस्तु रोहिण्यां श्रवणेहस्तपुष्ययोः ।
मृगशीर्षे च रेवत्यां मुत्तरात्रितये, शुभः ॥२३॥

प्रासादयोग्यस्थानपुण्य

नद्यांसिद्धाश्रमे तीर्थे पुरेग्रामे च गव्हरे ।
वापी वाटी तडागादि स्थाने कार्यसुरालयम् ॥२४॥

देवानां स्थापनं पूजा पापहृदर्शनादिकम् ।
धर्मवृद्धिर्भवेदर्थ कामौ मोक्षस्ततो नृणाम् ॥२५॥

वास्तुद्रव्यानुसारपुण्यप्राप्ति

कोटिघ्नं तृणजे पुण्य मृण्मये दश संगुणम् ।
ऐष्टके शतकोटिघ्नं शैलेऽनंतफलं भवेत् ॥२६॥

वास्तुपूजनसप्तमुहूर्त

कूर्म संस्थापने द्वारे पद्माख्यायां च पौरुषे ।
घटे ध्वजे प्रतिष्ठायामेवं पुण्याह सप्तकम् ॥२७॥

वास्तुशान्तिचतुर्दशमुहूर्त

भूम्यारंभे तथा कर्मे शिलायां सूत्रपातने ।
खुरेद्वारोछ्र्ये स्तंभे पट्टे पद्मशिलासु च ।।२८।।

शुकनासे च पुरुषे घंटायां कलशे तथा ।
ध्वजोच्छ्रये च कुर्वीत शान्तिकानि चतुर्दश ।।२९।।

प्रासादप्रमाणस्थान

एक हस्तादि प्रासादे यावद् हस्त शताधके ।
प्रमाणं कुंभके मूलनासिके भित्तिबाह्यत: ।।३०।।

भ्रमयुक्तसांधारप्रासादप्रमाण

दशहस्तादर्धोनस्याद् प्रासादो भ्रम संयुतः ।
स्यादेकादिरसग्नंत[3] निरंधारो भ्रमं विना ।।३१।।

पंचहस्तादितोमेरुः[4] श्यात्पंचाशत्करावधिः ।
कुंभादि स्थराणां तु निर्गमः समसूत्रतः ।।३२।।

पीठस्य निर्गमो बाह्ये कर्तव्यश्छाद्यकस्य च ।

समदलहस्तांगुलफालना

त्रिपंचसप्तनवभिः फालनाभिर्विभाजयेत् ।।३३।।

प्रासादमङ्ग संख्या च वारि मार्गान्तरे स्थिताः ।
फालना कर्ण तुल्यास्याद् भद्रंतु द्विगुणंमतम् ।।३४।।

3. षट् त्रिंशतम् in B.
4. पंचहस्तोभवेत्मेरु in B.

सामान्योऽयं विधिस्तत्र द्विविधाङ्ग विनिर्गमः ।
अङ्गव्यास समो यद्वा धामहस्तमितांङ्गुलैः ॥३५॥

प्रासादां शाश्वतुर्गगाद् यावत् सूर्योतरं शतम् ।
एकस्यापि तलस्योर्ध्वं शिखराणि बहून्यपि ॥३६॥

नामानि जातयस्तेषां मूर्ध्नाकारानुसारतः ।

जगती

वेदास्रमायतंवृत्तमष्टास्रंवर्तुलायतम् ॥३७॥

प्रासादं कारयेत्तस्यानुरुपा जगतीमपि[5] ।
प्रासादात्रिचतुः पंच गुणेति जगती त्रिधा ॥३८॥

ज्येष्ठादिषु क्रमाद्योज्या त्रिद्विक्ये भ्रमसंयुताः ।
षट् सप्तत्रिजिनेगृहे द्वारका पुरुषत्रये ॥३९॥

दैर्घ्यं सपादासार्द्धा वा द्विगुणामंडपक्रमात् ।

जगत्योच्चयप्रमाण

प्रासादेर्क करांतेऽर्द्धे त्र्यंशेद्वविंशदंतके ॥४०॥

उच्चा युगांशा द्वात्रिंशे भूतांशोच्चाशतार्द्धके ।
स्रष्टया कर्णेषु दिक्पालैः प्राकार द्वार मंडपैः ॥४१॥

सोपान तोरण

सोपानैस्तोरणैर्युक्ता चतुर्दिक्षु प्रणालकैः ।
मंडपाग्रे प्रतोल्याग्रे सोपानाग्रे च तोरणम् ॥४२॥

भित्तिगर्भेमितं सीमा—मानं वा गर्भमानत ।
तोरणं स्तंभान्तरे स्यात पदपट्टानु सारतः ॥४३॥

5. प्रासादं कार्यं तत्र जगतिस्थानुरुपतः in C.

देववाहनस्थान

चतुष्कि वाहनस्थाने प्रासादाग्रे प्रकारयेत् ।
एकद्वित्रि चतुष्पंच रससप्त गुणान्तरे ॥४४॥

जिनप्रासादरचना

जिनाग्रे समवसरणं मुखाग्रे गूढमंडपः ।
चतुर्विंशतिर्द्विपंचाशद् वा द्विसप्ततिः प्रक्रमै ॥४५॥

जिनालये चतुर्दिक्षु युक्तं स्यात् जिनमंदिरम् ।
मंडपाद् गर्भसूत्रेण वामदक्षिणोर्दिशोः ॥४६॥

अष्टापद मंडपाग्रे त्रिशाला वा बलाणकम् ।

नाभिवेध

प्रासादस्याग्रतः पृष्ठे वामतोदक्षिणोऽथवा ॥४७॥

प्रासादं कारयेदन्यं नाभिवेध विवर्जितम् ।
लिङ्गाग्रे प्रतिमारुपां न कूर्यात् देवताः सुधी ॥४८॥

ब्रह्मविष्णवीशजैनार्कान्स्वस्वमृत्यग्रतो न्यसेत् ।
शिवस्याग्रेऽन्य देवस्य दृष्टिभेदे महद्भयम्[6] ॥४९॥

प्राकार राजपथयोरंतरे न्यानपि न्यसेत् ।

प्रनालविचार

पूर्वापरास्य प्रासादे नालंसौम्ये प्रकारयेत् ॥५०॥

तत्पूर्वे याम्यसौम्यास्ये मंडपोवामदक्षयोः ।

6. Missing in B.

मयमते

इष्टदिग् मुखलिङ्गस्य नालवामे प्रकारयेत्[7] ॥५१॥

आयतनं

[8]रुद्रस्यायतने सृष्या गौरी मातृ रवि मठम् ।
विष्णुं शान्तिगृहं विघ्नराजमाग्नेय कोणत ॥५२॥

विष्णोर्गणाधिप मातृः सूर्य जलशयं विधिम् ।
नाट्येशं पार्वती तार्क्षं न्यसेत् भृशेविष्णु च मध्यतः ५३॥

वाराहो मातृ विघ्नशांतरे वा मातृसूर्ययोः ।
.... ॥५४॥

त्रिदेवस्थापनक्रम

रुद्रस्त्रिपुरुषे मध्येदक्षे ब्रह्मावामोहरिः ।
रुद्रवक्त्र त्रिभागोनो हरिरर्ध्वैविरिंच्यूमे ॥५५॥

---

7. In lieu of this Vss. 35, 36/2 of Prasadamandana have been given in C.

8. The topic is thus elaborated in Prasadamandana.

सूर्यायतनः—सूर्यो गणेशो विष्णुश्च चंडीशंभुः प्रदक्षिणे ।
भानोर्गृहे ग्रहास्तस्य गणाद्वादश मूर्तयः ॥
गणेशायतनः—गणेशस्य गृहेतद्व चंडी शंभुर्हरी रविः ।
मूर्तयो द्वादशान्येऽपि गणाः स्थाप्या हिताश्चये ॥
विष्णुआयतनः—विष्णोः प्रदक्षिणेनैव गणेशोऽर्कोऽम्बिका शिवः ।
गोप्यस्तरयावतारस्य मूर्तयो द्वारिका तथा ॥
चंडयायतनः—चंड्याः शंभुर्गणेशोऽर्का विष्णुः स्थाप्यः प्रदक्षिणे ।
मातरो मूर्तयो देव्या योगिन्यो भैरवादयः ॥
शिवपंचायतन—शंभोः सूर्योगणेशश्च चंडी विष्णुः प्रदक्षिणे ।
स्थाप्याः सर्वे शिवस्थाने दृष्टिवेधविवर्जिताः ॥

भिट्टः

भिट्टशिलोर्द्ध प्रासादे एकहस्ते युगांगुलम् ।
अर्द्धार्द्धांगुलं वृध्यातु यावत् पंचाशतकरान् ॥५६॥

एकंद्वे त्रीणि वा हीनहीनानि पादनिर्गमः ।

पीठः

प्रासादस्य समुत्सेध्वे एकविंशति गाजिते ॥५७॥

पंचादि नवभागान्ते पंचधापीठमुछ्रये ।
त्रिपंचाशत्समुत्सेधे द्वाविंशत्यंशनिर्गमे ॥५८॥

कुर्यान्नवाद्रि सप्तार्क दशवस्वंशकानक्रमात् ।
जाडचकुंभ कणी ग्रासपट्टी भाश्वनरस्तरान् ॥५९॥

पंचसार्द्धात्रि सार्द्धाब्धि चतुस्त्रिध्वंशनिर्गमान् ।
सर्वेषां पीठमाधारः पीठहीनं निराश्रयम ॥६०॥

पीठहीनं विनश्येत् प्रासाद भवनादिकम् ।

प्रासादोदयःमानः

हस्तादि पंचहस्तांते प्रासादे च समोच्छ्रयः ॥६१॥

सूर्यांगुला प्रतिकर वृद्धि स्त्रिंशत्करावधिः ।
नवाङ्गुला शतार्द्धान्तमेवंच्छाद्यंतमुच्छ्रयः ॥६२॥

मंडोवरविभाग १४४

उत्सेधो वेदवेदेन्दु भक्ते पीठोर्ध्वतो न्यसेत् ।
पंच नखाष्ट सार्द्धद्वि वास्वंकैः पंचत्रिंशतैः ॥६३॥

तिथ्यष्ट दश वस्वंशै सार्द्धद्वि विश्व भागकै ।
क्रमेण खुरकं कुंभकलशं चान्तरपत्रकम् ॥६४॥

कपोताली मंची जंघोद्गमाश्च भरणींततः ।
शिरः पट्टीं कपोतालिमंतरच्छाद्यमाचरेत् ॥६५॥

दशांशे निर्गतो वारि-मार्गोदल कलांशतः ।

भित्तिमान

इष्टिकाभित्ति कृतेगेहे भित्तिपादेन कारयेत् ॥६६॥

पंचमांशेऽथवासार्द्धे षडंशेवापिशैलजे ।
दारुजे सप्तमांशस्यात् सांधारेष्टमांशतः ॥६७॥

दशांशे धातुरत्नजस्यात् कुंभैमूलनासिके ।

गर्भगृहस्वरुप

गर्भगेहं युगाश्रं वा भद्राढ्यं वायतंशुभम् ॥६८॥

स्तरसमसूत्र

कुंभकेन समाकुंभी स्तंभउद्गम साम्यतः ।
भरण्यां भरणं शीर्षं कपोताल्यां समंभवेत् ॥६९॥

कूटछाद्यस्य पेटान्तं कूर्यात् पटस्यपेटकम् ।

गर्भगृहोदय

[9]गृहदेवालयेगर्भे न्यासात् सार्द्ध सपादकः ॥७०॥

गर्भोदयः स्यात् पट्टांते तस्य तु वसुभाजिते ।
एकसार्द्धं शरार्द्धैक सार्द्धैः क्रमेण कुंभिका ॥७१॥

9. Vss. 70, 71 are absent in B. but found in C.

स्तंभोध भरणंशीर्ष पट्टोदरोर्द्ध करोटकम् ।

द्वारमान

एकहस्ते सुरागारे दैर्द्धद्वारं कलांगुलम् ॥७२॥

षोडशाङ्गुला या वृद्धया: प्रतिहस्तं युगान्तकै ।
त्र्यंगुलाचाऽष्ट हस्तांते द्विवृद्धया स्यात् शतार्द्धके ॥७३॥

द्वारोच्छ्रयांर्द्ध विस्तिर्णं षोडशांशाधिकं हिता ।
शाखास्त्वंग समा एक त्रिपंचाद्रि नवांशके ॥७४॥

हीनानेष्टाऽधिकाश्रेष्टास्तास्युर्देवालयं गवत् ।
देवानां सप्तशाखंवा नवांतं हरिरुद्रयो ॥७५॥

पंचशाखं सार्वभौमे त्रिशाखं मंडलेश्वरे[10] ।
द्वारेस्वस्व प्रतीहारान् परिकरयुतस्थितान्[11] ॥७६॥

द्वारंद्वैर्ध्ये चतुर्थांशे द्वारपालं प्रकारयेत् ।

दुम्बरार्धचन्द्र

मूलकर्णस्य सूत्रेण कुंभिनादुम्बर[12]समम् ॥७७॥

गर्भकर्णैर तदर्ध्वेस्यात् मंदारस्तुत्रिभागत: ।
द्वार न्यास समोदैर्ध्यो अर्द्धचन्द्रस्त्वर्धनिर्गत:[13] ॥७८॥

खुरकेन समोत्सेध स्वत्रार्धांशस्तु चंद्रिका ।
मंडपेषु समस्तेषु पीठान्ते रङ्गभूमिका ॥७९॥

10. Missing in B.
11. न्यसेत् परिकर स्थितान् in A.
12. कोणेना in A.
13. Absent in B and C.

कपिलीप्रमाण

प्रासाद दशभक्ते द्वीत्रिवेदांशाश्च वार्धतः ।
त्र्यंशेऽथ पादैका कौलीस्यादूर्ध्वे शुकनाशकः ॥८०॥

शिखरः

छाद्यस्योर्ध्वे प्रहारःस्यात् ततःशृंङ्गाणि कारयेत् ।
शृङ्गे शृङ्गे त्वधच्छाद्य मूर्ध्वशृङ्गाधोऽनुद्गमम् ॥८१॥

स्वस्याङ्गास्य प्रमाणांतु सपादं शृङ्गमुच्छ्रये ।
स्कंध स्यार्धोदये घंटा (शृङ्गे महति वालधौ ?) ॥८२॥

मूलकर्णे रथादौ वाष्येकद्वित्रिक्रमात् न्यसेत् ।
निरंधारे मूलभित्तौ सांधारे भ्रमभित्तिषु ॥८३॥

रेखागर्भ समाशस्ता विस्तिर्णवान संकटा ।
उरुशृङ्गाणि भद्रेस्युरेकादितो नवांत्तकम् ॥८४॥

लुब्धा सप्तसप्तास्तां तूर्ध्वे रसांशस्त्रयोदशः ।
रेखामूले दशभक्ते कूर्यादग्रं षडंशकम् ॥८५॥

रेखामूलेत्सपादकर्ण मानेवा शिखरोदये ।
रेखोदयेऽष्ट भक्ते तु स्कंधोर्ध्वे सप्तभागिकम् ॥८६॥

उर्ध्वांशे तिर्यगलस्य (लांछनाद्रेषिका मतः ?) ।
यद्वारेखा मूलस्य विस्तरात् पृथक्सूत्रे चतुर्गुणे ॥८७॥

पद्मकोशं समालेख्य सपादं शिखरोदयः ।

आमलसाराप्रमाण

स्कधकोशान्तरे सप्त भक्तेग्रीवांशकोदयः ॥८८॥

सार्द्ध आमलसार: स्यात् पद्मछत्रं तू सार्द्धतः ।
त्रिभागमुश्च कलशं कूर्याद्विभाग विस्तरः ॥८९॥

मूलशिखरउपाङ्गवालंजर

रेखामूले तु दिग्भक्ते कोणः कार्योद्विभागकः ।
त्र्यंशभद्रं रथः सार्द्धं स्कंधोर्ध्वे च नवांशके ॥९०॥

[14]कोणौ युगांशौ भद्रं च द्व्यंशत्र्यंशोरथो भवेत् ।

शुकनासमान

छाद्यांतः स्कंधान्तमेकद्वि भक्तैकदिकशिवांशकै ॥९१॥

सूर्यं विश्वांशकैरुर्ध्वैं च छाद्योर्ध्वे शुकनासक ।
शृङ्गोरुशृङ्ग प्रत्याङ्गं गणयेत्दंडकानिहि ॥९२॥

[15]तवङ्गा तिलकं कर्णे कूर्यात् प्रासादभूषणम् ।

आमलसार विस्तारमान

द्वयो प्रतिरथोर्मध्ये वृत्तमामलसारकम् ॥९३॥

व्यासार्द्धेन तदुत्सेधं धृतपात्रं तदंतरे ।
प्रासाद पुरुषं स्तत्र हेमपर्यंकशायिनः ॥९४॥

ध्वजाधरस्थान

प्रासाद पृष्ठे नैरुत्ये रथे कूर्याद् ध्वजाधरम् ।

कलशः

प्रासादस्याष्टमांशेन कलशांऽके विस्तरः ॥९५॥

14. C. stops here.
15. Absent in B.

[16]पूर्वोक्त मानतो ज्येष्ठः षोडशांशाधिको भवेत् ।
तादंशोनः कनीयोः नवांशैरुदयं भवेत् ॥९६॥

ग्रीवापीठं भवेद्भागं त्रिभागं नाण्डकं तथा ।
कर्णिके भाग तुल्ये च त्रिभागं बीजपूरकम् ॥९७॥

एकांशोऽग्रे च मूलेद्वौ वह्नि वेदांश कर्णिको ।
ग्रीवाद्धौ पीठमर्धं द्वौषडभागं विस्तराण्डके ॥९८॥

ध्वजादंड

तदुच्छ्रायो भवेद्दंडः प्रासाद व्यास मानतः ।
दीर्घ् शरांशोन तो वास्या हस्ते पृथु पादोनाङ्गुला ॥९९॥

प्रति हस्ते शतार्द्धांते त्वर्ध्वाङ्गुल वृद्धितः ।
वृत्तसार समग्रंथी पर्वभिर्विषमैर्युतः ॥१००॥

शिंशव वंश खदिर मधुकोरुण चंदनै ।
[17]अगर कगरेण वा दंडः कार्यः सुशोभनः ॥१०१॥

मर्कटी दंडः षष्ठांशे दैर्घ्याद्धन तु विस्तृता ।
[18]समुच्छ्रिता त्रिभागैश्च किंकिणीयुत चंद्रिका ॥१०२॥

वंशोर्ध्वे कलशश्चैव अधः घंटा प्रलंबयेत् ।
ध्वजादंड शृतादैर्ध्ये साष्टामांशेन विस्तृता ॥१०३॥

निष्चिन्हं शिखरं दृष्ट्वा ध्वजाहीनं न कारयेत् ।
असुरा वासमिच्छन्ति ध्वजहीन सुरालये ॥१०४॥

16. Vss. 93 to 95 absent in B.
17. Absent in B.
18. Absent in B.

प्रासादाः

चतुरस्र चतुर्द्वारो द्वाराग्रे च चतुष्किका ।
वैराज्योऽथ चतुर्भक्ते कोणांशोद्वोतुभद्रकम् ॥१०५॥

भागार्ध्द्वं निगमं भद्रं मुख भद्रं प्रकारयेत् ।
शृङ्गमेकं न्यसेत्कर्णे भद्रेद्वोद्वे च नंदनः ॥१०६॥

सांधारकेशरीप्रासादः

सांधारे दिग् नवांष्टांशे भ्रमौभित्तिश्च भागतः ।
क्षेत्रेऽष्ट भक्ते द्वौ कर्णौ भद्रं वेदांश विस्तरम्[19] ॥१०७॥

भागार्द्ध निर्गम पंचांऽकोयं केसरीमतः ।
चतुरंऽक वृध्यान्ये यावदेकोत्तरं शतम् ॥१०८॥

दशभक्ते द्वयं कर्णः सार्द्ध भद्रार्ध केरथे ।
श्रीवत्सं शिखरं सर्वतोभद्रो नव शृङ्गवान ॥१०९॥

भद्रे श्रीवत्स सहितो रथिकाद्यश्च नंदनः ।
शृङ्ग तदूर्ध्वे भद्रं तत् सदशं नंदशालकः ॥११०॥

कर्णे शृङ्गाद्वयंत्वेकं रथे नंदिशईरितः ।
सूर्यांशे प्ररथः कर्णौ भद्रार्द्ध द्विद्विभागतः ॥१११॥

कर्णे भद्रे च शृङ्गेद्वे रथेत्वेकं स मंदर[20] ।
मनुभक्ते रथः कर्णौ भद्रार्ध द्वि द्वि भागतः[21] ॥११२॥

---

19. क्षेत्रेष्ट भक्तेद्वौकर्ण तत्र भद्रांश विस्तरम् in B.
20 Absent in A and B, but known in mss. from Rajasthan.
21. Ibid.

भद्रपार्श्व द्वये कूर्याद् भाग भागेन नंदिके ।
कर्णे शृङ्गाद्वयं शृङ्गो परिष्टात् तिलकं रथे ॥११३॥

नंद्यामेकैक तिलकं भद्रे शृङ्ग त्रयं न्यसेत् ।
श्री वृक्षस्तत्र कर्णे त्रिशृङ्गैः स्यादमृतोद्भवः ॥११४॥

द्वे द्वे प्रतिरथे द्वे द्वे भद्रे च हिमवान् मतः ।
भद्रे तृतीयं नंद्यांस्तु तिलकं हेमकूटकः ॥११५॥

रेखोर्ध्वस्तिलकं नंद्या शृङ्ग कैलास संज्ञकः ।
रेखायास्तिलकं स्थाने शृङ्गं पृथ्वीजयस्तदा ॥११६॥

षोडशांशे भागमाना कोणी कर्ण रथान्तरे ।
शेष मन्वंशवद्भद्रे निर्गमोऽशः परे समा ॥११७॥

कर्णशृङ्गद्वयं नंद्या तिलकं च मत्याङ्गाकम् ।
द्वयं रथे त्रयं भद्रे नंदी संकेन्द्र तीलकः ॥११८॥

नंद्या शृङ्गे महानिलो रेखोर्ध्वे तिलके सति ।
रेखाधस्तिलकै स्थाने शृङ्गा यदि सभूधरः ॥११९॥

अष्टादशांशे भद्रस्य पार्श्वयो नंदिका द्वयम् ।
शेष कलांशंवत्कर्णे द्वे शृङ्गे तिलकस्तथा ॥१२०॥

कर्णे नंद्या शृङ्ग तिलकं मत्याङ्गा युग्म भागिकम्[22]

22. Vss. 121 to 123 are variously given in B. as:
नंद्या द्वेद्वेतु तिलके प्रत्याङ्गे युग्म भागिकम् ।
शृगं त्रयंरथेभद्रे युग्मनंद्यातु तैनके ॥
भद्र नंद्यान्यसेशृङ्ग तिलकं रत्नकूटकः ।
रेखा तृतीय शृङ्गेतु सतिवैडूर्य उच्यते ॥
त्रयं नंद्यातु तिलके द्वे शृङ्गे पद्मरागकः ।
रेखाधः स्तान पुनः शृङ्ग कारयेद्वज्रकस्तदा ॥

नंद्या द्वे द्वे तिलकं भद्रे युग्मं रथे त्रयम् ॥१२१॥

रत्नकूटस्तदा नाम शिवलिङ्गेषु कामदः ।
रेखायां तृतीय शृङ्ग सति वैडूर्य उच्यते ॥१२२॥

रेखोर्ध्वे तिलकं रथ नंद्ये शृङ्गो द्वे पद्मरागः ।
रेखोर्ध्वस्तात् पुनः शृङ्ग कारयेद्वज्रकस्तदा ॥१२३॥

नख भक्ते द्वयकर्णे सार्द्धे कोणीद्वयं रथः[23] ।
सार्द्ध नंदी भद्र नंदी भागोभद्रं युगांशकः ॥१२४॥

कर्णे द्वि शृङ्ग तिलकं रेखामन्वंश विस्तरा ।
नंद्या शृङ्गं च तिलकं[24]प्रत्यङ्गं च तदूर्ध्वतः ॥१२५॥

त्रयं भद्रं चतुः शृङ्गं नंद्या शृङ्गं च तिलक ।
भद्र नंद्यं तथा शृङ्ग प्रासादो मकुटोज्ज्वलः ॥१२६॥

तत्र रेखोर्ध्वे च शृङ्गे प्रासादो गजराजकः[25] ।
तथैव तिलकं कूर्यात् भद्र कर्णेतु शृङ्गकम् ॥१२७॥

राजहंसः समाख्यातः कर्तव्यो ब्रह्ममंदिरे ।
तथैव शृङ्गं कूर्यात् भद्रे कर्णे तु तिलकम् ॥१२८॥

गरुडः स समाख्यातः कर्तव्यश्च श्रियः पते ।
द्वाविंशत्यंशके नंदी भागेन भद्र पार्श्वयो ॥१२९॥

त्रयप्रतिरथः कर्णौ भद्रार्धं च द्वि भागिकम् ।
कर्णे द्वि शृङ्ग तिलकं भद्रे शृङ्गं चतुष्टयम् ॥१३०॥

---

23. Vss. 124'—133' absent in B.
24. प्रत्यङ्गस्या दधोरथे in A.
25. Vss. 127 and 128 missing in A but known in mss. from Rajasthan.

शृङ्गाद्वयं प्रतिरथे प्रत्यङ्गानि त्रिभागतः ।
रथे शृङ्ग त्रयं कुर्याद् द्वे द्वे उपरथे तथा ॥१३१॥

गद्र नंद्या ततः शृङ्गं वृषभोऽयं हरप्रियः
कर्णे शृङ्गं तृतीयंस्या नोरु सिद्धि प्रदायकः ॥१३२॥

सांधारा वा निरंधाराः प्रासादा पंचविंशति ।
पंचहस्तो भवेन्मेरु रेकोत्तर शतांऽकः ॥१३३॥

नख वृध्या शताध्वेंऽका न्येकोत्तर सहस्रकम् ।
पूर्वं कुर्यान्नृपोमेरुर्वर्णहीनं ततःपरम् ॥१३४॥

मेरुः कुर्याद् ब्रह्मविष्णु शिवार्काय नान्ये क्वचित् ।

मंडपाः

प्रासादाग्रे मंडपस्यादेक त्रिद्वार संयुतः[26] ॥१३५॥

जिने त्रिपुरुषे द्वारि कासु त्रिमंडपाः क्रमात् ।
एकद्वे हस्ते प्रासादे कुर्यादग्रे चतुष्किका ॥१३६॥

त्रिकरे द्विगुणं वेद हस्तांशोन द्विसंगुणम् ।
पंचादि दश हस्तांते प्रासादे सार्द्ध मंडपः ॥१३७॥

दश हस्ता शतार्द्धंते सपादं वा समंशुभम् ।
प्रायेण मंडपाः सार्द्धा द्विगुणं प्रत्यलिङ्गाकै ॥१३८॥

जयमते

प्रासादस्य प्रमाणेन मंडपं कारयेत्तसमम् ।
सपादं सार्द्धमंशोन द्विगुणं द्विगुणं हिवा ॥१३९॥

26. Vss. 135 to 138 missing in B.

कक्षासनयुक्तस्तंभविभाग

विश्वांश भक्तं तूत्सेधै सपाद राजसेनकः[27] ।
सपादं त्र्यंश कावेदी भागंन्नासनपट्टकम् ॥१४०॥

स्तंभ सार्ध्वे शरांशोऽथ पादोन भरणं मतम् ।
शीर्षं सपादे तस्योर्ध्वे कार्यः पट्टो द्विभागकः ॥१४१॥

तदूर्ध्वे अंशक छाद्यं तत्पेटं पट्ट पेटके ।
कार्यादृहस्तांगुलोन मासनोर्ध्वे मत्तवारणम् ॥१४२॥

गूढमंडपाः

स्याद्गुढमंडपो वेदास्त्र सुभद्रोमतिभद्रकम् ।
मुखभद्र युतो द्वाभ्यां त्रि र्वा मरथयुतः ॥१४३॥

कर्णोदकान्तरे वापि भद्रोदकयुतस्त्रिभिः ।
कर्णतो द्विगुणं भद्र पादोनस्तु रथो भवेत् ॥१४४॥

भद्रार्धं मुखभद्रंही भद्रे चंद्रावलोकितः ।

चतुष्कीप्राग्रिवमंडपाः

एक त्रिवेद षट् सप्त नव चतुष्कयं स्त्रिकत्रये[28] ॥१४५॥

अग्रे भद्रं युते पार्श्वे द्वयेपार्श्वाग्रतस्तथा ।
अग्रतस्त्रिचतुष्किभिः सार्लिद पार्श्वयोर्द्वयोः ॥१४६॥

मुक्तकोणे चतुष्कयोर्द्वे इतिद्वादशमंडपाः ।
मंडपे स्तंभ पदाद्या मध्यपदानुसारतः ॥१४७॥

---

27. Vss 140 to 144 absent in B.
28. Vss 145 to 147 absent in B.

शुकनास समाघंटः न्यूनाश्रेष्टानतोच्छ्रिता ।

नृत्यमंडपाः

नृत्यार्थं द्वादशस्तंभो द्विद्विस्तंभ विवर्धनम् ॥१४८॥

यावत् स्तंभाश्चतुषष्टि सप्तविंशति मंडपाः ।
नृत्यमंडप वर्चोद्वौ भूमिमूर्ध्वे वितानका ॥१४९॥

अथबलाणकः

ब्रह्मेश विष्णु चंद्रार्क जिनाग्रे स्याद् बलाणकः ।
प्रासादाग्रे गृहे दुर्गे राजद्वारे जलाशये ॥१५०॥

वामनश्च विमानश्च हर्म्यशालश्च पुष्करः[29] ।
तथा चोतुङ्गा नामा च पचैते च बलाणकाः ॥१५१॥

बलाणं जगती पादः व्यासं पादो नितंहिवा[30] ।
एक द्वित्रि चतुः पंच रससप्त गुणान्तरे ॥१५२॥

मूलप्रासाद वद् द्वारं उत्तरङ्गाणा च पेटके[31] ।
वामनं जगतो ग्रस्तं विमानं तु तदाश्रितम्[32] ॥१५३॥

हर्म्यगृहे वाऽपि गोपुरे नगराननें ।
पुष्करं वारिमध्यस्थमग्र तथैव भूषितम् ॥१५४॥

विमानस्तुङ्गनामा च राजवेश्माग्रतः शुभः ।
सप्तभूमं नवभूमं अतउर्ध्वं न कारयेत् ॥१५५॥

लक्षणं तस्य वक्ष्यामि स्थानमानं च भूमिकाम् ।

29. Absent in B.
30. Absent in A.
31. तत्रप्रासाद च द्वारं उत्तरंगो कर्णं वधि in B.
32. Vss. 153 to 155 absent in B.

संवरणा

पंचाद्यैकोत्तरं शतं घंटा संवरणा भवेत् ॥१५६॥

पंचविंशतिरित्युक्ता प्रथमा वसुभागिका[33] ।

लिङ्गमान

मानन्युनाधिकं वापि[34] स्वयंभूबाण रत्नजे ॥१५७॥

घटितेषु विधातव्यमर्चा लिङ्गेषु शास्त्रतः[35] ।
जगत्यांस्त्रीचतुः पंचगुणां देवपुर त्रिधाः ॥१५८॥

भिन्नदोषादि

ब्रह्माविष्णु शिवार्काणां गृहभिन्नं न दोषदम् ।
शेषाणां दोषदं भिन्नं व्यक्ता व्यक्तगृहंशुभम् ॥१५९॥

दीर्घमानाधिकेहस्वे वक्रेचापि सुरालये ।
छंदभेदे जातिभेदे हीनमाने महद्भयम् ॥१६०॥

प्रतिमा मानप्रमाण

द्वारोच्छ्रयोऽष्ट नवधा भागमेके परित्यजेत् ।
शेषत्र्यंशे द्विभागार्चा अंशोनाद्वारतोथवाः ॥१६१॥

द्वारदैर्घ्ये तु द्वात्रिंशे तिथिशक्र कलांशकै ।
उर्ध्वार्चा आसनस्थातु मनुविश्वार्क भागतः ॥१६२॥

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे दशभाग विभाजिते ।
भित्ति द्विभाग कर्तव्या षड्भाग गर्भ मंदिरम् ॥१६३॥

33. Vs. 157' absent in B.
34. मान न्युनाधिका कार्या in A.
35. Vs. 158' absent in B.

वृतायांशेन गर्भस्यात् प्रासादे प्रतिमोत्तमा ।
मध्यमा स्वदशांशोना पंचाशोना कनियसी ॥१६४॥

प्रतिमा दृष्टि स्थान

आयभागे भजेद् द्वारमष्टमूर्ध्वतः त्यजेत् ।
सप्तमा सप्तमे दृष्टिर्वृषेसिंहे ध्वजे शुभा ॥१६५॥

षष्ठ भागस्य पंचाशे लक्ष्मीनारायणस्यदृक् ।
शयनार्चाश लिङ्गानि द्वारार्धेन व्यतिक्रमात् ॥१६६॥

देवता पद स्थापन विभाग

पट्टाधो यक्षभूताद्याः पट्टाग्रे सर्वदेवताः ।
तदग्रे वैष्णवं ब्रह्मा मध्ये लिङ्गं शिवस्य च ॥१६७॥

प्रतिष्ठामुहूर्त[36]

पूर्वोक्त सप्तपुण्याह प्रतिष्ठा सर्वसिद्धिदा ।
रवौ सौम्यायने कूर्याद् देवानां स्थापनादिकम् ॥१६८॥

प्रतिष्ठा चोत्तरामूलं आर्द्रायां च पुनर्वसौ ।
पुष्ये हस्ते मृगे स्वातौ रोहिण्यां स्रुतिमैत्रमे ॥१६९॥

तिथि रिक्ता कुजंधिष्ण्यं क्रुरविद्धं विधुं तथा ।
दग्धां तिथिं च गण्डान्तं चरभोगग्रहं त्यजेत् ॥१७०॥

सुदिने सुमुहूर्ते च लग्ने सौम्येयुतेक्षिते ।
अभिषेकः प्रतिष्ठा च प्रवेशादिकमिष्यते ॥१७१॥

36. Vss. 168 to 181 are absent in all the mss. known from Saurashtra: these have however, been noticed in those from Rajasthan.

प्रतिष्ठामंडपः

प्रासादाग्रे तथैशान्ये उत्तरे मंडपंशुभम् ।
त्रिपंच सप्तनंदैका दशविश्व करान्तरे ॥१७२॥

मंडपः स्यात् करैरष्टा दशसूर्य कलाभित्तिः ।
षोडश हस्ततः कुंडे वशादधिक इष्यते ॥१७३॥

स्तंभः षोडश संयुक्तं तोरणादि विराजितम् ।
मंडपे वेदिका मध्ये पंचाष्ट नव कुंडकम् ॥१७४॥

हस्तमात्रं भवेत् कुंडं मेखलायोनिसंयुतम् ।
आगमैर्वेद मंत्रैश्च होमकूर्याद् विधानतः ॥१७५॥

अयुते हस्तमात्रं हि लक्षार्धेतु द्विहस्तकम् ।
त्रिहस्तं लक्षहोमे स्यात् दक्षलक्षे चतुष्करम् ॥१७६॥

त्रिशलक्षे पंचहस्तं कोट्यर्धे षट्करं मतम् ।
अशीति लक्षेऽद्रिकरं कोटिहोमेऽष्ट हस्तकम् ॥१७७॥

ग्रहपूजा विधानेन कुंडमेकंकरं भवेत् ।
मेखला त्रितयं वेद रामयुग्माङ्गुलैः क्रमात् ॥१७८॥

एकद्वि त्रिकरं कूर्याद् वेदिको परिमंडलम् ।
ब्रह्मा विष्णु वीणां तु सर्वतोभद्रमिष्यते ॥१७९॥

भद्रं तु सर्वदेवानां नवनाभिस्तथा त्रयम् ।
लिङ्गोद्भवं शिवस्यापि लत्तालिङ्गोद्भवं तथा ॥१८०॥

भद्रं गौरी तिलके च देवीनां पूजनं हितम् ।
अर्धचंद्रं तडागेषु चापाकारं तथैव च ॥१८१॥

सूत्रधार पूजनः [37]

इत्यनंतरतः कूर्याद् सूत्रधारस्य पूजनम् ।
वस्त्रालंकार भूवित्त गोमहिष्याश्व वाहनैः ॥१८२॥

अन्येषां शिल्पिनां पूजा कर्तव्या कर्मकारिणाम् ।
स्वाधिकारानुसारेण वस्त्रतांम्बूल भोजनैः ॥१८३॥

पूण्यं प्रासादजं स्वामी प्रार्थयेत् सूत्रधारतः ।
सूत्रधारो वदेव् स्वामिन् अक्षयं भवतात् तवः ॥१८४॥

लक्षलक्षणतोऽभ्यासाद् गुरुमार्गानुसारतः ।
प्रासाद भवनादिनां सर्वज्ञानमवाप्वते ॥१८५॥

एकेन शास्त्रेण गुणाधिकेन विनाद्वितीयेन पदार्थसिद्धिः ।
तस्मात् प्राकारान्तरतो विलोक्य मणिर्गुणाढ्योऽपि
सहायकांक्षी ॥१८६॥



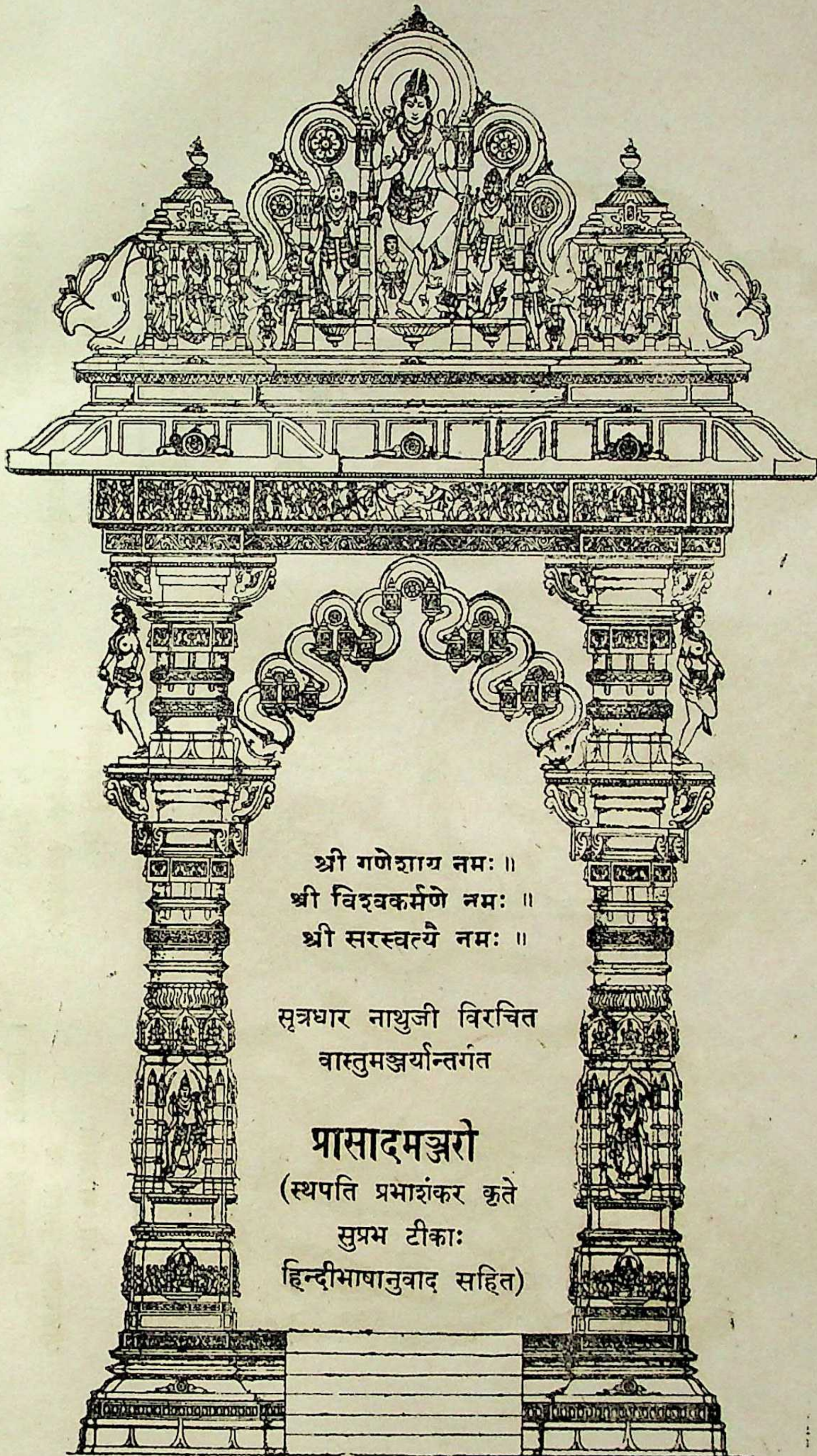
સૂત્રધાર નાથજીના પિતા ખેતા–ક્ષેત્રા

इय श्री क्षेत्रपुत्रेण सार प्रासादा सु संस्कृता ।
सूत्रधारेण नाथेन निर्मिता वास्तुमञ्जरी ॥१८७॥

इति श्री मेदपाट राजमल्ल पृथिवीपति सूत्रधार क्षेत्रात्मजो विविधशास्त्र कला सुधार गोत्र भारद्वाज सूत्रधार नाथजी विरचितायां वास्तुमञ्जर्यांतर्गत प्रासादाधिकार स्तबक द्वितीय॥२॥



37. These Vss. are like-wise absent in mss. from Saurashtra.



श्री गणेशाय नमः ॥
श्री विश्वकर्मणे नमः ॥
श्री सरस्वत्यै नमः ॥

सूत्रधार नाथुजी विरचित
वास्तुमञ्जर्यान्तर्गत

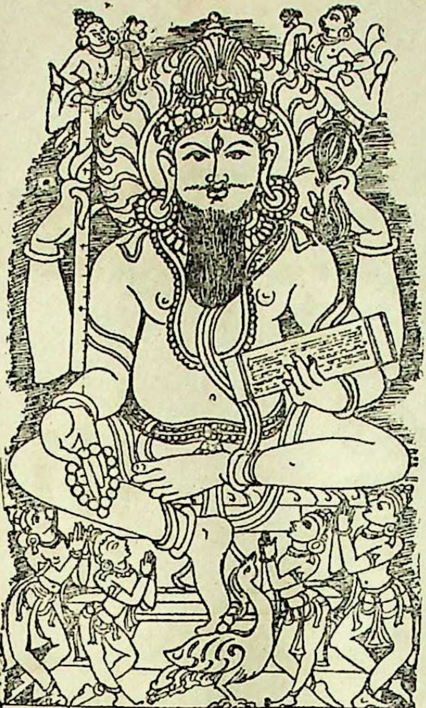
प्रासादमञ्जरी

(स्थपति प्रभाशंकर कृते
सुप्रभ टीकाः
हिन्दीभाषानुवाद सहित)



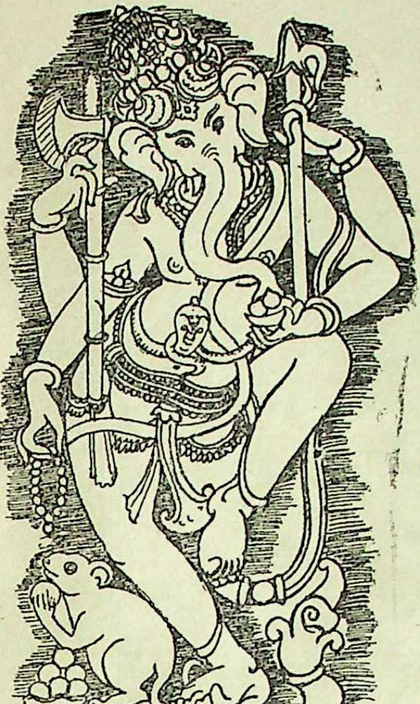
श्री सरस्वती

अक्षमालां पुस्तकं च
वीणावाद्यं च पद्मकम् ।
मयूर हंसारुढां च
वंदेऽहं तां सरस्वतीम् ॥



श्री विश्वकर्मा

अक्षमालां कंबासूत्रं
पुस्तकं च चतुर्भुजम् ।
हंसस्थं च त्रिनेत्रं तं
वंदेऽहं विश्वकर्मणम् ॥



श्री गणपति

गणेशाय नमः तस्मै
सर्वविघ्नविदारिणे ।
मूषारुढ चाद्यदेवं
वंदेऽहं तं गजाननम् ॥

श्री गणेशाय नमः ॥ श्री विश्वकर्मणे नमः ॥ श्री सरस्वत्यै नमः ॥

सूत्रधार नाथुजी विरचित वास्तुमञ्जर्यांतर्गत

॥ प्रासादमञ्जरी ॥

हिमालय के उत्तरभागमें देवदारु वृक्षोंके वनमें देवताओं, मनुष्यों असुरों आदि ने शिवजीका शिवजी प्रासादके आकार से पूजार्चन किया। जिस पर से प्रासादकी (भारतके विभाजनानुसार) चौदह जातियां उत्पन्न हुईं। १ नागरादि. २ द्रविडादि, ३ लतिनादि, ४ विमानादि, ५ मिश्रकादि, ६ विराटादि, ७ साधारादि, ८ भूमिजादि, ९ विमान नागरादि, १० विमान पुष्पकादि, ११ वल्लभादि, १२ फासनाकादि १३ सिंहावलोकनादि, एवं १४ रथारुहादि इसप्रकार चौदह जातियां भारतके देश भेद से समजना[१] (जिनमें पहली आठ श्रेष्ठ कही हैं)

देवमंदिरः–मिट्टी, काष्ट (लकडी), ईंट, पत्थर, धातु, रत्न आदि वास्तुद्रव्य के निर्माण होते हैं। परन्तु वे अपनी अपनी शक्ति के अनुसार बनवाने से मनुष्य चतुर्वर्ग–अर्थात् धर्म अर्थ काम और मोक्ष के फलकी प्राप्ति करता है। मिट्टि आदि के देवमंदिरों में लक्ष्मी क्रीडा करती है। ५.

कार्यारम्भ :—कार्यका प्रारम्भ करनेके लिये शुभलग्न शुभ नक्षत्र एवं पांचग्रहोंका बल चाहिये। कथित शुभ मास एवं संक्रान्ति में वत्सादि दोष तथा निषिद्ध काल त्यज कर प्रासदका समारम्भ करना चाहिये। ६.

भूमिपरीक्षा :—जो भूमि चारों ओर ढालू हो, अथवा पूर्व या उत्तर या इशान की ओर ढालू हो वह प्रासाद निर्माणार्थ उत्तम भूमि जाननी चाहिये। भूमिकी परीक्षा करके उसे जल एवं पञ्चगव्य से सिंचित कर बुद्धिमान को चाहिये कि उसका पूजन प्रारम्भ करें। ७.

मणि, सुवर्ण, चांदी, परवाला या फलोंसे चौसठ या सौ पदका वास्तुचूर्ण (आटा) या चावलसे रचकर पूर्वशास्त्रकारों द्वारा कथित विधिसे बलि एवं पुष्पादिसे पूजन करना चाहिये। ८–९.

इन्द्र. अग्नि, यम, निऋति, वरुण, वायु, कुबेर एवं ईश, इस प्रकार इन

---

१. अपराजित सूत्र ११२ में यह चौदह जातिके प्रासाद भारतके किस किस प्रदेशमें किस जातिका प्रासाद बनवाना यह बतलाया है। बल्कि "जय" ग्रंथमें चौदह जाति के उत्पादक देव, असुर, नाग, किन्नर, इंद्र, देवियाँ आदिके नाम सहित उल्लेख हैं।

पूर्वादि दिशाओंके आठ दिक्पालों के अनुक्रमसे तथा क्षेत्रपाल गणेश एवं चंडी की विधिवत् पूजा करके कार्यका प्रारम्भ करना चाहिये। १०–११.

निषिद्ध मुहूर्त :—धन अथवा मीन राशिमें जब सूर्यका प्रवेश हो; गुरु एवं शुक्र के चंद्रका अस्त काल; वैधृति, व्यतिपात योग एवं दग्धा तिथिमे कार्यका प्रारम्भ अथवा वास्तु कदापि नहीं करना चाहिये। कन्यादि तीन राशि के सूर्यमें पूर्वादि द्वार वाले वास्तु नहीं करना चाहिये (अर्थात् प्रारम्भ नहीं करना) इसका कारण यह है कि सृष्टिक्रमानुसार वत्सका मुख उपरोक्त दिशाओं में रहता है। जिससे उस निषिद्ध कालमें यदि कार्यका प्रारम्भ करें, तो स्वामीका नाश होता है। १२–१३.

समचोरस क्षेत्रका देवगणादि श्रेष्ठ गणित

आमना सामना अंक	नक्षत्र	गण	चंद्र	आय	आमना सामना अंक	नक्षत्र	गण	चंद्र	आय
१.१×३.३	मृगशिर्ष	देवगण	पूर्वे	ध्वजाय	५.५×५.५	अनुराधा	देवगण	पश्चिमे	ध्वजाय
१.३×१.३	रेवती	,,	उत्तरे	,,	५.१३×५.१३	मृगशिर्ष	,,	पूर्वे	,,
१.५×१.५	मृगशिर्ष	,,	पूर्वे	,,	५.१५×५.१५	रेवती	,,	उत्तरे	,,
१.१३×१.१३	अनुराधा	,,	पश्चिमे	,,	५.१७×५.१७	मृगशिर्ष	,,	पूर्वे	,,
१.२१×१.२१	रेवती	,,	उत्तरे	,,	६.९×६.९	रेवती	,,	उत्तरे	,,
२.५×२.५	पुष्य	,,	पूर्वे	,,	६.१७×६.१७	पुष्य	,,	पूर्वे	,,
२.७×२.७	पुष्य	,,	,,	ध्वजाय	६.१९×६.१९	पुष्य	देवगण	पूर्वे	,,
२.१५×२.१५	रेवती	,,	उत्तरे	,,	७.३×७.३	रेवती	,,	उत्तरे	,,
२.२३×२.२३	अनुराधा	,,	पश्चिमे	,,	७.११×७.११	अनुराधा	,,	पश्चिमे	,,
३.७×३.७	मृगशिर्ष	,,	पूर्वे	,,	७.११×७.११	मृगशिर्ष	,,	पूर्वे	,,
३.९×३.९	रेवती	,,	उत्तरे	,,	७.२९×७.२९	रेवती	,,	उत्तरे	,,
३.११×३.११	मृगशिर्ष	,,	पूर्वे	ध्वजाय	७.२३×७.२३	मृगशिर्ष	,,	पूर्वे	,,
३.१९×३.१९	अनुराधा	,,	पश्चिमे	,,	८.७×८.७	अनुराधा	,,	पश्चिमे	,,
४.३×४.३	रेवती	,,	उत्तरे	,,	८.१५×८.१५	रेवती	,,	उत्तरे	,,
४.११×४.११	पुष्य	,,	पूर्वे	,,	८.२३×८.२३	पुष्य	,,	पूर्वे	,,
४.१३×४.१३	पुष्य	,,	पूर्वे	,,	९.१×९.१	पुष्य	,,	पूर्वे	,,
४.२१×४.२१	रेवती	,,	उत्तरे	,,	९.९×९.९	रेवती	,,	उत्तरे	,,
					९.३७×९.३७	अनुराधा	,,	पश्चिमे	,,

आयादि गणितः–आय, नक्षत्र, व्यय, एवं अंशकादि अंगोंका गणित देव-मंदिरोंकी दीवारों के बाहरी भागसे मिलाना चाहिये; ध्वज, देवगण नक्षत्र, प्रथमव्यय, एवं अंशक मिलाने पर शुभ गणित जानना चाहिये; देवप्रासाद में वृष, सिंह, और गजाय ये तीनों आयभी श्रेष्ठ हैं, कार्यारंभ करनेमें मास नक्षत्र एवं लग्नादिका विचार पूर्वाचार्योंके शास्त्रानुसार प्रमाणपूर्वक करना। १४–१५.

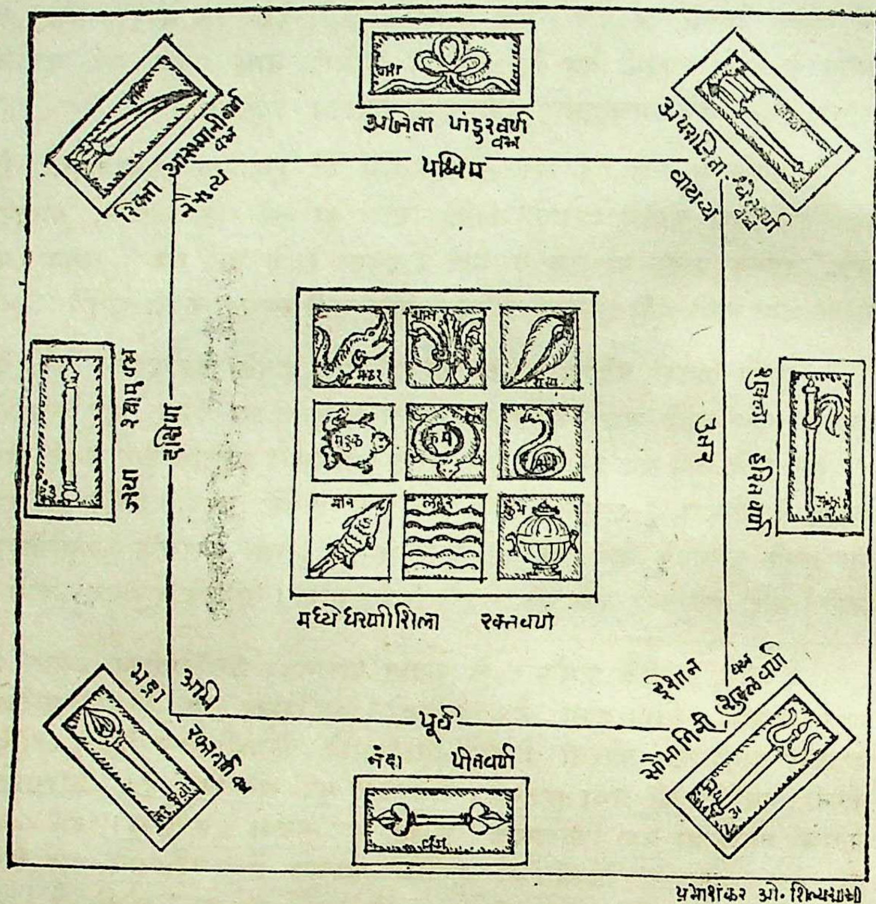
नागवास्तु चक्र एवं खातः–वास्तुशास्त्रमें कहे हुए नाग चक्रको देखकर, जिस संक्रान्तिमें जिस कोनेमें "खात" निश्चित होता हो वहां खड्डा बनाकर, वास्तुपूजन करके, जबतक पत्थर या जल न आवे (अथवा रेतके अन्त तक। अथवा कच्ची मिट्टीके अन्त तक) भूमि शुद्धिकर–खोदकर कूर्मशिलाकी स्थापना करनी चाहिये।१६-१७.

सुवर्ण अथवा चांदीके कूर्मका प्रमाणः–[१]एक हाथके देवालयके लिये आधे अंगुलका कूर्म चांदी अथवा सोनेका बनवाना चाहिये। इस प्रकार पंद्रह हस्त तकके प्रासादके लिये अर्ध अर्ध अंगुलकी वृद्धि करनी। सोलहसे इकत्तीस हस्त तकके प्रासाद निर्माण में चोथाइ $\frac{1}{4}$ अंगुलकी वृद्धि एक एक हाथमें करनी। बत्तीस से पचास हस्त तकके प्रासादके लिये एक एक दोरा अर्थात् $\frac{1}{8}$ एक अष्टमांश आंगुलकी वृद्धि करनी। चौद आंगुलकी कूर्म ५० गजके लिये करना। गणितके अनुसार आये हुए

---

१ सोना चांदीके कूर्मभान के पश्चात् पाषाणकी कूर्मशिलाका प्रमाण भी अन्य ग्रंथोंमें दिया हुआ है। मध्यकी कूर्मशिला नव विभाग=खानोंको आकृति वाली एवं कीरती दिशा विदिशाकी कोणकी अष्ट शिला स्थापित करनी। नवशिलाकी प्रथा गुजरात, राजस्थान एवं सौराष्ट्रमें है। "क्षीरार्णव" ग्रंथमें नवशिला एवं "दीपार्णव" ग्रंथमें नव अथवा पंचशिला। इस प्रकार दो एक प्रकारसे विसर्जित करनेका प्रमाण है-पंचशिलाएं-चार कोणें एवं मध्यमें स्थापन करनेका विधान "विश्वकर्म प्रकाश" ग्रंथमें है, उन शिलाओंमें बनाने के चिह्नोंके विषयमें ग्रंथोंके विभिन्न मत हैं, मध्यकी कूर्म शिला के नौ खाने बनाकर पूर्व दिशासे क्रमसे चिह्न करनेका "क्षीरार्णव" ग्रंथमें वर्णन है। वीरपाल सूत्रधारने "प्रासाद तिलक" ग्रंथमें आग्नेय दिशाके क्रमसे चिह्न बनानेका विधान दिया है। मध्यको पाषाणकी कूर्मशिला पर सोने-चांदीका कूर्म स्थापित करना। और उसपर खडी "नाल" पर देवस्थापनकी सीधमें ऊपर तक लेना उसे "नाभी" कहते हैं। यह अग्निपुराण एवं विश्वकर्म प्रकाश ग्रंथमें कहा है। यह प्रथा द्रविड स्थापत्यमें भी है। कूर्म और अष्ट शिलाओंकी स्थापनाकी भूमिमें एक कलश सप्तधान्य, पंचरत्न आदि रखकर वहां धातुके नाग एवं कच्छप (कछुआ) ताम्र अथवा सोने या चांदीके बनाके उसपर शिला स्थापन करनेकी विधि शिल्पि लोग जो परंपरासे कराते आये हैं, वह उचित है। शिलापर वस्त्र लपेटनेमें निम्न विधि है।

मध्यमान में $\frac{१}{४}$ (चतुर्थांश) भाग जेोडने से ज्येष्ठ मान और $\frac{१}{८}$ घटाने से कनिष्ठ मान जानना चाहिये।



कूर्मशिला या अष्टशिला

शिलारोपण विधि :—सुवर्ण या चांदीके कूर्म (तथा शिला)के पंचामृत से स्नान

दिशा विदिशा	शिलाका नाम	अष्टशिलामें चिह्न	शिलाका वस्त्र वर्ण	दिशा विदिशा	शिलाका नाम	अष्ट शिलामें चिह्न	शिलाका वस्त्र वर्ण
पूर्व	नंदा	वज्र	पीत	पश्चिम	अजिता	पाश	पांडु
आग्नि	भद्रा	सरवा	रक्त	वायव्य	अपराजीता	ध्वजा	श्वेत
दक्षिण	जया	दंड	श्यामजेसे	उत्तर	शुक्ला	गदा	हरालीला
नैरुत्य	रिक्त	खड्ग	आसमानी	इशान	सौभागिनी	त्रिशूल	श्वेत

मध्यकी शिला-धरणी नाम नवचिह्न-रक्त वर्ण वस्त्रका.

कराके इशान अग्नि आदि सृष्टिमार्ग से अष्टशिलाका स्थापन करके मध्यमें कूर्म शिलाका स्थापन करना चाहिये। इस समय मंगल गीत एवं वाद्य वजाने चाहिये। धान्य घृतं आदिका नैवेद्य एवं बलिदान–कूर्मन्यास शिला स्थापन समय में देवताओंको वास्तुपूजन करके देना चाहिये–२०–२३.

आरंभके शुभ नक्षत्रः—प्रासाद अथवा गृहके निर्माण हेतु, जमीन पर सूत्र छोडनेके लिये-तीन उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाति, रोहिणी, पुष्य, मृगशीर्ष, अनुराधा, रेवती, धनिष्ठा एवं शतभिषा ये नक्षत्र शुभ जानना-(२२) शिलान्यासके शुभ नक्षत्र -रोहिणी, श्रवण, हस्तपुष्य, मृगशीर्ष. रेवती और तीनों उत्तरा, [१]उत्तरा–षाढा [२]उत्तरा–भाद्रपद [३]उत्तरा–फाल्गुनी ये नक्षत्र शुभ जानना (२३)

प्रासाद योग्य स्थान और पुण्यः—नदीके तीर पर; सिद्धपुरुषोंके आश्रममें, तीर्थ स्थान में शहर या ग्राममें; अथवा बाहर, पर्वतकी गुफाके आगे, बागमें, बावडी या तालाब के किनारे-इन स्थानों पर प्रासाद स्थापन करने चाहिये। देव स्थापन पूजन और दर्शनादि से पुण्यलाभ होता है और पाप क्षय होता है, धर्मकी वृद्धि होती है, द्रव्यसे कामनाएं पूर्ण होती हैं, और मोक्षप्राप्ति होती है! (२४–२५)

वास्तु द्रव्यानुसार पुण्य प्राप्तिः—तृण=घासका देवालय स्थापन करने से

शिलाका नाम पृथक् पृथक ग्रंथोंमें भिन्न भिन्न कहा है। अष्ट शिला कूर्म शिलासे $\frac{1}{2}$ विस्तार विस्तारसे $\frac{1}{3}$ पृथुभोटी रखनी। मध्यकी कूर्मशिला समचोरस करनी अर्थात् मध्यको कूर्मशिला सामान्य रीतसे गर्भ गृहको मध्यमें स्थापन करनेका कहा है। परंतु "दीपार्णव" ग्रंथोंमें अर्ध पादे त्रिभागे वा शिला चैव प्रतिष्ठयेत्॥ का प्रमाण स्पष्ट दिया है। अर्थात् गर्भगृहके अर्धभागमें (शिवलिङ्ग विषयमें) अथवा तीसरे या चौथे भागमें कूर्मशिला स्थापन करनेका विधान है। इसका तात्पर्य यह है कि देव स्थापनके निम्न स्थानपर कूर्मशिला स्थापन करना। तदनुसार देवके नीचे नाल और नाभि अवलंम्ब सूत्रमें आ जाये। सौराष्ट्रकी कितनी ही प्रतियोंमें और अग्निपुराण और विश्वकर्म प्रकाशमें शिला स्थापनके विधानमें कहा है।

स्वस्वासु वाहनाद्यंकै-र्धातुजे स्ताष पात्रगैः
मुक्तदोष विधानाद्यैन्यत्शेङ्गर्भ सुरालयोः॥

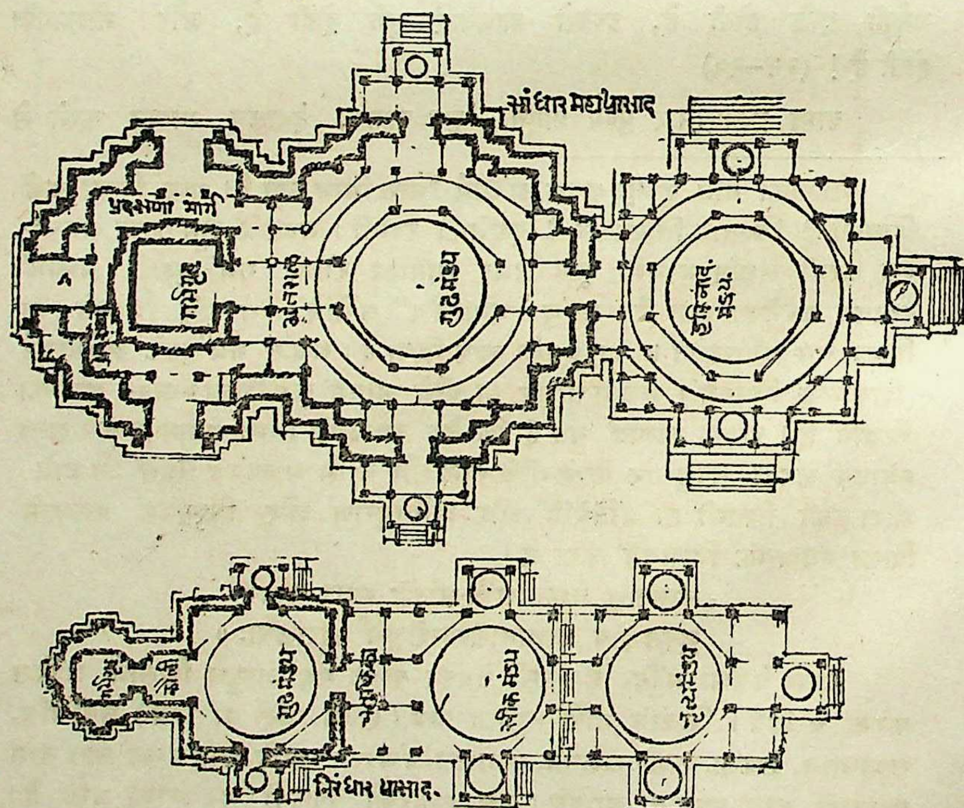
जिस देवका मंदिर हो–उसी देवका वाहन एवं आयुध शिलामें अंकित करना चाहिये। शिलाके नीचे धातुका पात्र (सोना चांदी या ताम्र) सर्वौषधि, सप्तधान्य, शेवाल, कोडी, चणोठी, गंगाजल, पंचरत्न आदि सहित एवं नाग तथा कच्छपके साथ पधराना चाहिये। इस प्रकारकी शिल्पी परंपराकी प्रथा है। कितने ही ग्रंथोमें शिला में स्वस्तिकादि चिह्न अंकित करनेका विधान है।

कोटिगुना पुण्य मिलता है। मिट्टिका बांधने से उससे दशगुना, इंटका निर्माण करनेसे सौकरोडगुना और पाषाण का देवालय बांधने से तो अनंत गुना फल प्राप्त होता है। २६

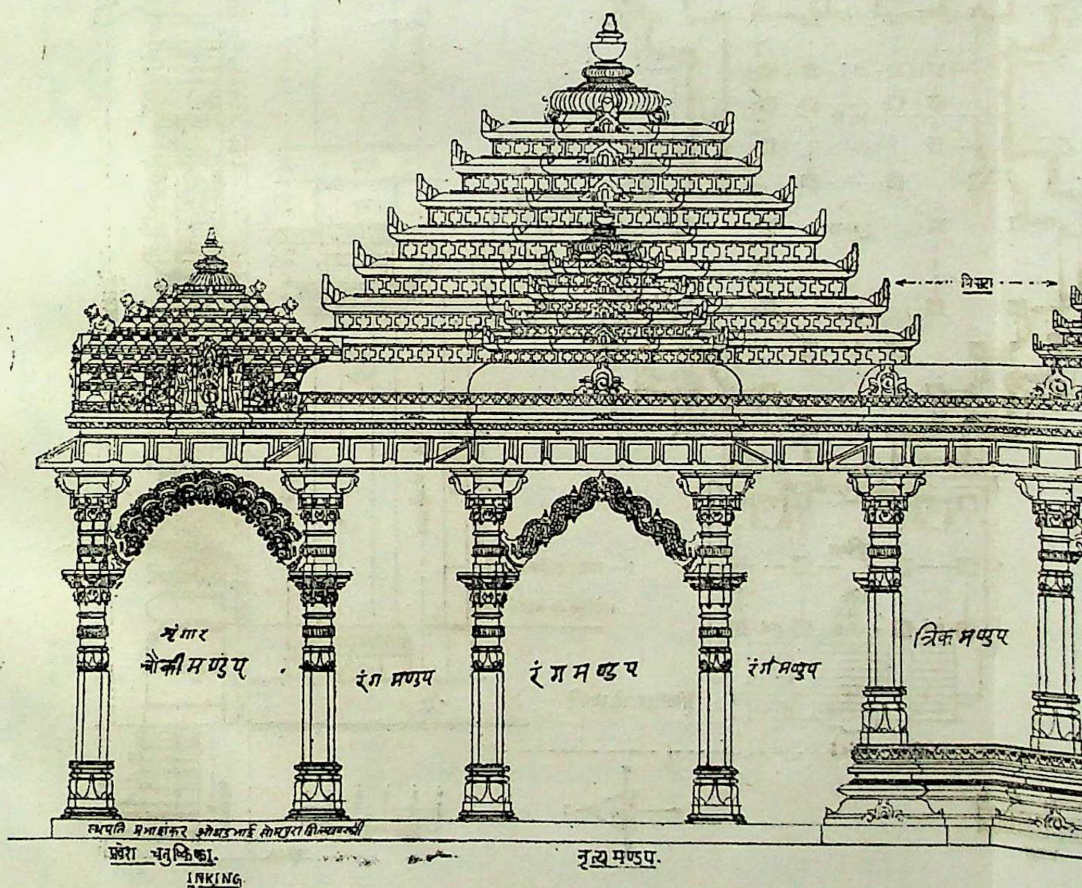
वास्तु पूजन के सात मुहूर्तः—१ कर्मशिला स्थापन काल, २ द्वार स्थापन काल, ३ पद्मशिला स्थापन काल, ४ सुवर्ण पुरुष पधराने के समय, ५ आमल सारा स्थापन काल, ६ ध्वजारोहण काल, ७ देव प्रतिष्ठा समय। ये सात पुण्य कार्य करते समय वास्तु पूजन अवश्य करना चाहिये—२७

वास्तु शान्तिके चौदह मुहूर्तः—१ भूमिका आरंभे, खनन समय २ कूर्मशिला स्थापन काल ३ (भूमि तल होने बाद) सूत्र छोडते समय ४ खुरा चिपकाते, ५ द्वार स्थापने ६ स्तंभारोपण काले ७ पाट भारोट स्थापन काले ८ गुम्बजकी पद्मशिला स्थापने ९ शिखरके शुकनाश स्थापन समये, १० सुवर्णका प्रासाद पुरुष पधराते ११ आमलसारा स्थापने १२ कळश स्थापने १३ ध्वजा रोहण काले १४ देव स्थापन

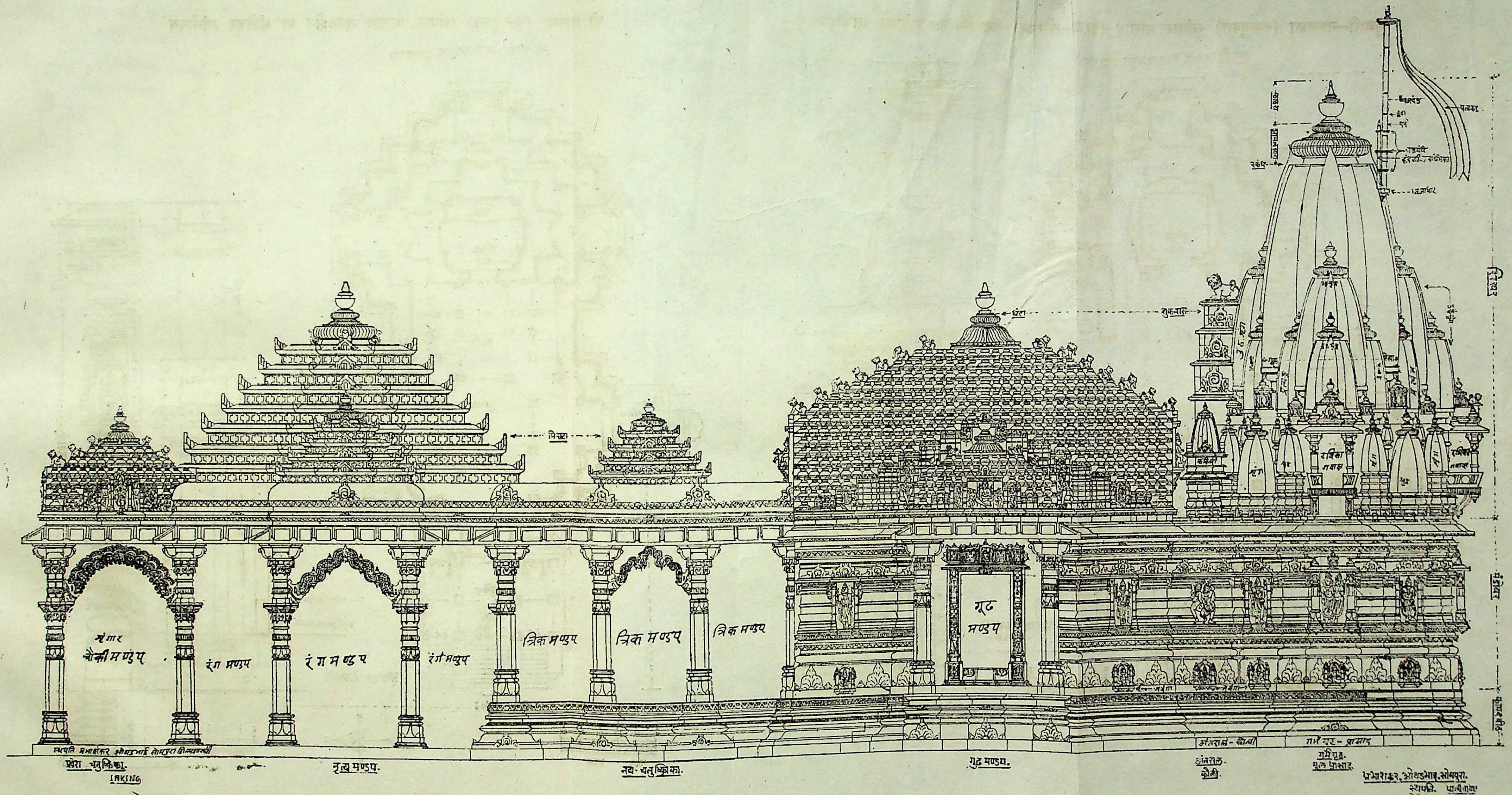
भ्रमयुक्त सांधार महाप्रासादका तलदर्शन



निरंधार प्रासादका तलदर्शन



निरंधार प्रासाद, गर्भगृह, गुढ मंडप, त्रिक



निरंधार प्रासाद, गर्भगृह, गुढ मंडप, त्रिक मंडप, नृत्यमंडप याने श्रृंगार चोकी साथेका प्रासादका संपूर्ण अंग युक्त यक्ष दर्शन.

घुमली–नवलखा (भ्रमयुक्त) सांधार प्रासाद (बरडा–सौराष्ट्र) तलदर्शन या मंडोवर स्तंभोदय

घुमली नवलखा भ्रमयुक्त प्रासाद (बरडा सौराष्ट्र)

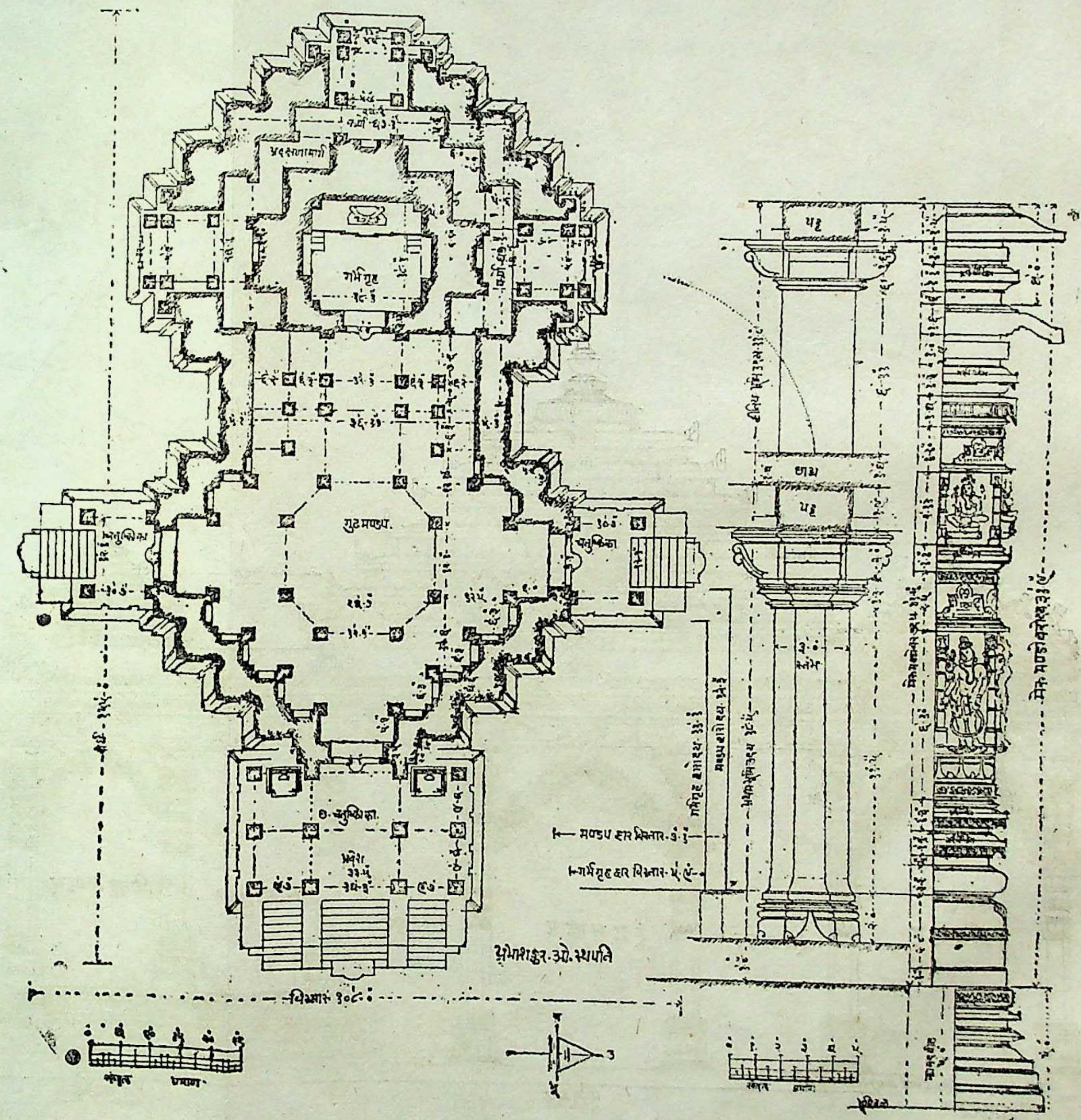
गर्भगृह

चौकी

त्रीक मण्डप

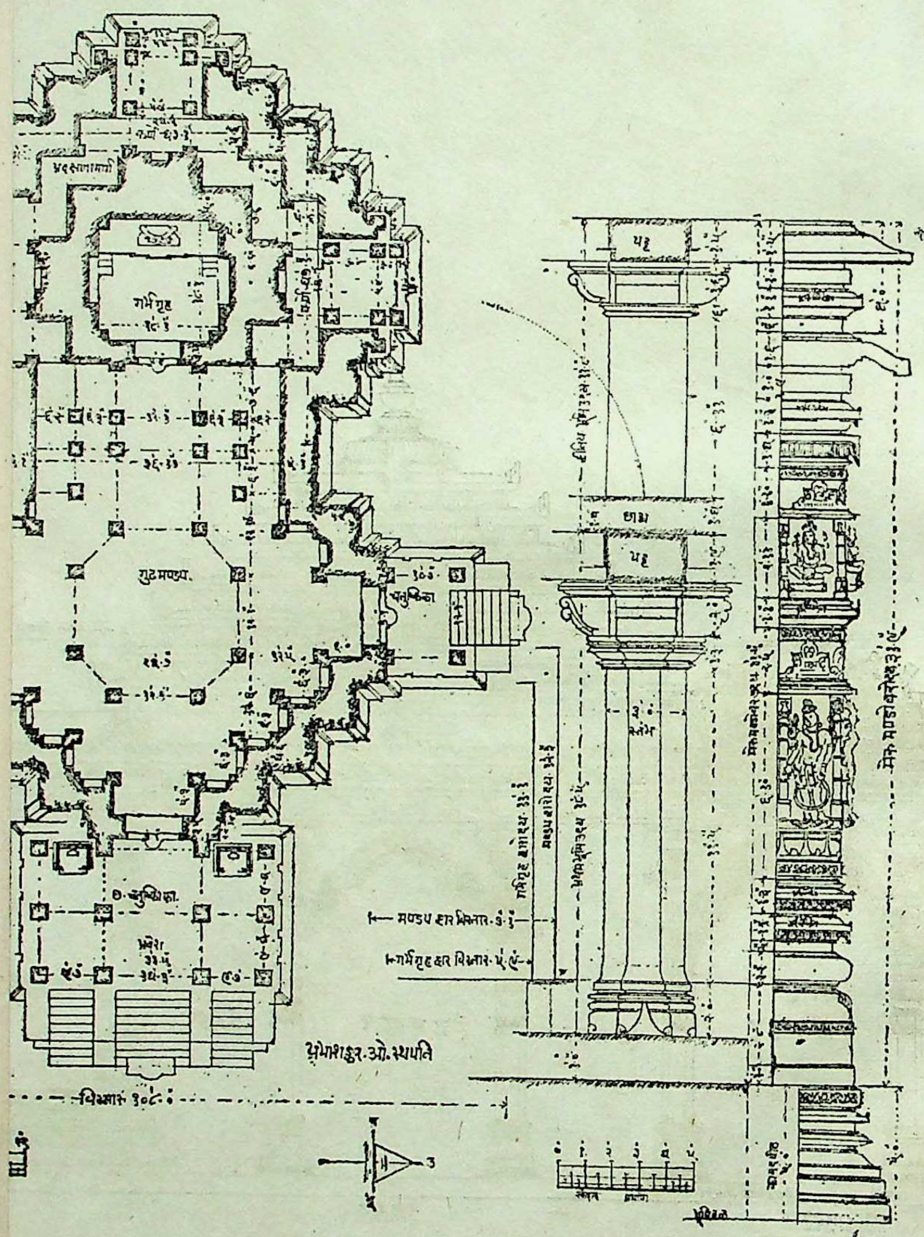
प्रभाशंकर ओ. स्थपति

श्री तारंगा (भ्रमयुक्त) सांधार प्रासाद तलदर्शन या मंडोवर स्तंभोदय



ारंगा (भ्रमयुक्त) सांधार प्रासाद तलदर्शन या मंडोवर स्तंभोदय

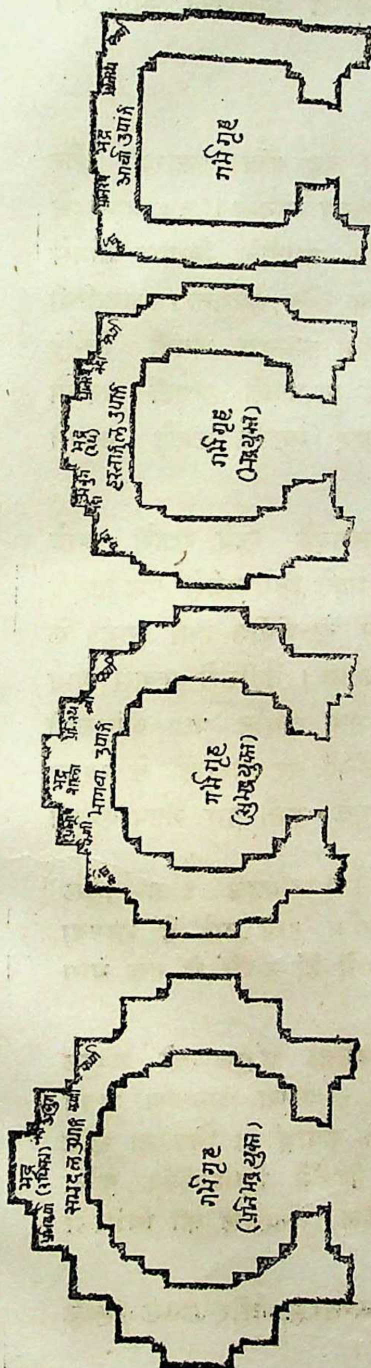
श्री तारङ्गा जैन महाप्रासाद. (उत्तर गुजरात)



(प्रतिष्ठा) समय इन चौदह मुहूर्तों में वास्तु शान्ति अवश्य करनी चाहिये। २८-२९

प्रासादका प्रमाण कहाँसे लेना ? एक हाथ हस्त (चोविश आंगुल) पचास हाथ (गज) तक का प्रासाद का प्रमाण दीवार के बाहर रेखासे कुंभाकी बीच के अंतर के अनुसार लेनेको कहा है। दश हाथसे ऊपरके प्रासादके लिये भ्रम (परिक्रमा) करना चाहिये। जो ३६ हाथ=गज तकके प्रासादके लिये (एक दो तीन अथवा चार भ्रम होते हैं) भ्रम करनेका विधान है। ऐसे भ्रम वाले प्रासाद "सांधार" प्रासाद कहाते हैं, और भ्रम रहित प्रासादको निरंधार प्रासाद कहते हैं। ३०-३१

पांच हाथसे पचास हाथ (गज) तक का मेरु प्रासाद होता है। प्रासाद के कुंभादि थरोंके निर्गम-निकाले समसूत्र में अवलंब-ओलम्बाके अनुसार रखने चाहिये। किंतु उनकी पीढ से छज्जा थोडा बाहर निकलता रखना चाहिये। प्रासादके अङ्ग विभागसे तीन, पांच सात या नव फालना (भद्ररथ प्रतिरथादि) रखना चाहिये, अंगोंकी संख्या उनके मध्य स्थित पानीतार से भिन्न होती हैं फालना रेखा-कर्णसे दुगुना भद्र विस्तार (सामान्यतया) होता है। ३२. ३३. ३४.



प्रासादना गर्भगृह-(१) अंतर उपांग-प्रतिभद्र, सुभद्र, भद्र, चतुरस्र २ बाह्य-समदल, भागना, हस्तांगुल, आर्ची.

समदल हस्तांगुल फालना विधि :—रथ नदी प्रतिरथादि फालनो का निर्गम-निकाला की विधि साधारण तथा दो प्रकार की कही गई है। जितने अङ्ग फालना रथ नंदी प्रतिरथादिके विभाग हों, उतना उनको निकाला रखना चाहिये वह "समदल" कहा जाता है! और जितने हाथका प्रासाद हो उतने अंगुल प्रमाण अंग फालना (रथ प्रतिरथादि) केनिर्गम निकाला रखना। यह "हस्तांगुल" विधि जाननी[३] ३५

३ प्रासादके अंग प्रत्यंगके निकाल चार

प्रासादके अंगों चारसे लेकर ११२ तक के भाग कहते हैं। एक तलका प्रासाद (अठ्ठाई दशाई बाराई चौदाई) के ऊपर शिखर अनेक प्रकारके चडते हैं किन्तु उनके ऊपर के शिखर अंङ्क की संख्या एवं आकारसे प्रासादकी जाति एवं नाम ज्ञात होता है। ३६–६७.

अथ जगती

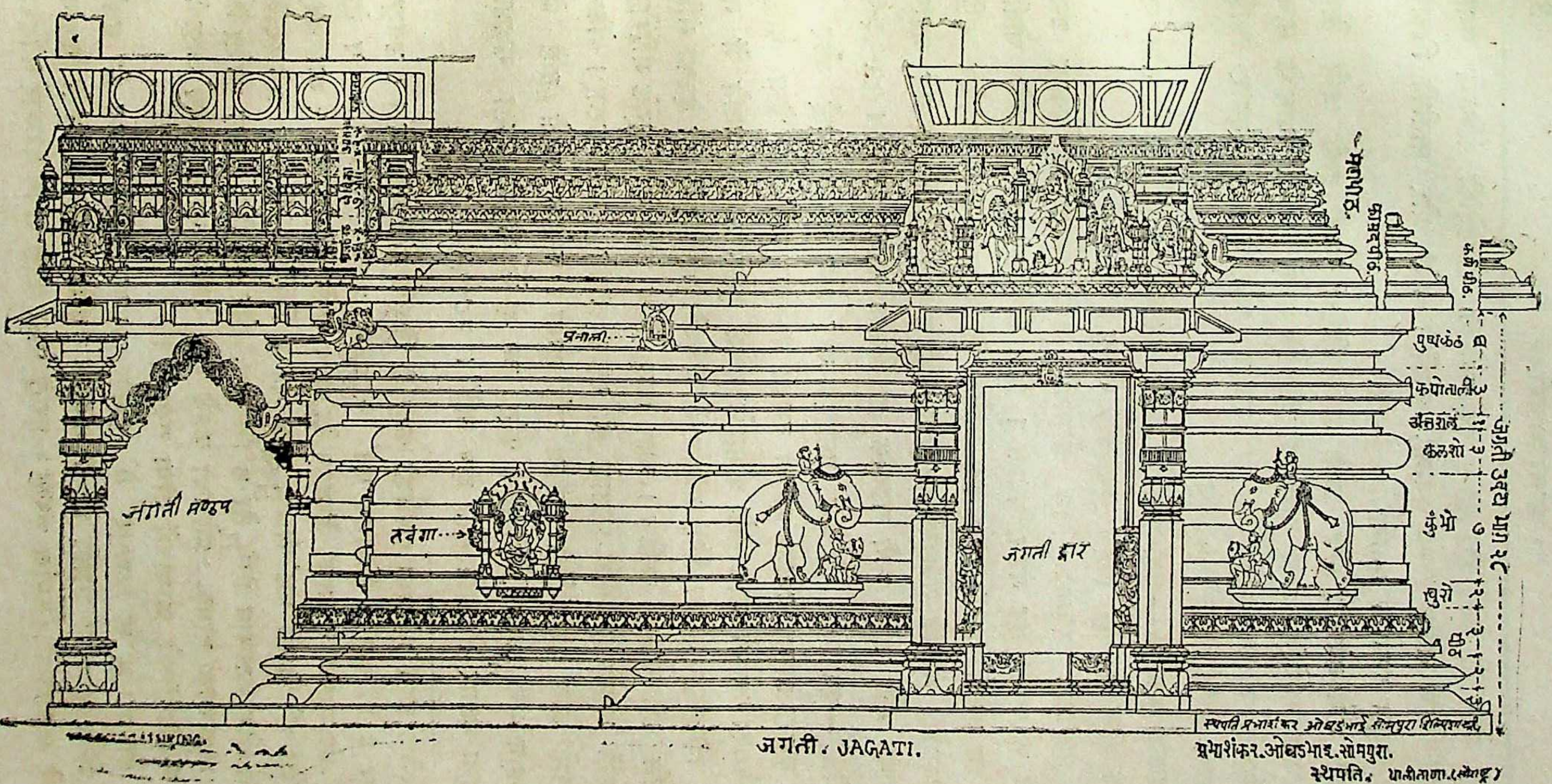
चोरस, लम्बचोरस, अष्ठांश गोल और लम्बगोल। यह पांच प्रकारकी और जैसा प्रासादका आकार हो वैसा जगती के तलके स्वरुप जानना। ३७ प्रासादसे तिगुनी चारगुनी या पांचगुनी इस प्रकार तीन विधि जगतीके विस्तार मानसे (ज्येष्ठ मध्यम एव कनिष्ठ मानके क्रमसे) एक दो या तीन भ्रमयुक्त। जगतीकी योजना होती है, प्रासादसे छगुनी सातगुनी और तीन भ्रमयुक्त जगती जिनेंद्र प्रासाद एवं द्वारका के विष्णु, शिव तथा ब्रह्मा के प्रासादकी जगती रखनी लंबाई में सवायी डयोढी. या दुगुनी। इस प्रकार मंडपके क्रमसे जगती करनी चाहिये। ३७–३९

जगतीकी उंचाई एक हाथसे बारह हाथ तकके प्रासादके लिये गजमें आधे गजकी रखनी। तेरहसे बाइस हाथ (गज–हस्त) तक प्रासादके लिये गजसें एक तिहाई अर्थात आठ आठ आंगुलकी वृद्धि करते जाना। तेइस से बत्तीश हाथ (गज) के प्रासाद के प्रत्येक गज–छ छ आंगुलकी वृद्धि करते जाना। तैंतीससे पचास हाथ गज के प्रासाद के लिये प्रत्येक गज गजका पांचवाँ भाग अर्थात् ४॥। आंगुलकी वृद्धि जगतीकी उंचाईमें करते जाना। जगती में कोणों पर दिग्पालों के स्वरुप सृष्टिमार्ग से बनाना चाहिये[४]। प्रासादके प्राकार (किल्ला)के आगे द्वार मंडप बनाना

प्रकारसे रखनेकी प्रथा शिल्पिओंमें परंपरासे है। १ समदल २ हस्तांगुल ३ भागवा ४ आर्या ये चार प्रकारसे फालनाके निर्गम रखे जाते हैं भागवा अर्थात प्रासादके विभक्ति के जितने विभाग कहे गये हों उनमें से एक भाग का निकाला–निर्गम रखना वह भागवा कहलाता है।

उपाङ्गों में "आर्या" प्रकारके (निगम) निकाला अंगुल दो अंगुल जितने अल्पही होते हैं परंतु इस प्रकारके निकाला संवरणा (शामरण) युक्त प्रासादके ही होते हैं। भागवा एवं हस्ताङ्गल विधिके उपाङ्गोका निकाला छोटे होते हैं। जिससे उनके ऊपर शिखर बनानेके कार्यमें शिल्पिओंके बुद्धि चातुर्य की कसोटी रुप होता है। जब कि "समदल" निकाले की विधि में बहुत छूटछाट रहती है।

४ जगती के उदयमें पीठ खरा कुंभा कलशा अन्तराल और उनके सबके ऊपर पुष्पकंठ (गीलता) के घाट करनेका विधान है।



जगती प्रवेश चतुष्किका—महापीठ तथा कक्षासन

जिसे "मुख मंडप"भी कहते हैं। जगत पर चढनेकी सीढियोंकी पंक्तियाँ बनाना जिसके आगे तोरण सहित स्तम्भ बनाना, जगतीकी चारों ओर पानीकी निकासी के लिये मकरमुख प्ररनाली बनाना। ४०–४१.

मंडपके[५] आगे प्रतोल्या और उनके आगे सीढियां रखनी इनके आगे तोरण बनाना, जिसके स्तम्भोंका अंतर प्रासादकी दीवारके गर्भसे अथवा स्थान के मानसे अथवा गर्भगृहके पद के अनुसार–विस्तारमें रखना। और वे पदके अनुसार उँचाईमें पाट अनुसरण करके रखना। ४२–४३

देव वाहन स्थानकी:—चतुष्किका या मंडप प्रासादके आगे एक दो तीन चार पांच छ या सात पद दूर (पदके गुणान्तर) रखना। ४४–४५

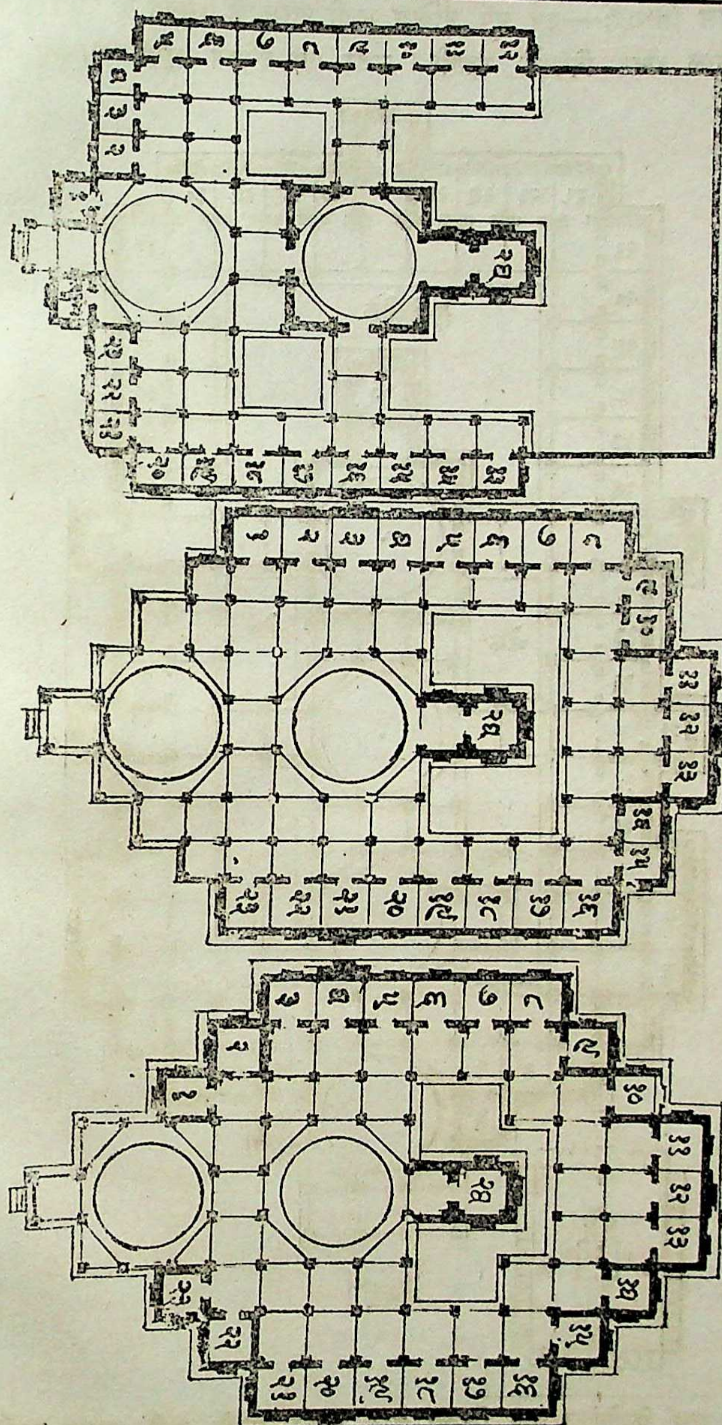
जिन प्रासादाग्र रचनाः—जिन प्रासादके आगे समवसरण बनाना उसके आगे (मुख के आगे) गुढ मंडप बनाना। जिन मंदिरके चारों दिशामें चोवीस जिनायतन या वावन जिनायतन अथवा बहुतर जिनायतन मूल जिनमंदिर सहित संख्यामें बनाना। मंडपके गर्भसूत्रके अनुसार दाईं व बाईं ओरकी दिशामें अष्टापद मंडप त्रिशाला और उसके आगे बलाणक का निर्माण करना चाहिये। ५५-५६-५७

नाभिवेधः—एक ही जो मूल प्रासादके बाईं ओर अथवा दाईं ओर या आगे पीछे दूसरा प्रासाद बनाना हो तो उसका नाभिवेध नहीं होने देना चाहिये यहाँ नाभिवेधका तात्पर्य आडे खडे प्रासादके गर्भमें दूसरा प्रासाद बनाने में गर्भ समालना। शिवलिङ्ग अथवा शिव प्रतिमा के मंदिरके आगे दूसरे भी देवका मंदिर सामने गर्भमें नहीं बनाना चाहिये। ब्रह्मा विष्णु शिव जिन और सूर्यके मंदिरों के सामने अपनी अपनी मूर्तियोंके प्रासादों की रचना आमने सामने करना। किन्तु शिव के आगे अन्य देवताओंकी स्थापना नहीं करना। क्योंकि इससे द्रष्टि भेद होने से महान भय उत्पन्न होता है। परंतु उन दो के बीचमें किल्ला राजमार्ग अथवा दुगुना अन्तर होवे तो कोइ दोष नहीं[६]। ५८–५९

---

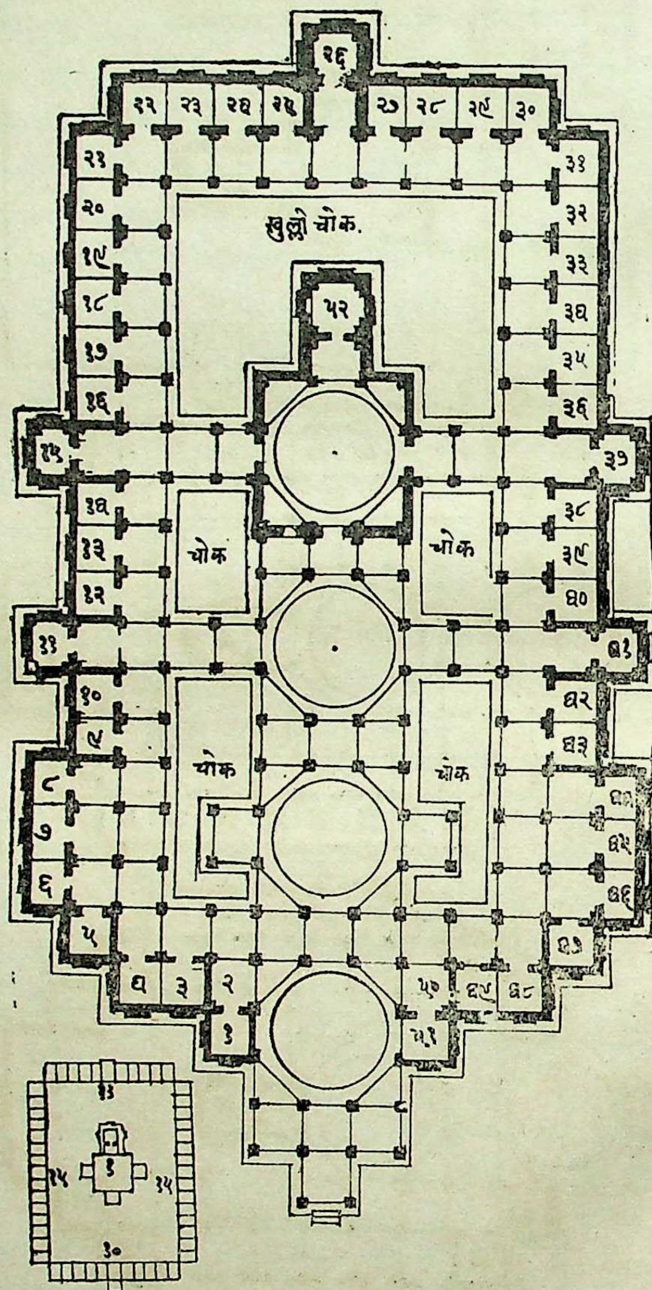
५ जगतीके आगे प्रतोल्या करनेको कहा है जिसके पांच प्रकार हैं। १ उतङ्ग २ मालाधर ३ विचित्र ४ चित्ररुप एवं ५ मकर ध्वज। उसका स्वरुप दो स्तभवाले प्रतोल्याको १ उतङ्गः जोडरुप दो स्तंभ वाले प्रतोल्या को २ मालाधर; चार स्तंभो की चोकी एवं तोरण युक्त को ३ विचित्र; विचित्र प्रतोल्याके यदि दोनों ओर कक्षासन होवे तो ४ चित्ररुप; और चोकीके जुडवा स्तंभो हो तो उसे मकरध्वज नामक प्रतोल्या कहते हैं। उसका स्पष्ट स्वरुप आकृती दीपार्णव ग्रंथके तीसरे अध्यायमें दीया गया है।

६ एक ही प्रासाद के विस्तार में दूसरा प्रासाद बनाते समय जो गर्भ मिलानके लिये स्थलका अभाव हो तो मंडपके गर्भको प्रासादके गर्भसे मिलान करके दूसरे प्रासादका निर्माण करना। परंतु वैसा करते समय परस्पर मंदिरों

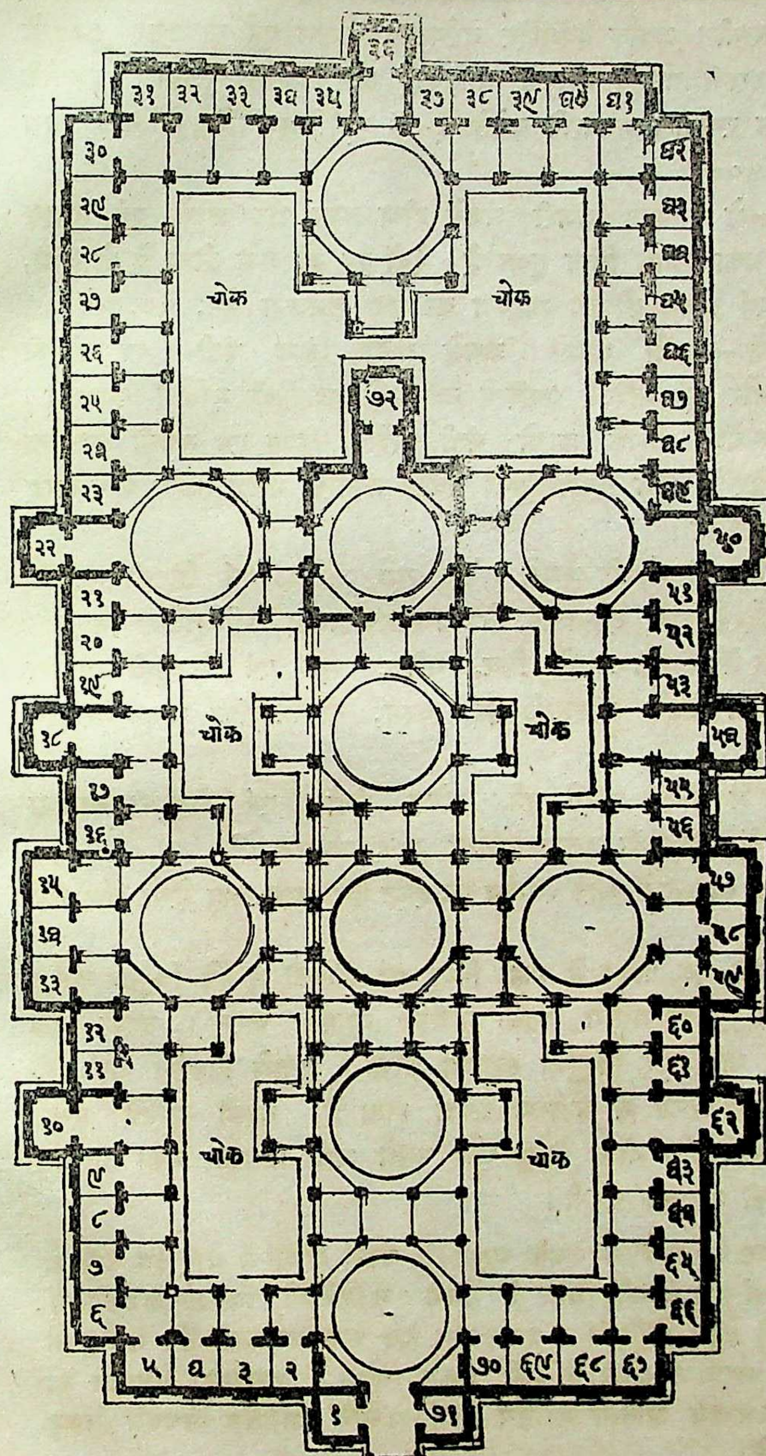


चोवीश जिनायतन (तीन प्रकार)

प्रनाल विचारः—पूर्व एवं पश्चिम मुखी प्रासादके गर्भगृह के पानीकी निकासी के लिये प्रनाल उत्तर दिशामें रखनी। उत्तर एवं दक्षिण मुखी प्रासाद के लिये



के स्तंभो एवं कोणोंका रुख किसी द्वार अथवा पदमें नहीं पडना चाहिये इन दोषादि का विचार करके कार्यारम्भ करना चाहिये।



बहोंतेर
जिनायतन

पूर्व में प्रनाल रखनी। अर्थात् देवमंदिर गर्भगृहकी प्रनाल पूर्व या उत्तर इन दो दिशाओं में ही रखनी चाहिये मंडपके बाईं-दाईं ओर प्रनाल रखनी। जगतीके चारों ओर प्रनाल रखनी। मयऋषि कहेते हैं कि पूर्वाभिमुख लिङ्गकी नाल वाम भागमें रखनी। ५०-५१

अथायतनः—ये प्रासाद मंजरी ग्रंथमें दीया हुआ पाठ अपूर्ण एवं अशुद्ध होने से अन्य ग्रंथका प्रमाण लिया हुआ है। देवों का जो क्रम लिया है वो अग्नि, नैरुत्य, वायव्य एवं इशान कोणकी स्थापना का क्रम समजना ५२, ५३, ५४

१ सूर्यायतनमें:—अग्नि कोणके क्रमसे गणेश विष्णु चंडी एवं शंभुकी स्थापना करनी और सूर्य मंदिरमें आदित्य नव ग्रहो गणादिकी मूर्तियाँ बनवानी।

२ गणेशायतनमें:—कोणके क्रमसे चंडी, शिव, विष्णु एवं सूर्यकी स्थापना करनी। गणेश मंदिर में अपने हितवाञ्छुको बत्रीश प्रकारके गणेश स्वरुप और बारह गणकी मूर्तियाँ बनवाना।

३ विष्णु आयतनमें कोणके क्रमसे गणेश, सूर्य, अंबिका एवं शिवकी स्थापना करना। विष्णु मंदिरमें गोपी दशावतार, विष्णव स्वरुप द्वारका जैसी मूर्तियाँ बनवाना।

४ चंडयायतन में कोणके क्रमसेः शिव, गणेश, सूर्य एवं विष्णुकी स्थापना करना। देवी मंदिरमें षोडश मातृकादि देवी स्वरुप, योगिनीयोंका स्वरुप भैरवादय मूर्तियाँ बनवाना।

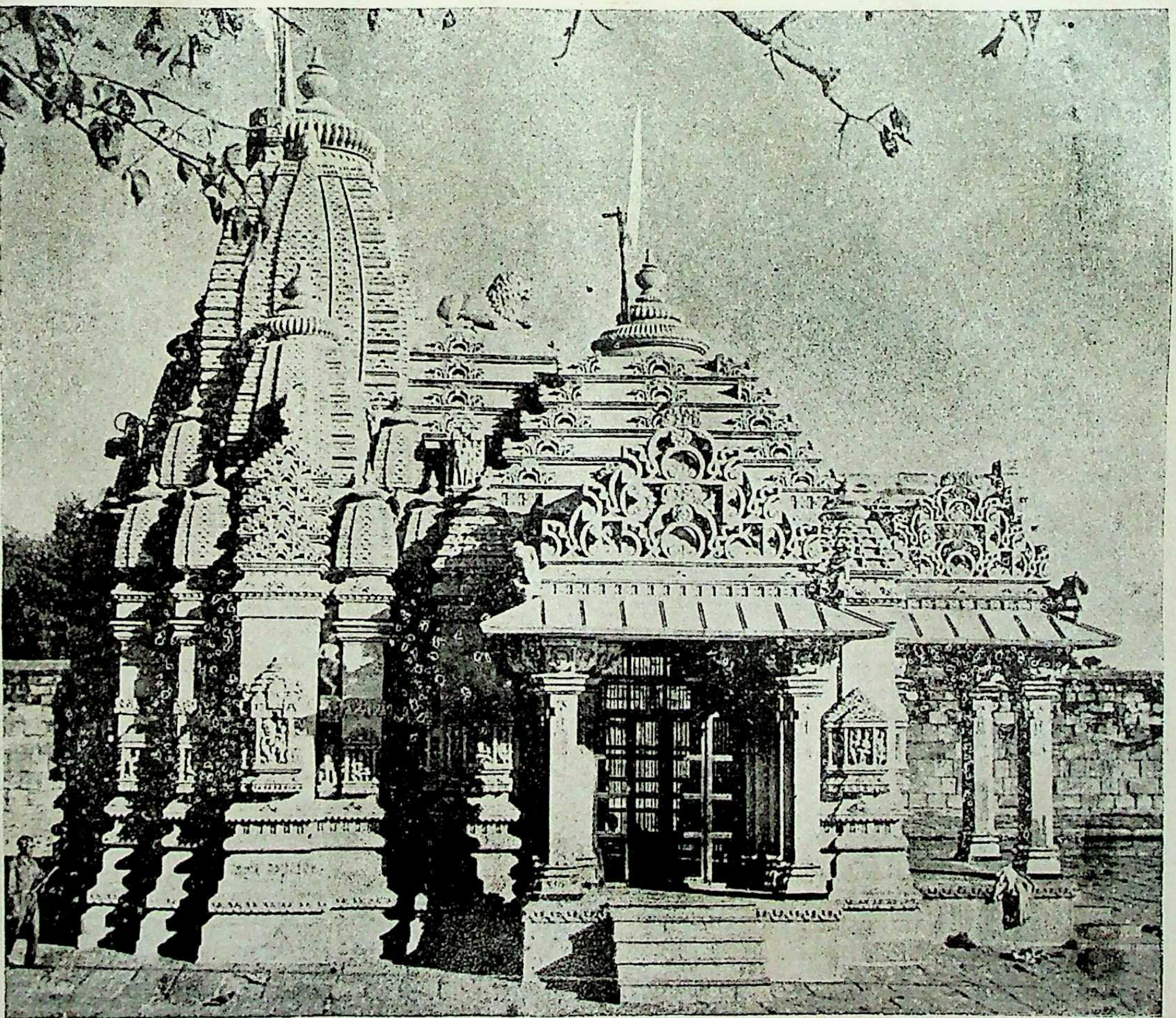
५ शिवायतन में कोणके क्रमसे सूर्य, गणेश, चंडी, एवं विष्णुकी स्थापना करना। शिवालय में शिवजीकी द्वादश मूर्तियाँ आदि बनवाना।[७]

इन पंचाययन स्थापनामें शिव स्थापन पर दृष्टि वेध आगे कहा ऐसा वेध नहीं होने देना।

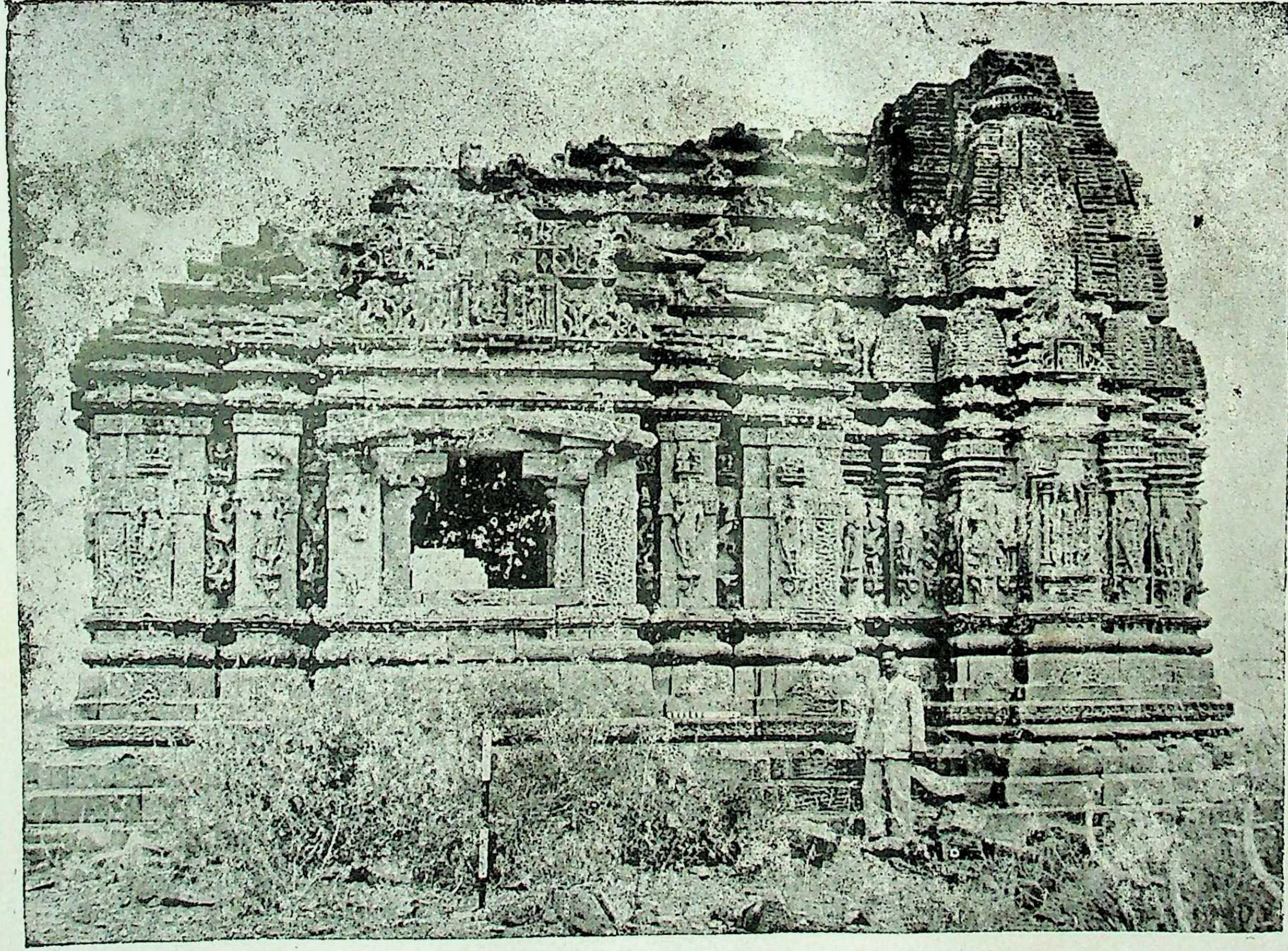
त्रिमूर्ति स्थापना—एक पंक्ति में ब्रह्मा विष्णु एवं शिवकी मूर्तिके त्रिपुरुष प्रासाद में स्थापना करनी हो तो मध्यमे रुद्रकी मूर्तिकी स्थापना करना। उनकी दाई ओर ब्रह्मा। ओर बाईं ओर विष्णुकी स्थापना करना। (इससे विपरीत आगे पीछे उलटा सुलटा स्थापित करने से महाभय उत्पन्न होता है) रुद्रकी मूर्तिके मुखके तीन भाग करके—एक भाग नीचा विष्णु और उससे आधे भागका ब्रह्मा जी और पार्वतीजीकी मूर्तिकी स्थापना करनी।

---

१ पंचायतन में प्राधान्य देवके प्रासादके चारों कोणों में चार देव देवीका मंदिर या देरियां बनाने की विधि हे उनमें मंदिरोंकी फिरती जंघादि में मूर्तियां बनावानी पूजा विधि में। पंचायतन देव स्थापना करते हैं। गर्भगृहमें भी इसी प्रकार स्थापना करते हे इसी प्रकार कोण। प्रमाणसे आयतन का प्रयोग प्रासाद रचनामें जानना चाहिये अन्य ग्रंथोंमें आयतन विषयमें उलट सुलट मत भी है।



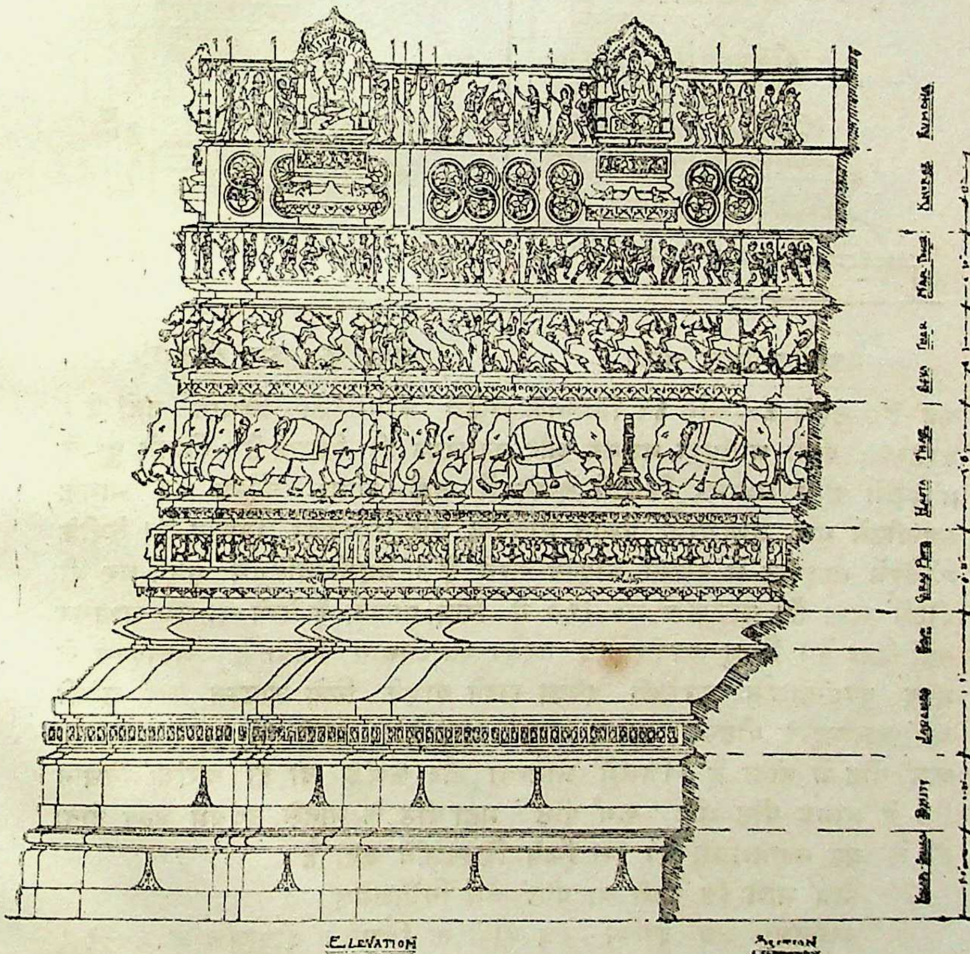
दशवीं शताब्दीका कुटछाद्य विहीन – त्रिनेत्रेश्वर प्रासाद   प्रतिकृति वडीलश्री ओघडभाई भवानजी. वि सं. १९५७



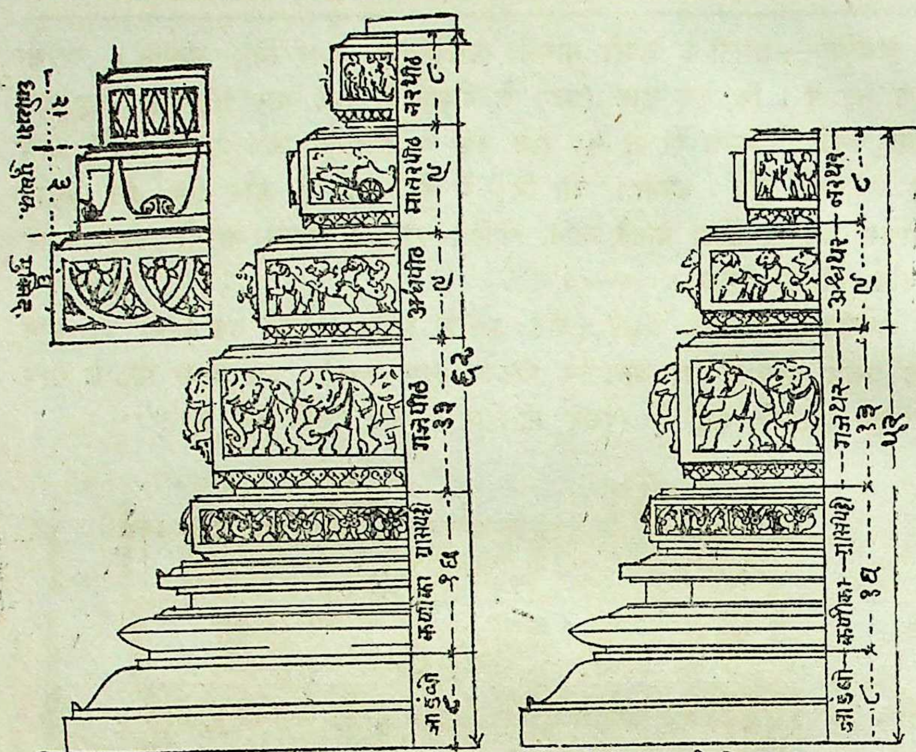
दशवीं शताब्दीका कुटछाद्य विहीन कोटाय शिवप्रासाद (कच्छ)
(आर्च्योलोजी राजकोटका सौजन्यसे)

अथभिट्ट—जगती के ऊपरी भागमें खरशिलाके ऊपर भिट्ट बनाना। उसका प्रमाण यह है। कि एक हाथ (गज) के प्रासाद के लिये चार आङ्गलका भिट्ट उदय बनाना उसके उपरान्त दो से ५० गज तक के प्रासादके लिये प्रत्येक गजमें आधे आधे अंगुलकी वृद्धि करनी। उन भिट्टो में से एक दो–और तीन इस प्रकार उत्तरोत्तर बेड से छोटा बनाते जाना चाहिये–उसका निकाला अपनी अपनी उंचाइ के चौथे भागका रखना। ५६–५७

अथपीठ—प्रासादकी उंचाई (पीठ ऊपरसे छज्जा मथाला तक) के २१ भाग करके उसके पांच से नव भाग तक पीठका उदय रखना। इस प्रकार पीठ के पांच भेद उदय प्रमाणके कहे हैं (दूसरे भी प्रमाण अन्य ग्रथोंमें कहे हैं)।[८]



८ क्षीरार्णव एवं दीपार्णव ग्रथमें पीठके थर के पृथक पृथक चार मान



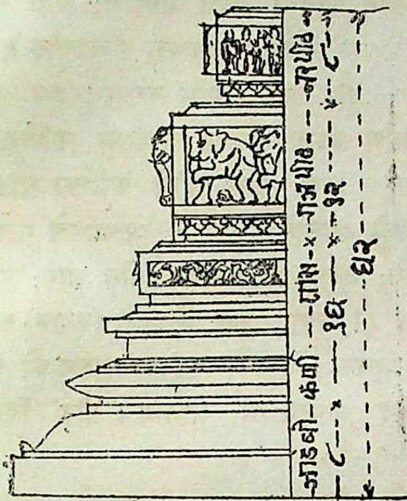
महापीठ प्रकार चौथा   महापीठ प्रकार तीसरा

कहे हैं। उननें ६० और ६२ विभागके पीठमें अश्वथरका विधान नहीं है। जाडम्बा; कणी ग्रासपट्टी गजथर और नरथरका ही विधान है। कितने पुराने मंदिरोंमें कभी अश्वथर किसीमें देखने में नहीं आता, बल्कि ६१ भागके महापीठमें गज अश्वथरके पश्चात मातृपीठ और नरथरका विधान हैं। देवीके मंदिरमें मातृपीठ में रथकी आकृति करते हैं। महाशिवालयमें वृषभ थर भी पीठमें कहा हैं। वृक्षार्णव अ० १६७ में शिव प्रासाद के लिये गजथर अश्वथर नहीं कहा है। किन्तु वृषपीठ एवं नरथर का विधान किया है। अल्पव्यय से महद् पुण्योपार्जन करनेकी इच्छा रखने वालेके लिये जाडम्ब कर्ण छज्जी एवं ग्रासपट्टीके पीठको 'कामद पीठ' कहा है। उससे भी अल्प द्रव्यव्यय कर्ण पीठ में होता है। जिसमें जाडम्बा और कर्णके दो ही थरोंका विधान है। ये कामद पीठ और "कर्ण पीठ" महा पीठ के मानसे उदयमें अल्प होता ही है यह स्वाभाविक है। इस लिये शिल्पज्ञोंने कहा है।

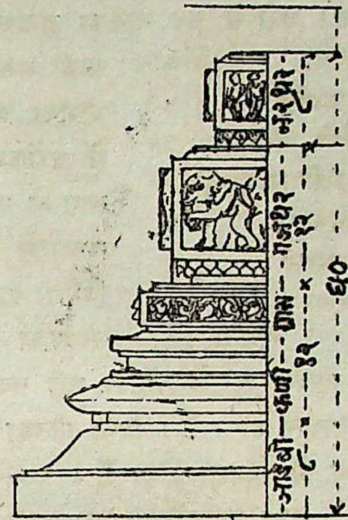
अर्ध भागे त्रि भागे वा पीठं चैव नियोजयेत्।
स्थानमानाश्रयं ज्ञात्वा तत्र दोषो न विद्यते॥ दीपार्णव अ. ६-२१

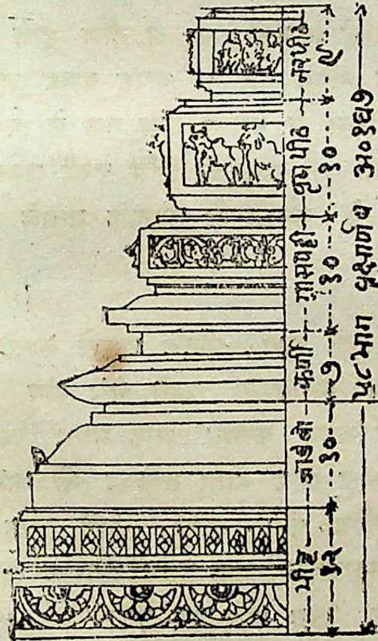
कहे गये पीठमान से अर्ध अथवा तीसरे भागके पीठका नियोजन स्थान मान का आश्रय जानकर करने में कोई दोष नहीं है। जहाँ कामदपीठ या कर्णपीठ

पीठ प्रकार-पहेले

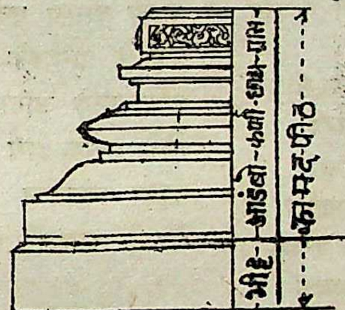


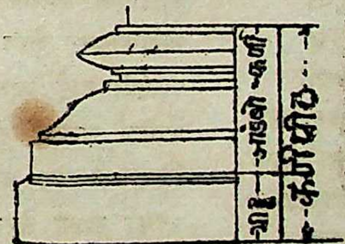
पीठ प्रकार-दुसरे





महापीठ-वृक्षार्णव





कर्णपीठ

सामान्य प्रासादों में होता है सांधार प्रासादों के महापीठ होता है। और निरंधार प्रासादके लिये प्रायः कामद पीठ एवं सामान्य प्रासाद अथवा एक पंक्ति वाले विशेष मंदिर यथा बावन जिनालय सहस्र लिङ्गकी देरियाँ और चोसठ योगिनी की पंक्तिबद्ध देरियाँ के लिये कर्णपीठ अल्पमानका करने में कोई दोष नहीं है। उपरोक्त प्रमाणका द्वारिकाधीशके जगत्मंदिरमें मिलता है।

आये हुए पीठमानके उदयके ५३ भाग करने और निकाला २२ भागका रखना। थरो में नव भागका जाडम्बा, सात भागकी कणी अंतराल; सात भागका छज्जी ग्रासपट्टी, बार भागका गजथर (गजपीठ); दश भागका अश्वथर; और आठ भागका नरथर। इस अनुक्रम से थरोंका निर्माण करना: निर्गम निकाला कर्णिका अग्र भाग से जाडंवा ५ भाग: ग्रास पट्टोसे कर्णिका साडातीन: गजथरसे ग्रासपट्टी साडाचार भाग: अश्वथरसे गजथरका निर्गम चार भाग; नरथर से अश्वथर तीन भाग: खुरा से नरथरका निर्गम दो भाग। कुल निकाला (उठाव) का कुल २१ भागका खर से जाडंबा पट्टी तकका जानना। प्रासाद एवं राजभवन को पीठका ही आधार होता है। बिना पीठका प्रासाद आश्रयहीन जानना। पीठ बिना के पासाद से विनाश होता है। ५७–५८–५९–६०

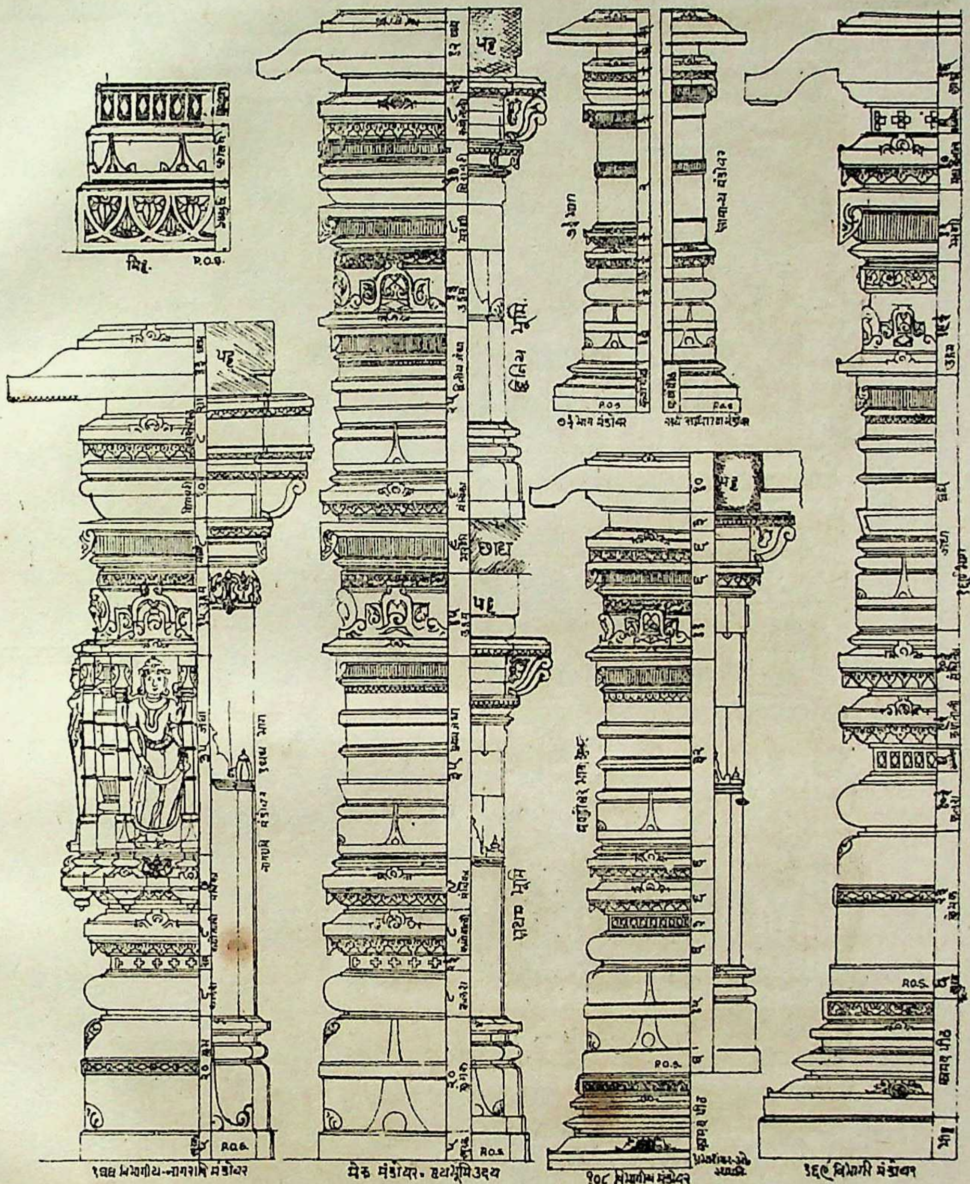
भाग		निकाल
९	जाडम्बा	५
७	कणी अंतराल	३॥
७	छज्जी ग्रासपट्टी	३॥
१२	गजथर	४
१०	अश्वथर	३
८	नरथर	२
५३	नीर्गम	२२

अथ प्रासादोदयमानः—एक हाथसे पांच हाथ (गज) तक के प्रासाद कर्णे जितनी चोडाई हो उतना उसका उदय=उंचाई मानना। छः से तीस हाथ (गज) तक के प्रासादके लिये प्रत्येक गज पर बारह बारह आंगुलकी वृद्धि करते जाना; इकत्तिस से पचास हाथ तक के प्रासाद के लिये प्रत्येक हाथ पर नौ नौ आंगुलकी वृद्धि करते जाना; इस प्रकार उदयमान पीठ के मथाले से छज्जाके मथाले तककी उँचाई जानना[९] ६१

अथमंडोवरः—(१४४ भाग) पीठके उपरसे छज्जो तकके प्रासादके उदयके १४४ भागकरने; उनमे सें पांच भागका खराकाथर: कुंभा बीश भाग; कलशा आठ भाग; अन्तरालः अंधारी ढाई भाग; केवाल आठ भाग; मंचिका नौ भाग; जंधा पेंत्तीस भागः उद्गम=दोढिया पंदरा भागः भरणी आठ भागः शिरावटी दश भागः महाकेवाल आठ भागः अंतराल ढाई भाग उपका छज्जा तेरा भाग उंचाः और दश भाग निर्गम—निकाला रखना; प्रासादके अङ्ग उपाङ्ग (फालना) स्पष्ट दिखाने के लिये

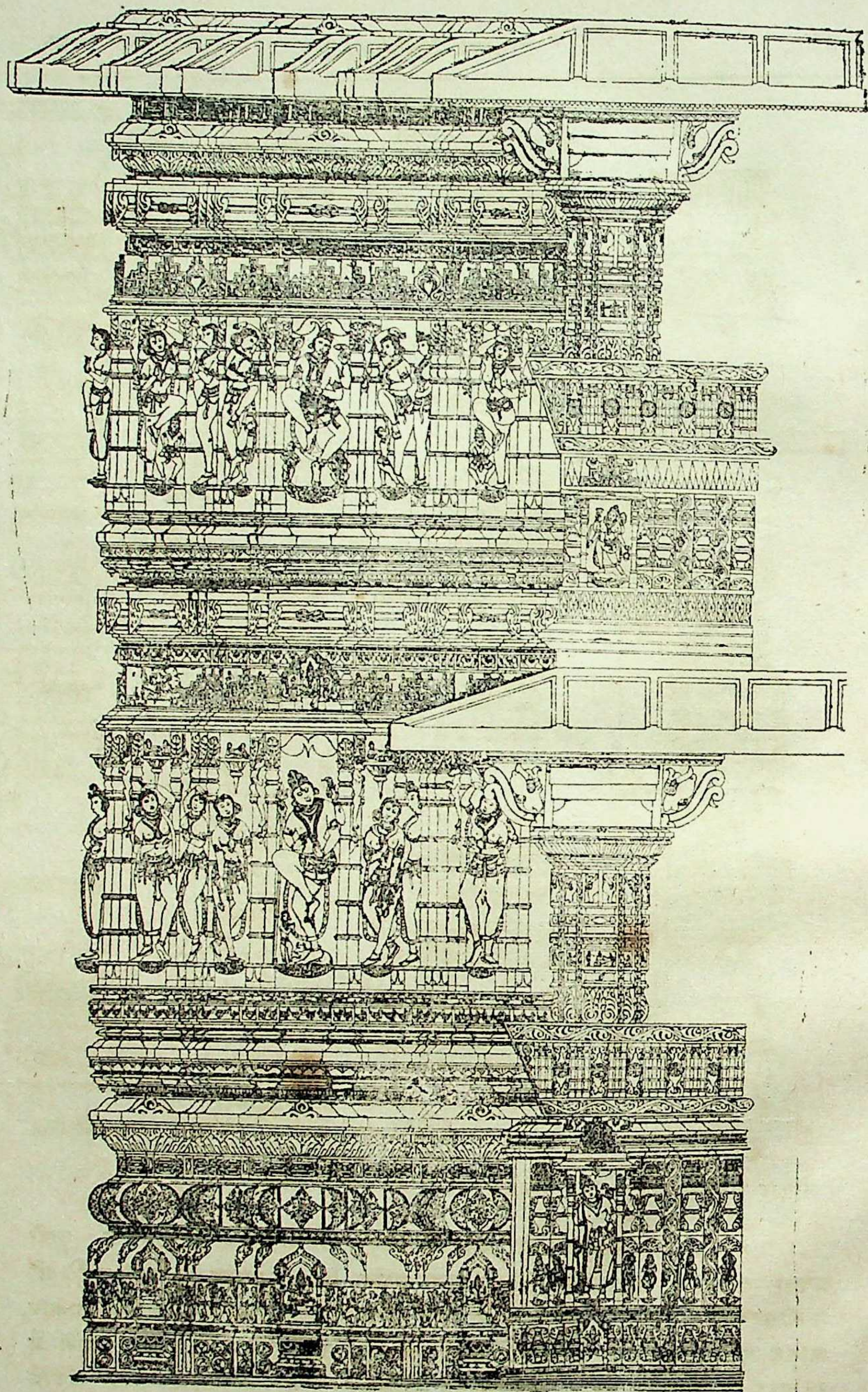
नागर मंडोवर	
५	खरा
२०	कुंभा
८	कलशा
२॥	अंतराल
८	केवाल
९	मंचिका
३५	जंघा
१५	उद्गम
८	भरणी
१०	शिरावटी
८	महाकेवाल
२॥	अंतराल
१३	छाद्य
१४४	

९ क्षीरार्णव ग्रंथमें एक गज से प्रासादके लिये ३३ आंगुल; दो गजके ५५ आंगुल; तीन गजके ७७ आंगुलः चार गजके ६ गज १ आंगुल; पांच गजके पांच गज १ आंगुल; छ गजके ५ गज २१ आंगुल; सात गजके ६ गज १७ आंगुलः आठ गजके प्रासादके लिये ७ गज ९ आंगुलका उदय=उँचाई रखनी।



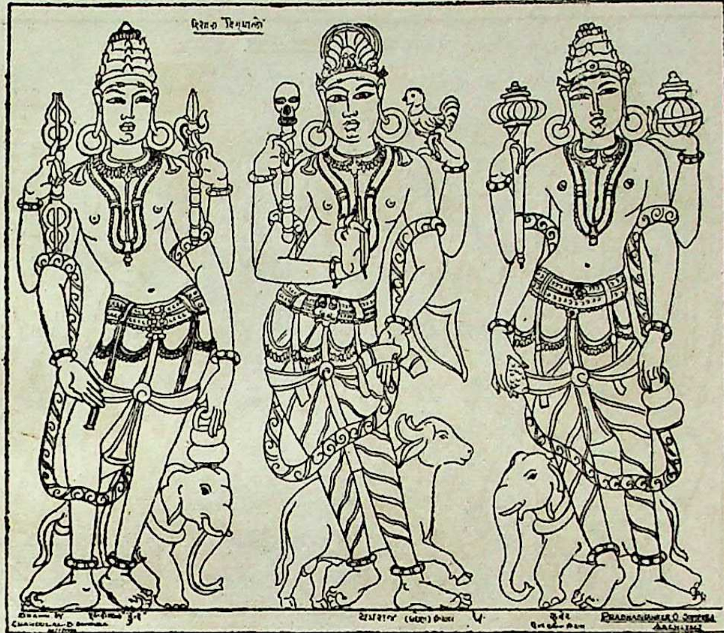
पानीतार पाडना[१०] । (६२ से ६५)

१० एकसो चव्वालीस भागका मंडोवर नागर मंडोवर कहलाते है। उसी प्रकार अन्य १०८ भाग; अथवा १६९ भाग अथवा २७ भाग तथा ७॥ भाग आदि भी मंडोवरकहे गये हैं: साधारण मंडोवरके विषयमें कहा गया है कि जिस प्रकार कामद या कर्णपीठका निर्माण किया गया है; उसी प्रकार मंडोवर बनाने में १ खरा २ कुंभा ३ कलश ४ अंतराल ५ केवाल; ६ उसपर सादी जंघा (विना



सांधार महाप्रासादका दो जंघायुक्त मेरु मंडोवर

दिशाके दिक्पालो



पूर्व-इंद्र दक्षिण-यम उत्तर-कुबेर

मेरु मंडोवर
९ खरा
२० कुंभा
८ कलश
२।। अंतराल
८ केवाल
९ मंचिका
३५ जंघा
१५ उद्गम
८ भरणी
११०।।
८ मंचिका
२५ जंघा
१३ उद्गम
८ भरणी
११ शिरावटी
८ महाकेवाल
२।। अंतराल
१२ छज्जा
८७।।
७ मंचिका
१६ जंघा
७ भरणी
४ शिरावटी
५ पाट
१२ छाद्य
५१
२४९ भाग
महा मंडोवर

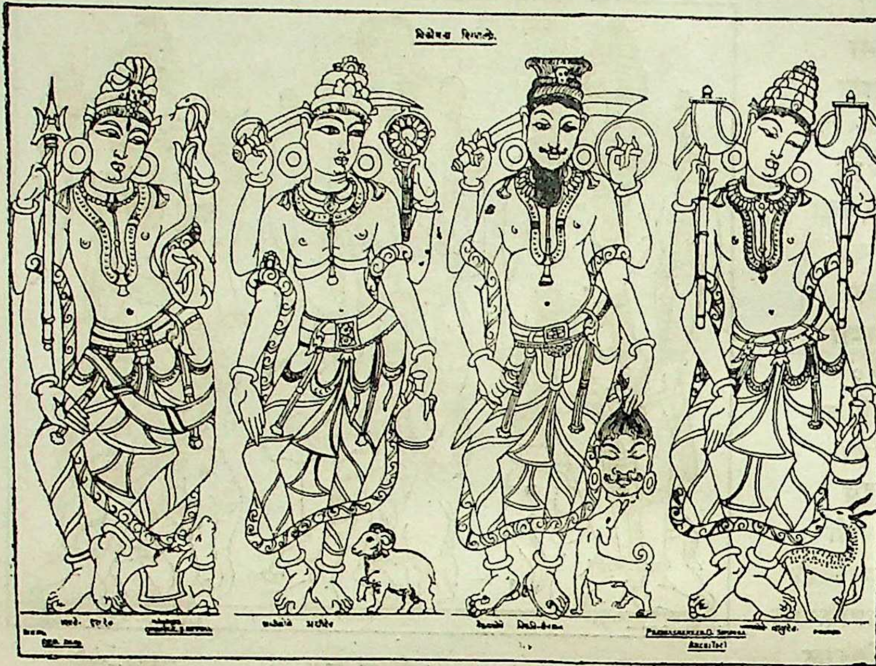
रुपका) ७ भरणीः ८ महाकेवाल ९ अंतराल १० छज्जा इस प्रकार दश थर बनानेका विधान है। मंचिका उद्गम=दोढियाः एवं शिरावटी ये तीन थर सामान्य मंडोवर में नहीं बनाने में दोष नहीं है; कितने मंडोवर में शिरावटीका थर कहा नहीं है।

महा प्रासादः—सांधार प्रासादके लिये दो तीन भूमिका मेरु मंडोवर कहा हैः यहाँ पर १४४ भागका नागरादि मंडोवर कहा है। जिसमें भरणी तक के नव थरें के ११०।। भाग जिनके उपर मंचिका आठ भाग; जंघा पचीस भाग; उद्गम दोढिया तेरा भाग; भरणी आठ शिरावटी अग्यारा भाग; महा केवाल आठ भाग; अंतराल ढाई भाग; और छज्जा छाद्य बारा भाग मिलकर ऊपरकी मंजिल को उक्त



पश्चिम-वरुण

विदिशाके दिग्पालो

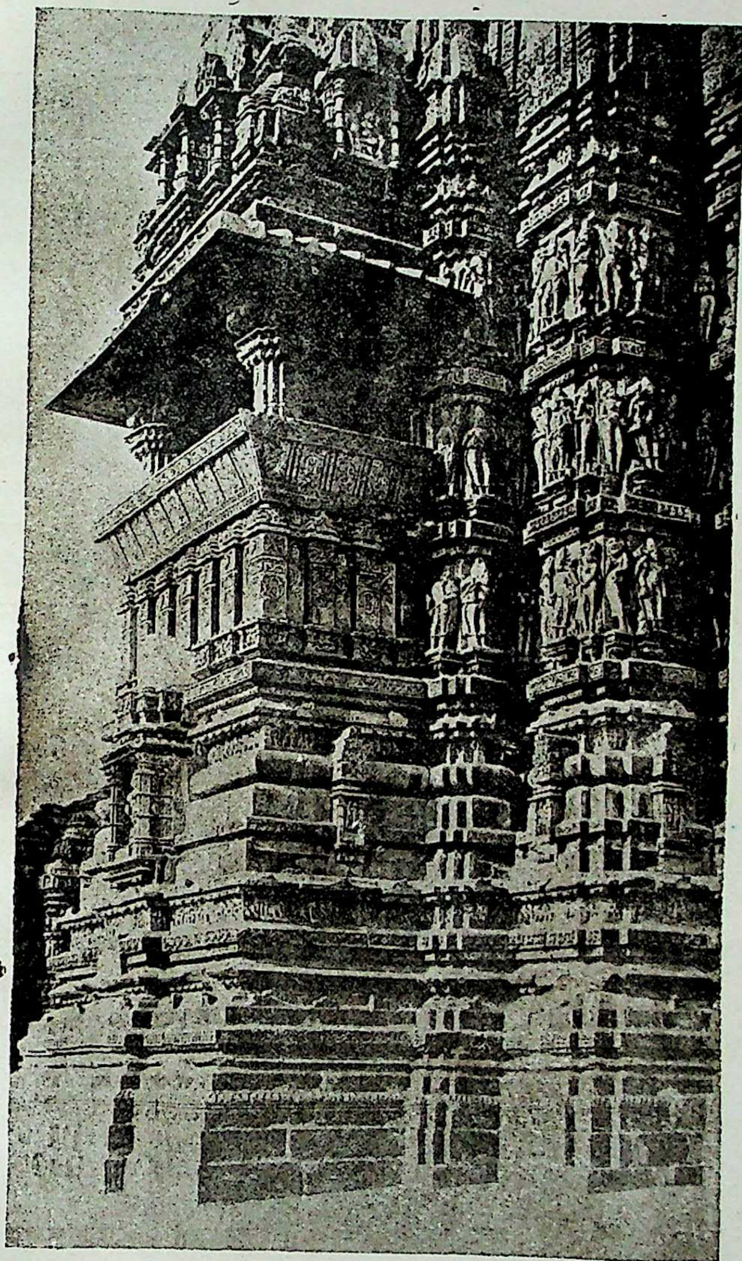


इशानदेव अग्निदेव नैर्ऋत्यदेव वायव्यदेव

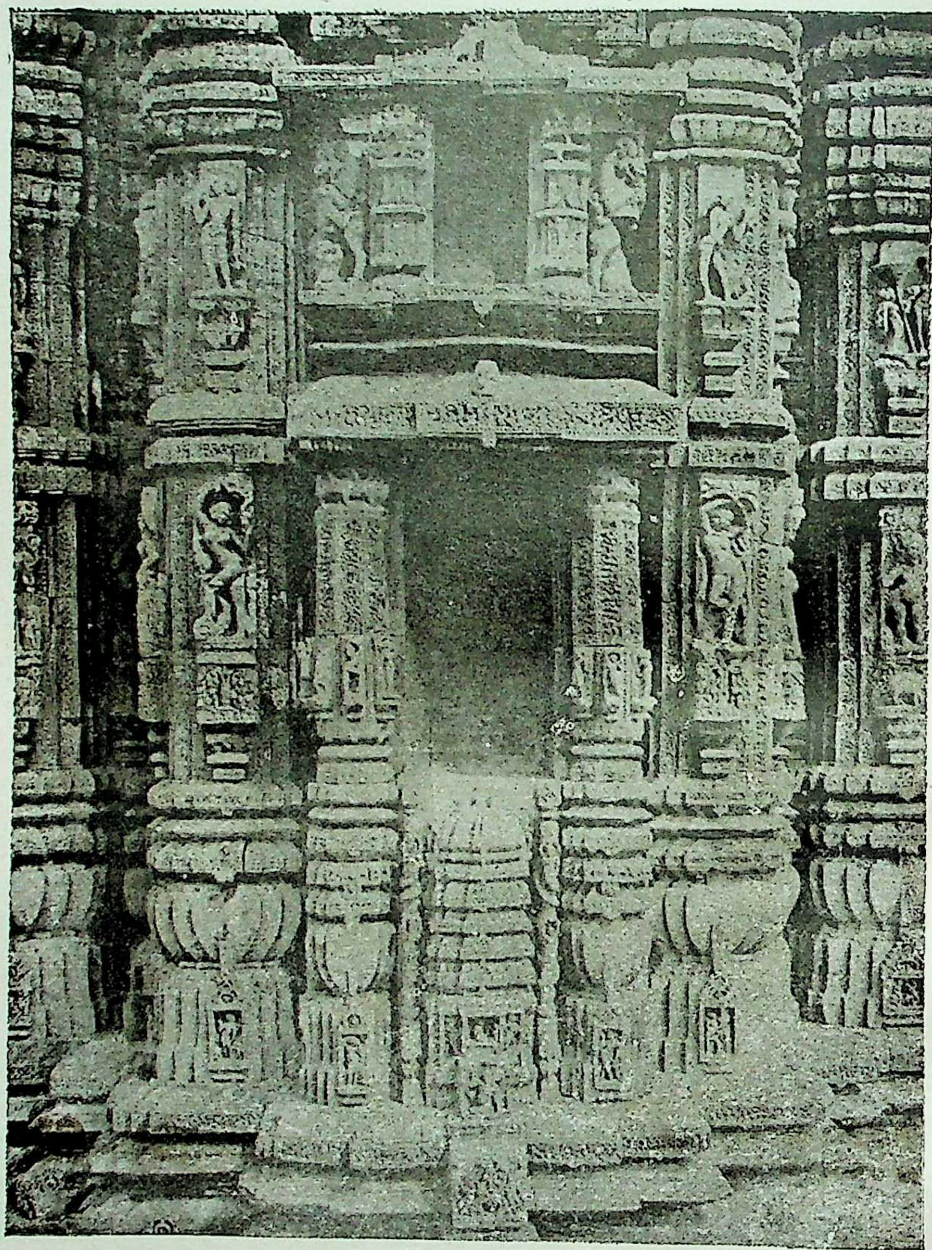
८७॥ भाग हुयेः नीचेके ११०॥ भाग से मिलाकर १९८ भाग हुए। इनके ऊपर ५१ भाग के तीसरे मंजिलका मंडोवर छ थर का. मंचिका सात भाग, जंघा सोल भाग भरणी सात भाग; शिरावटी चार भाग: पट्ट पांच भागः उपरका छज्जा बार भाग मिलके ९१ भाग मिलके १४९ भागका यह 'महा मंडोवर" तीन जंघा तीन मजिलां और दो छज्जा वाला अपराजित ग्रंथमें वर्णित है।

दो जंघा और १ छज्जा वाली दुमंजिलका १९८भागका मेरु मंडोवर कहा गया है। ऐसे मेरु मंडोवर, द्वारिका, आवूका चोमुख एवं सोमनाथ में है। ऐसे मंडोवरके आलेख एवं चित्र देखने से भीतरी स्तंभो आदि भूमिके उदयमान प्रमाण एवं स्तरोंके समसूत्रका ख्याल हो सकता है. बाहरी मंडोवर के स्तर एवं भीतरी स्तंभति भूमिके उदय--थरोंका समन्वय समसूत्रादि सांधार प्रासादों के लिये शिल्पग्रंथों में कहे गये हैं. निरंधार प्रासाद में पृथक् रीतसे कहे गये हैं (श्लोक ६६–६७).

दो जंघा के मडोवर के उद्गम दोढीया के थर पहली मंजिल के पाट समसूत्र में रखनेका कहा है। उस पाट के ऊपर भूमिकी छत भरणीके थरमें आ जानी चाहिये: ऊपरका छज्जा एवं दूसरी भूमि के पाट समसूत्र में रखना। मेरु मंडोवर एवं महा-मंडोवर सांधार प्रासाद के लिये बनानेका यही विधान है। दूसरे निरंधार प्रासाद के लिये (श्लोक ६६–६७ में) सामान्य प्रमाण कहा है।



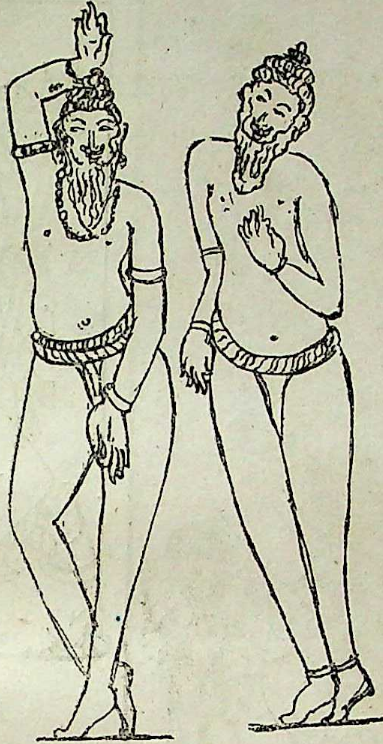
मध्यप्रदेश – खजुराहोका कंद्वर्य महादेवका सांधार प्रासादका
त्रय जंघायुक्त मंडोवर ओर भद्र गवाक्ष



ओरिस्सा (उडीया) प्रदेशका प्रासादका मंडोवर – पीठ.

अथभित्तिमान—

प्रासाद की दीवारके ओसार (मोटाई) पृथक् पृथक् वास्तु द्रव्य के अनुसार प्रमाण कहे हैः प्रासाद के बाहर रेखा कर्ण हो उनके ¼ चतुर्थांश भागकी मोटाई दीवार ईंट के प्रासादके लिये रखनी, पाषाण के प्रासाद के लिये पांचवें या साढे पांच या छट्ठे भाग की दीवाल मोटी रखनीः काष्ठ के प्रसाद सातवें भाग और सांधार प्रसाद के लिये आठवें भागः धातु एवं रत्नके प्रासाद के लिये १० दशवें भाग दीवारकी चौडाई रखनी; यह मूलनासिक के कुंभा से दीवारकी चौडाई का प्रमाण जानना.[११] ६६–६७.



मुनि–तापस





युग्मरुप

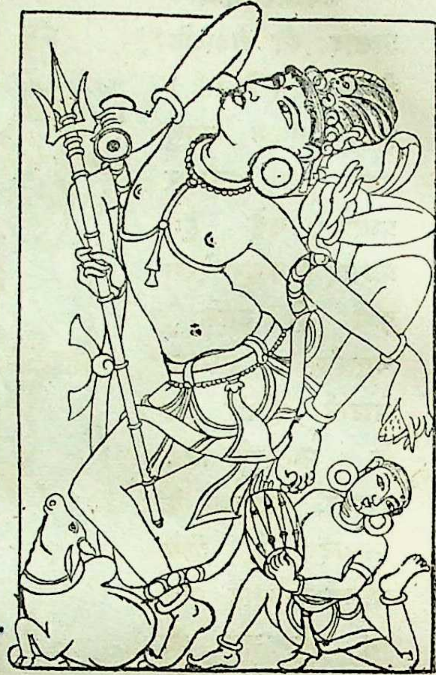
११ वृक्षार्णव—महाग्रंथमें भ्रमवाला सांधार अेवं निरंधार प्रासादको भित्तिमान कहा है।

दशमांशे यदा भित्ति–र्द्वादशांते हि मध्यतः।
त्रिविधं भित्तिमानं च ज्येष्ठमध्यमकन्यसम् ॥ १५१ ॥
मध्यस्तूपे प्रदातव्या भित्तिः स्यात् षोडशाधिका।
पंचमांशे निरंधारे भित्तिः प्रासादशैलजे ॥१५२॥ वृक्षार्ण व. अ० १६७॥

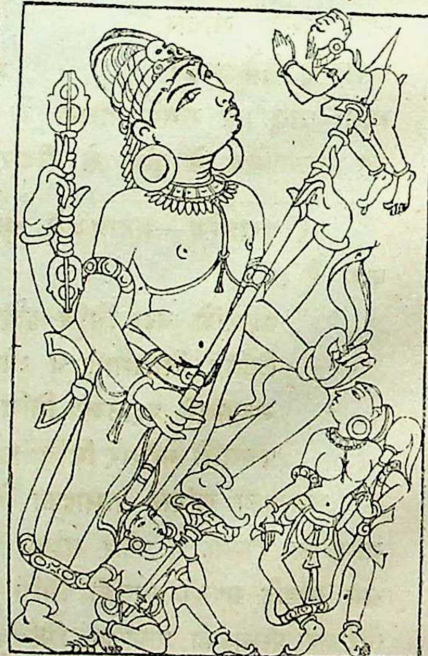
भ्रमवाला सांधार प्रासादका भित्तिमाग १ दशवाँ २ अग्यारहवाँ ३ बारहवाँ भाग का रखना ये ज्येष्ठ मध्यम एवं कनिष्ठ एसे त्रिविध मान भित्तिका जानना. भ्रम छोडके मध्यके स्तूपकी भित्ति सोलहवाँ भाग वृद्धि करके बनानीः विना भ्रमके निरंधार प्रासादकी प्राषाणक भित्तिका मान पांचवे या छट्ठे भाग से रखना.



त्रिपुरान्तक शिव



नाटयेश शिव



अंधकेश्वर

अथ गर्भगृह—गर्भगृह भीतर से !समचोरस अथवा भद्रवाला अथवा लंबचोरस आकृतीका श्रेष्ठ समजना (चोडाईसे उंडाई जास्ती हो ऐसा लंबसोरस गर्भगृह नलाङ्ग कहा जाता है ये दोपकारक है।)[१२]

---

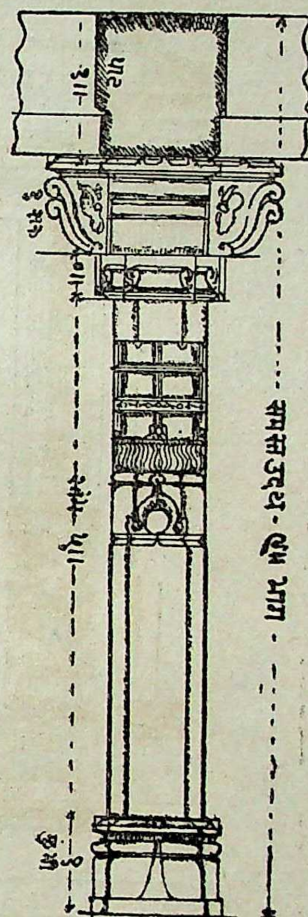
१२ लंब चोरस गर्भगृह श्रेष्ठ माना गया है। परंतु शिल्पकी क्रियाविधिसे अज्ञात अपनेको शिल्पका ज्ञाता मानने वाले उनका अर्थ विना समजे श्रेष्ठ कु नेष्ठ कहते हैं। चोडाईसे उंडाई जास्ती होवे एसा लंब चोरस गर्भगृह

बाहर मंडोवर और स्तंभके छोडके थरका समन्वय निरंधार प्रासादमें: कुंभेके बराबर कुम्भी–स्तंभ एवं उद्गम दोढीया भरणी एवं भरणा; महाकेवाल एवं शिरा और पाट एवं छज्जा का थर एक सूत्रमें रखना; पाटके छज्जाका तल उसके निम्न के तलके बराबर रखना.[१३] ६८–६९.

देवालयके गर्भगृहकी चोडाईसे (सामान्य रीतसे) सवाया अथवा डयोढी उंचाई रखनी। गर्भगृहकी उंचाई पाटके तल तकके आठ भाग करनी, जिनमेंसे एक भाग कुंभी; साढे पांच भागका स्तंभः आधे भागका भरणा. एवं एक भागका शरा–इन आठ भाग पर देढ भागका पाट और– पाटके ऊपर अष्टांश, षोडशांश और गोल थरका निर्माण कर करोटक (कलाडिया गुम्वज) बनाना। ७०–७१

कुंभी	१
स्तंभ	५॥
भरणा	०॥
सरां	१
पाट	१॥
	९॥

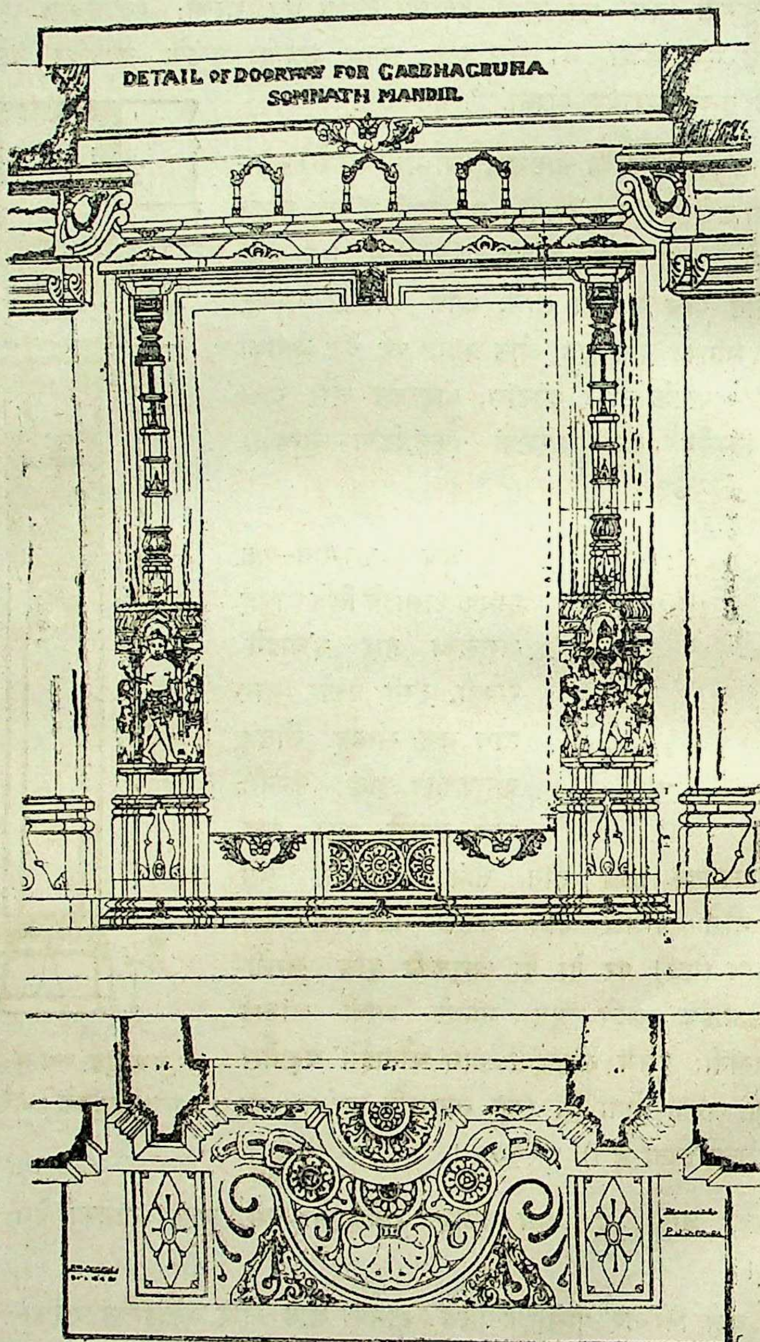
अथ द्वारमान–एक हाथके प्रासादके लिये सोलह अंगुलका द्वार उंचाईमें रखना. इसी प्रकार चार हाथ तक सोलह सोलह अंगुलकी वृद्धि करनी, पांच हाथसे आठ हाथ तकके प्रासादके लिये तीन तीन अंगुलकी वृद्धि करनी, नौसे पचास हाथ तकके प्रासादके लिये प्रत्येक हाथ (गज) पर दो दो अंगुलकी वृद्धि करनी. द्वारकी ऊंचाईके आये हुए मानसे आधी चौडाई द्वारकी रखनी: इसमें सोलहवां भाग चौडाईमें बढ़ानेसे वह शोभा जनक होता है. (यह नागरादि द्वारमान कहा; अन्य जातिके प्रासादोंका द्वारमान अल्प होता है।) ७२–७३।



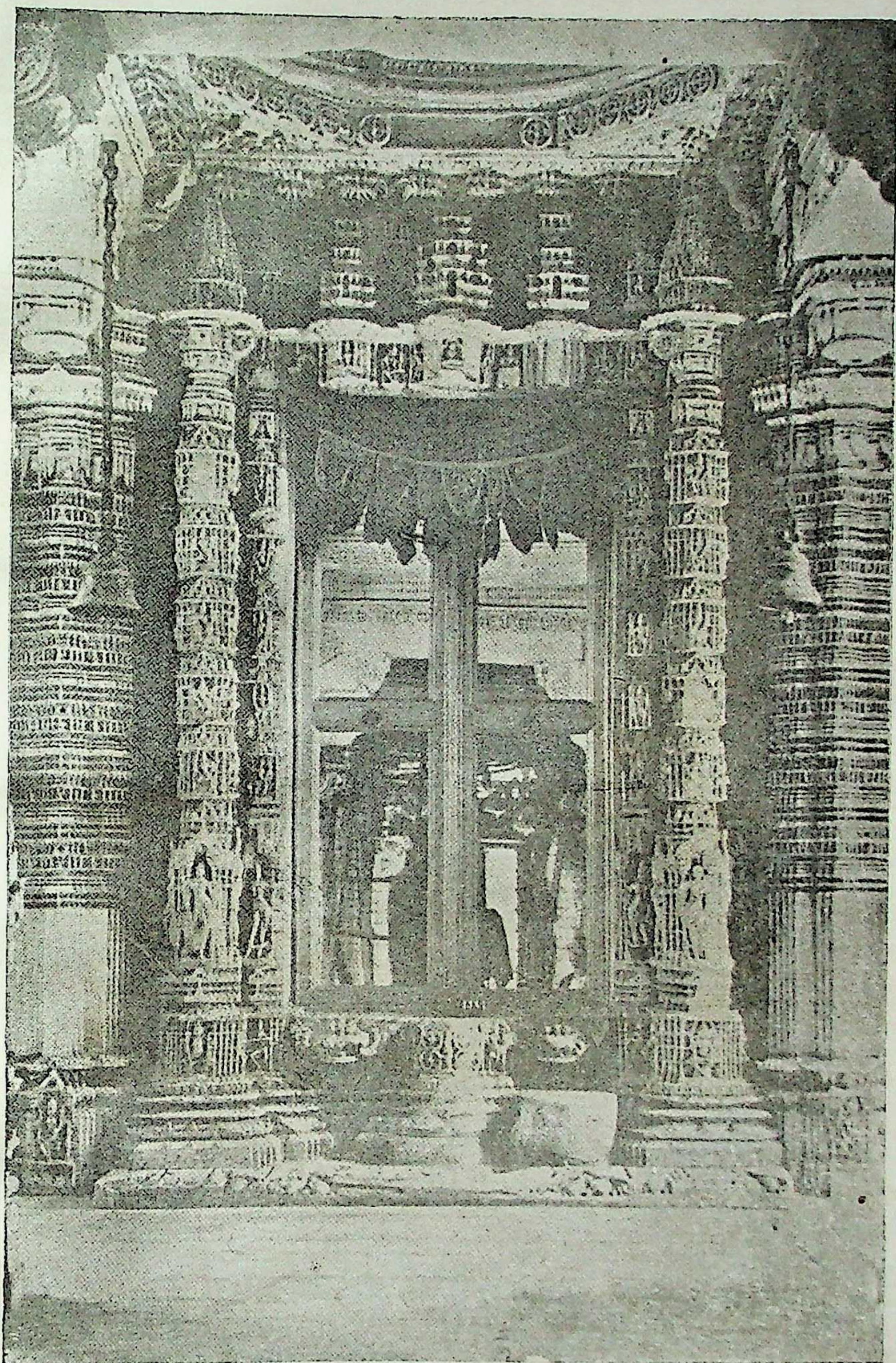
गर्भगृह स्थंभ प्रमाण

नलाङ्ग कहा जाता है: ऐसे नलाङ्ग गर्भगृहसे यम चुल्ली नामका वेध उत्पन्न होता है।

१३ यहां निरंधार प्रासादके लिये। स्तंभका छोड और मंडोवरका थरका समसूत्र कहा है सांधार प्रसाद में कुभीकुंभी उद्गम दोढीया एवं पाट समसूत्र रखनेको कहा है।



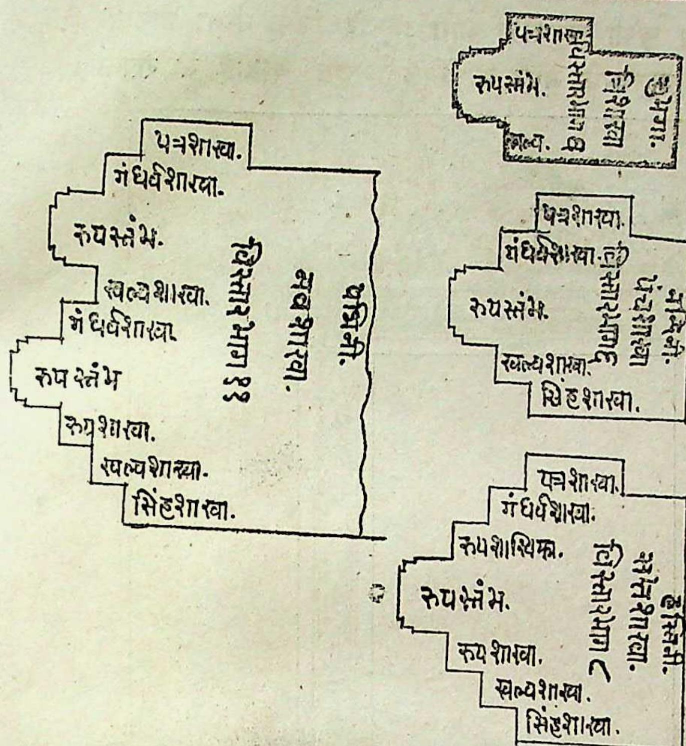
सप्तशाखा द्वार-तळ अर्धचन्द्र और द्वारदर्शन



समदल रुपस्तंभयुक्त पंचशाखा द्वार– आबु देलवाडा.

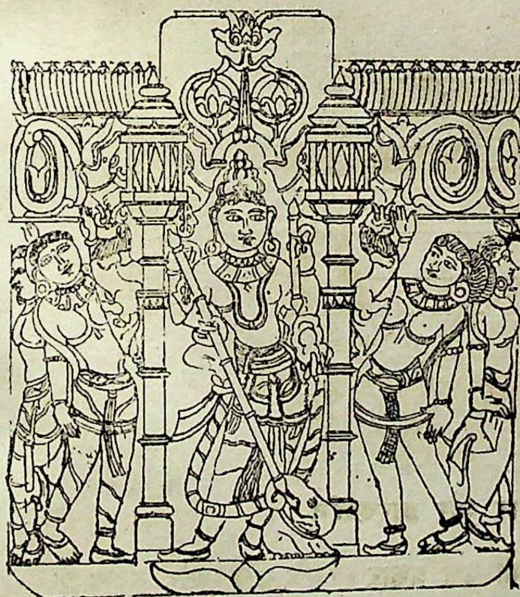


रुपवाली पंचशाखा द्वार- आरासण-कुंभारियाजी.



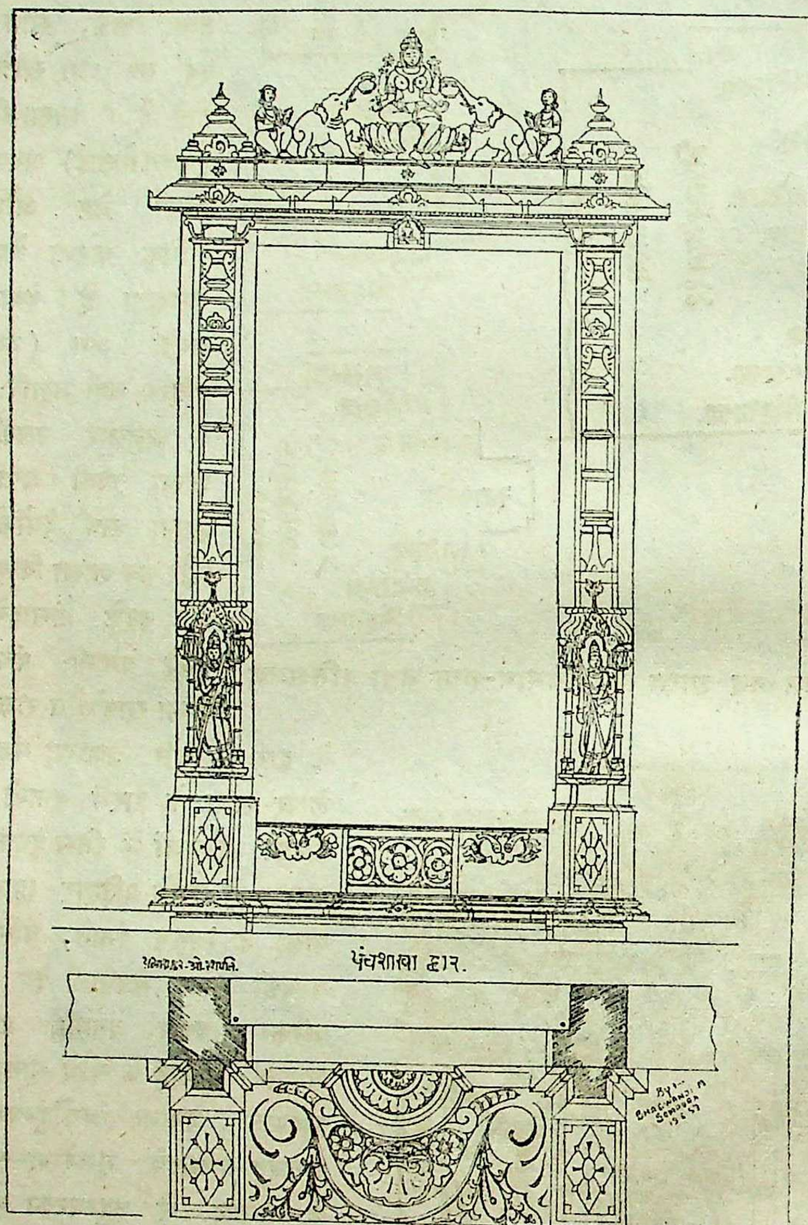
त्रि-पंच-सप्त-नव शाखा तळ विभाग-नाम तथा प्रतिशाखा

द्वार शाखाकी उपशाखाओं के एक, तीन, पांच, सात, एवं नव अंग खांचे होते हैं। शाखाकी पृथुता(मोटाई) अल्प करना नेष्ट और अधिक करना श्रेष्ठ फलदाता है। देवालयके अंग (रथ प्रतिरथ नंदी भद्रादि) के अनुसार उसकी शाखा रखनी। सप्तशाखा सर्व देवोंको और नव शाखा विष्णु या रुद्रके प्रासादके लिये बनानी; पंचशाखा सार्वभौम राजा के द्वार में और त्रिशाखा मंडलेश्वर राजा के द्वारमें बनानी। द्वारकी शाखाओं में जिस देवका प्रासाद हो उसके प्रतिहार (द्वारपाल) के स्वरूप बनाने, बल्कि मध्यकी शाखा रूपवाली देव के परिकर स्वरूप बनानी, द्वार शाखाकी ऊंचाई के चौथे भागका द्वारपाल बनाना अर्थोंदुम्बर-अर्धचंद्र-प्रासादके मूलरेखा-सूत्र के प्रमाण से उदुम्बरका सूत्र रखना और कुम्भीकी उंचाई के बराबर समसूत्र में उदुम्बर (उंबरा) रखना या कुंभीके अर्ध,



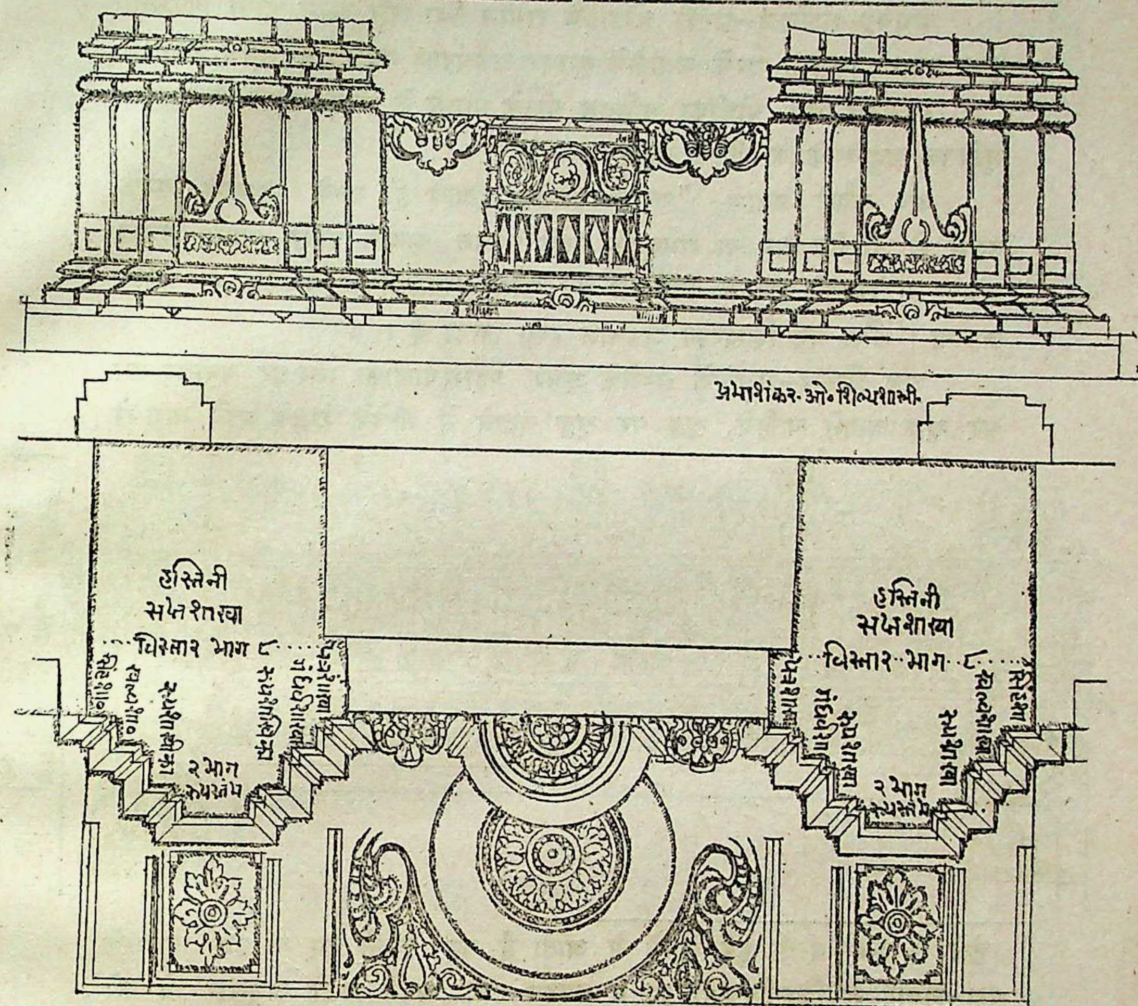
द्वारशाखाके ठेका-प्रतिहारी-चामर छत्रधारी

या कुंभी के तृतीयांशहीन या कुंभी चतुर्थांश भाग उदुम्बर निम्न नीचा बिठाना[१४] द्वारविस्तारके तीसरे भागसे उदुम्बरके मध्य का गोल माणा चोडाई में रखना।



द्वारतळ-शंखोद्वार और द्वारदर्शन

१४ मंडोवरके कुम्भे के बराबर कुम्भी–इस प्रकार स्तंभके छोड और मंडोवरके थरोंका समन्वय कहा गया है। इसी प्रकार उदुम्बरको "अर्ध भागे त्रिभागे वा पाद



सप्तशाखातल स्वरुप (तलकडा)–शंखोद्धार अने उदुम्बरना तल अने दर्शन

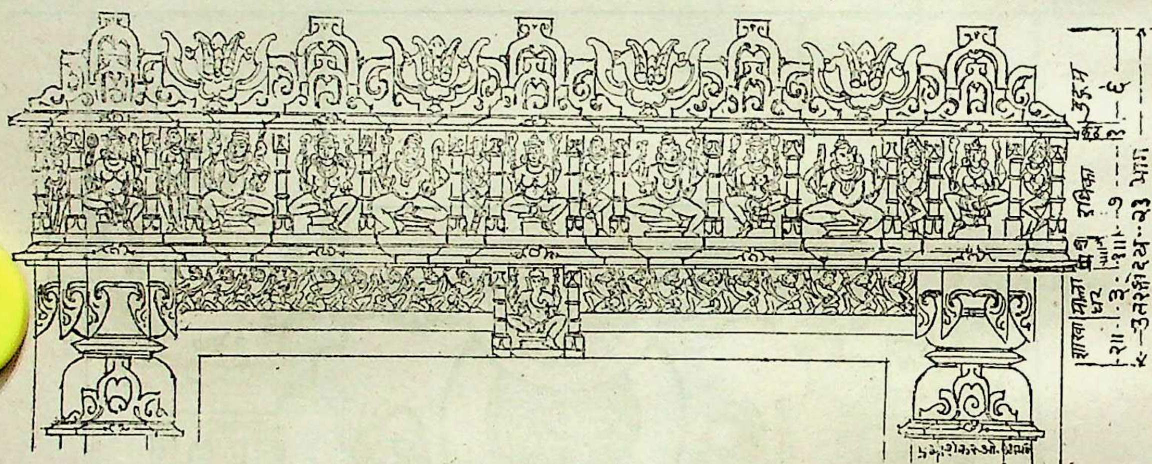
हीनोप्युदुम्बरम्" के प्रमाण से कुंभी के आधे, तीसरे. अथवा चोथाई भाग तक उंबरा नीचा करना जमाना इसी समय तलकडा एवं कुम्भी को कायम रखकर ही केवल उदुम्बर नीचा जमाने का विधान है। शिल्पी भाईओं में से कितनोंही का मत ऐसा है कि उदुम्बर जमाने (निचा) के साथ साथ ही तलकडा और कुम्भी को भी नीचे उतारनी चाहियेः इससे स्तम्भकी उंचाई बढ जाती है, क्षीरार्णव में इसी प्रसंग में "कुम्भीस्तम्भौ च पूर्व-वत" अर्थात् कुंभी और स्तम्भको पूर्ववत कहे गये विधानके अनुसार उसी प्रकार जैसे हैं वैसे ही रहने देनाः इस प्रकार कहा गया है यदि तलकडे के साथ कुंभीभी निम्नरखे तो मंडोवरके कुंभा की बराबर कुंभी का समसूत्र नहीं रहता है; क्षीरार्णव में कुंभी नीचे उतारने का विधान नहीं है। फिर भी कितने ही प्राचीन मंदिरोंमें

अर्धचंद्र–शंखोद्वार–द्वारकी चौडाईके समान लंबा और उससे आधा निकलता हुआ बनाना खुराका थरके मथालेके बराबर अर्धचंद्रका मथाला समसूत्रमें रखना।

रङ्गमंडप ओर चोकींका भूमितल पीठके मथाले के समान रखना (गर्भगृहका भूमितल उदुम्बरके कर्णपीठके समसूत्र रखना। ७८

अथ कौली प्रमाण–[१५]प्रासाद जितना रखाये हो उनके दशभाग करके उसमें से दो-तीन-चार या गर्भगृहके पदके समान अथवा पदसे आधा तृतीय अथवा चौथेभागके बराबर निकलती हुई कौली (शलिलान्तर कवली) का प्रमाण जानना। कौल पर शिखरका शुकनाश रखा जाता है। ७९

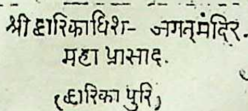
अथ शिखर–प्रासादके छज्जेके ऊपर प्रहार(पाल)का स्तर-थर बनाकर उस पर शृङ्ग चढाने चाहिये, शृङ्ग पर शृङ्ग चढाने में नीचेके शृङ्गके आधे भाग से



कुंभे से कुंभी नीची हुई देखने में आती है यह देखते हुए तो इस प्रकारके वाद–विवाद में शिल्पीबंधुओं को न पडकर जो अपने मतके अनुसार वे करें, उसमें हमें कोई दोष दिखता नहीं है क्योंकि हमारा आशय किसीको अप्रमाणिक कहेनेका नहीं है।

१५ शिखर युक्त प्रासादके लिये कौली परम आवश्यक हेतु शास्त्रकारों ने कहा है. मंडप ओर गर्भगृह के वीचका अंतर कौली–शलिलान्तरके लिये रखा है। इस अंतरको रखनेकी आवश्यकता है. इसलिये शास्त्रों में इसे शलिलान्तर कहा है। शिखरके तीन पांच उपाङ्ग होते हैं. इस लिये आगे कौली छोडनेका विधान है। प्रासाद के उपाङ्गोका निर्गमके हेतुसे बुद्धिमान पूर्वाचार्योंने कौली बनानेका विधान किया है।

कोकिला बनानेका विधान शास्त्रकारोंने कहा है: कोकिला अर्थात् प्रासाद पुत्र रेखा-कर्शा समान कोलीके वामदक्षिण भागमें करना.



गर्भगृह

कोली

चतुष्किका

श्रीक मण्डप

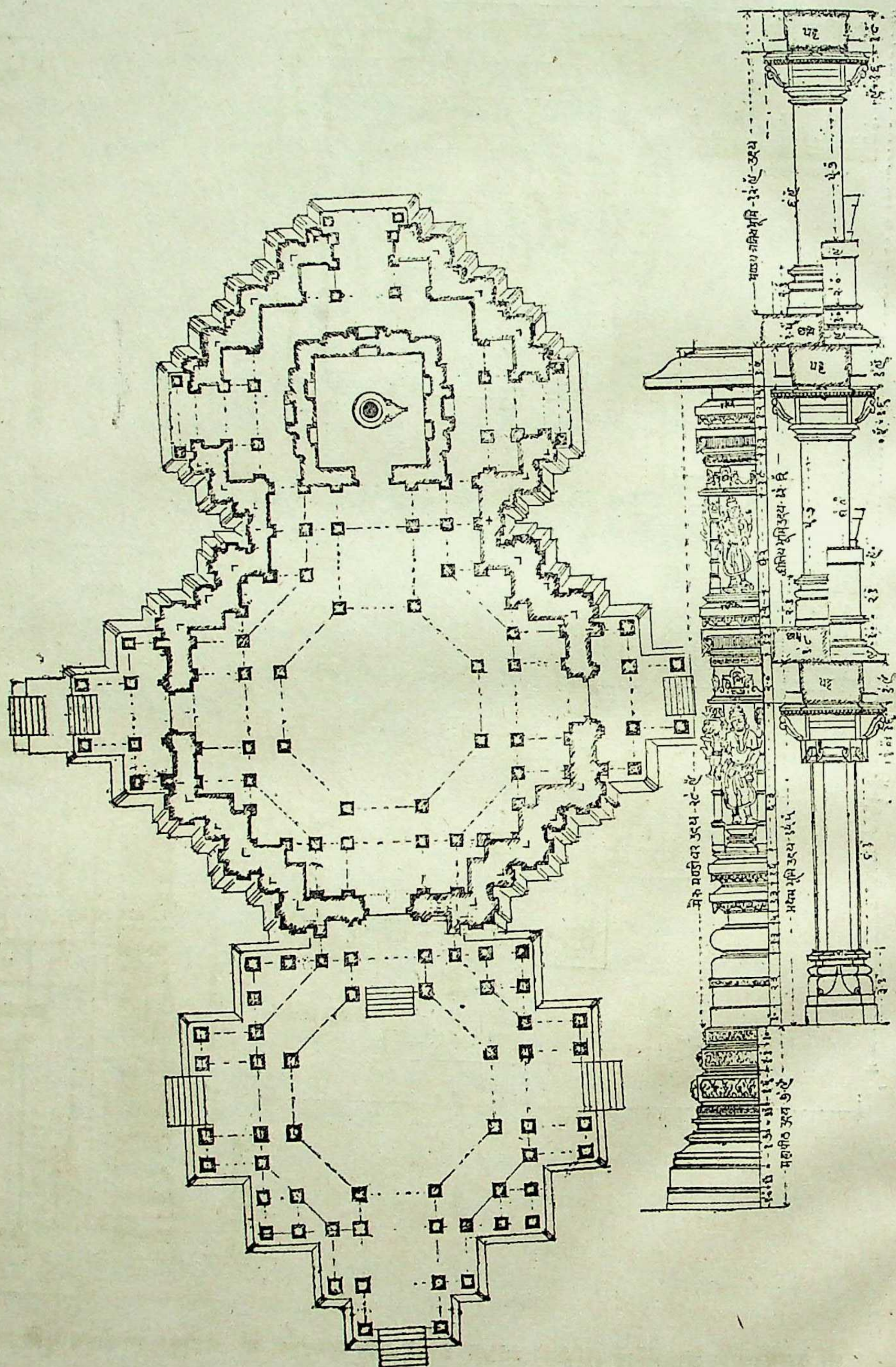
चतुष्किका

प्रवेश चतुष्किका

प्रभाशंकर ओ. स्थपति.

विस्तार ७२-०"

श्री द्वारकाधीश जगत्मंदिर (संभ्रम) सांधार महाप्रासाद तलदर्शन या मंडोवर स्तंभोदय भूमिउदय

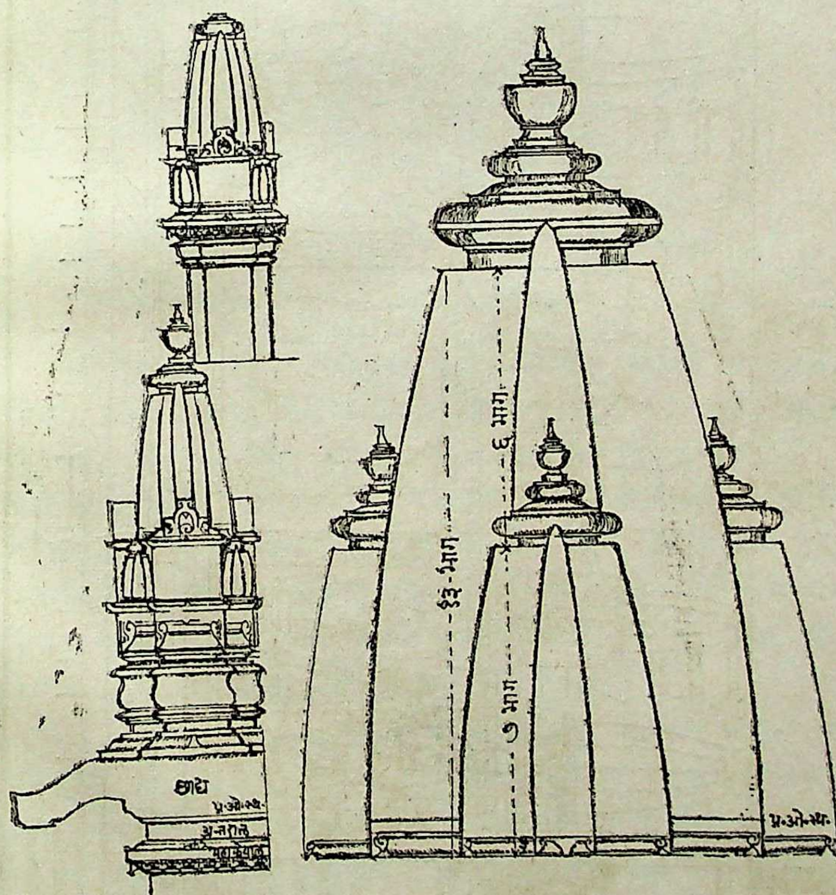


श्री सोमनाथजी कैलास महामेरु प्रासादक्रमयुक्त सांधार प्रासाद तलदर्शन या मंडोवर स्तंभ

ऊपरका श्रृङ्ग पीछे हटता हुआ चढाना; ऊपरके श्रृङ्गके नीचे थोडी जंघा-थाल छज्जी और दोढिया जैसी आकृतीयाँ बनानी फिर उन पर श्रृङ्ग चढाना।

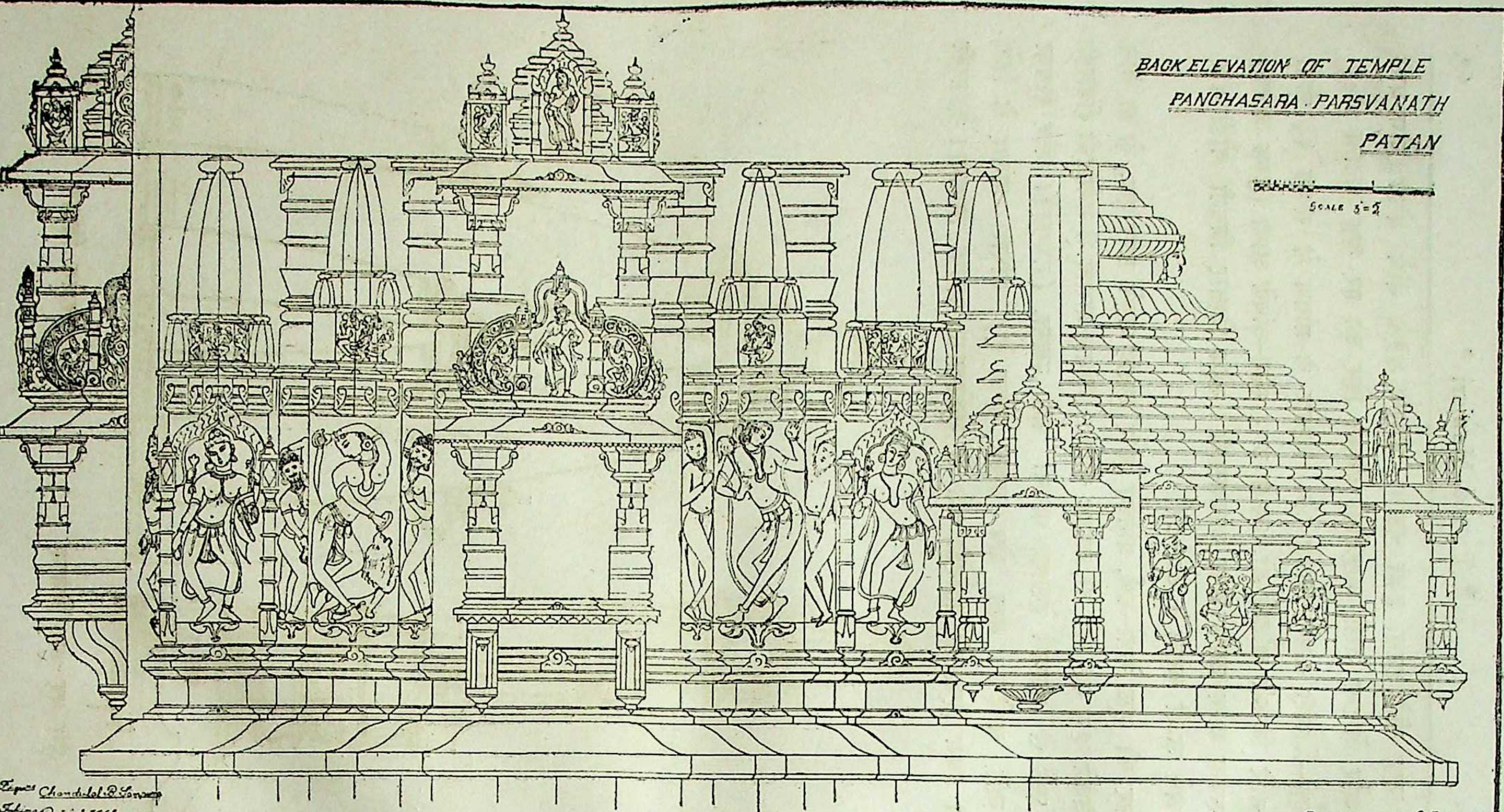
श्रृङ्ग—शिखरी अपने अपने अंग विस्तार के प्रमाण से सवाइ १३/४ ऊँची करनी नीचे जितनी चौडाई हो, उससे ऊपर स्कंध—बांधणे आधा (कुच्छ अधिक) चौडा रखना और उसके ऊपर आमलसारी। स्कंध विस्तार जितनी चौडी और उससे अर्ध ऊंची करनी। ८०–८१

शिखर की मूल रेखा—कर्ण, प्रतिरथ कौर रथादि अङ्गके ऊपर एक, दो या तीन अथवा जितने शृंग कहे गये हों, क्रमशः चढाना; निरंधार प्रासाद में गर्भगृहकी दीवारकी अंदरकी फर्क से मूलकर्ण रेखाका पायचा फर्क रखना, (गर्भगृहकी अंदर पायचा जडना नहीं चाहिये। महा दोष उत्पन्न होता है) सांधार प्रासाद के लिये गर्भगृहकी प्रथम दिवारकी बहारकी फर्क से मूलरेखाका पायचा मिलाना। शिखरकी



शृंग पर शृंग विधान

उरुशृंग विधान



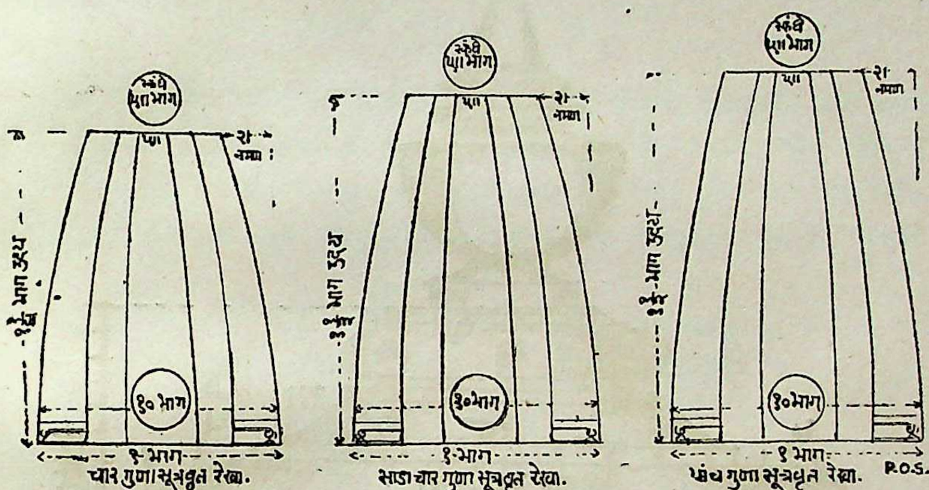
शिखरकी जंघा–कर्म (श्रृंग) या जरुखा

संवरणा

मूलरेखा अर्थात् पायचा गर्भगृहसे थोडा विस्तार चौडा रखना। गर्भगृहसे पायचा संकुचित नहीं करना चाहिये. (क्योंकि संकोचनमें दोष कहा गया है)[१६] ८२, ८३,

शिखर के भद्र पर उरुशृंग एक से नौ तक चढानेको कहा गया है। शिखरमें उपरापर ऊरुशृंग चढानेमें ऊपरके पहले ऊरुशृंगके पायचा से उसके बांधणे स्कंध तककी ऊंचाईके तेरह (१३) भाग करके नीचेका ऊरुशृंग स्कंध तक ७ सात भाग और ऊपरके छ भाग रखने।[१७] ८४

[१८]शिखरकी मूलरेखा-पायचे के विस्तारके दश भाग करके उपर स्कंध



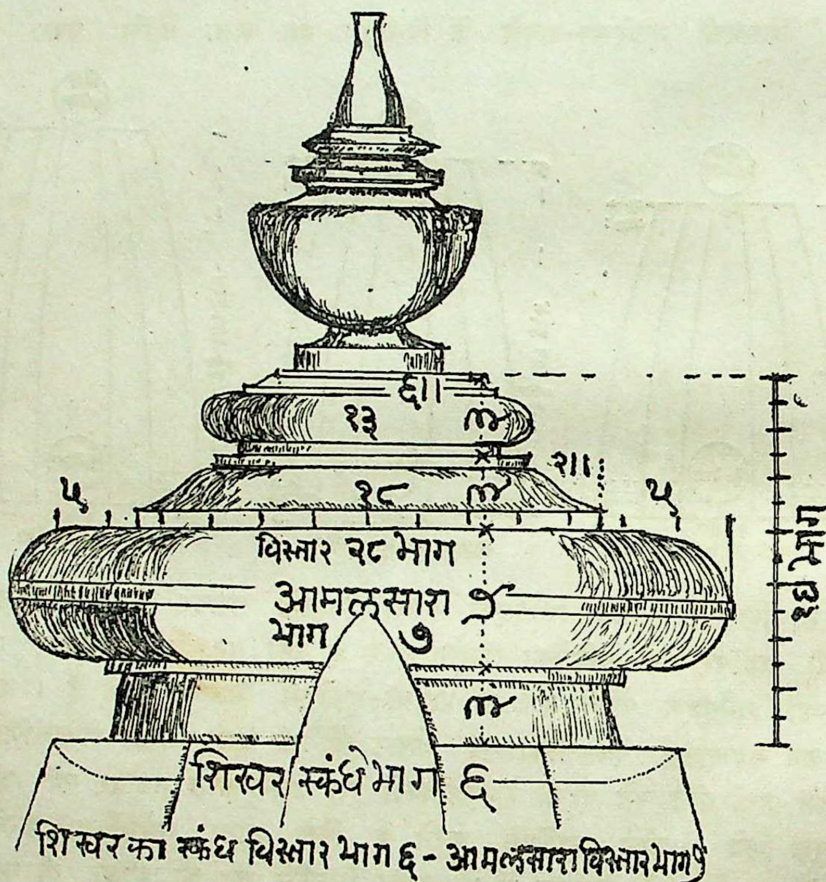
१६ शिखरका पायचा गर्भगृहकी भीतरी दीवालके बराबर मिलाना। कितनेही शिल्पी. जहाँपर छोटे मंदिरोंका निर्माण होता है वहाँ पर, जहाँ ओसार अल्प हो, वहां गर्भगृहके पाटके फर्क से पायचा-मूलरेखा मिलान करते हैं। अपितु जिनालय सहस्रलिङ्ग देवकुलीका एवं चोसठ योगिनी जैसी सीधी शिखरिणियोकी पंक्तिमें जहां छोटे वडे पदकी देवकुलीकाओे हों, उसके पीछे मंडोवर एवं उपरसे शिखरके लिये एकरुप प्रदशिनि करने के लिये आडा गर्भचलित करने के विषयमें वृक्षार्णव जैसे महाग्रंथ में भी कुशल शिल्पीने छुट की आज्ञा दी गई है जिसका कुरूप योग न हो एसी चेतावनीं भी दी है।

१७ उपरे पर उरुश्रृंग चढाने के विभाग हेतु सामान्य नियम कहा है। किंतु नीचे के उपाङ्गो के विस्तार पर उसका विशेष आधार शिखर के सूत्र छोडते समय होता हैं, उस समय ग्रह नियम संभालने के लिये बहुत बिचारनीय प्रश्न बन जाता है। यहां बुद्धिमान शिल्पिको विवेकसे काम लेना पडता है।

१८ शिखरकी मूल रेखाके पायचेका विस्तारका दश भाग करके ऊपर स्कंध

बांधणे (साडापांचसे) छ भाग–सामान्यतया चौडा रखना चाहिये। शिखर मूलरेखा=पायचा के विस्तारसे सवाया सवागुने शिखरका उदय स्कंधे रखना। (पायचा विस्तारसे चारगुना सूत्र सवागुने शिखरका रखकर वृत खीचनेसे अविकसित कमल के समान शिखरकी सुंदर आकृति बन जाती है) ८५

रेखाके उदयमें अष्ट भाग करना एवं स्कंधे (बाधणे) सातभाग करके त्रासी उभी रेखा बनाके चिह्न करना (८६ ८७ अस्पष्ट अपूर्ण)

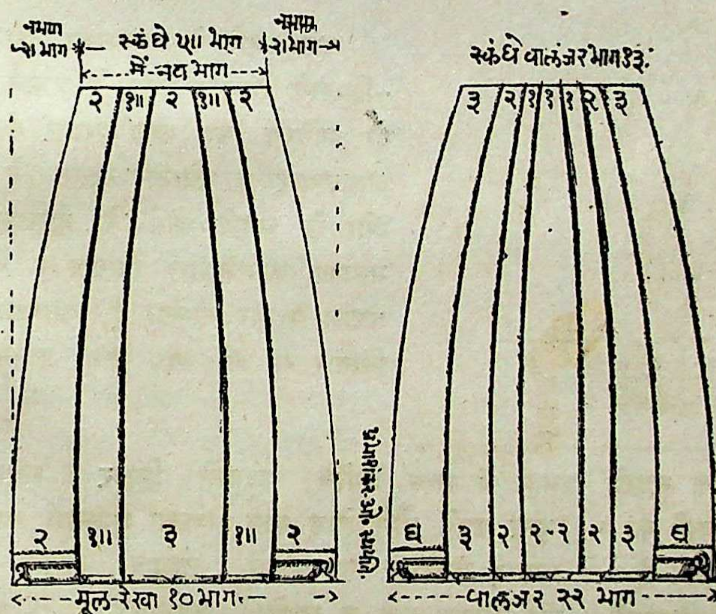


विस्तार पांचसे छ भाग के बीचका प्रमाण रखनेका विधान अन्य ग्रंथोमें वर्णित हैः किंतु साढे पांच भाग रखने से अति सुंदर दिखाता हे सवागुने उदयवाले शिखरके लिये चारगुना सूत्र रखकर वृत खींचनेसे रेखा होती है डयोढे शिखरके लिये पांच गुना वृत सूत्र खींचना। और १$\frac{1}{3}$ ऊदके शिखर जितना मूलरेखा–पायचे हो उससे साडा चार गुना घृत सूत्र खींचकर कला रेखा होती है। इससे शिखरकी नमन रेखा वहुत सुन्दर लगती है और स्कंध के चिह्न बराबर मिलते रहते है।

अथ आमलसारा प्रमाण[१९] शिखरके स्कंध बांधणे छभाग करके आमलसारा सात भाग विस्तार करना चाहिए. किन्तु कलश सहित आमलसारेकी ऊंचाई सात भाग तककी होनी चाहिये। आमलसारेका गला १ भाग। मध्यका गोला आमलक डेढ भाग, चंद्रस सहित जांजरी (गोला) डेढ भाग, इस प्रकार चार भागका आमलसारे का उदय जानना शेष तीन भाग ऊँचा कलश (इंडा) और कलशका विस्तार दो भाग रखना. ८८ ८९

१	ग्रीव
१॥	आमला
०॥।	चंद्रस
०॥।	जांजरी
४	चार भाग उदय
३	कलश
७	

मूल शिखरके उपाङ्ग वालंजर–मूल शिखर के पायचा विस्तारका दश भाग करना उसमेंसे दोदो भागकी दो रेखा–या कर्ण, डेढ डेढ भागके दो प्रतिरथ, और सारा भद्र ३ तीन भागका। इस प्रकार कुल दश भाग हुए और उपर स्कंध बांधणा विस्तारका नौ भाग करना जिसमें दो दो भागकी दो रेखाये, डेढ डेढ भागके



१९ दीपार्णव ग्रंथमें आमलसारेका विस्तार विभाग २८ और ऊदय भाग १४ चौदा कहा हैं। गला तीन भाग अेडक भाग पांच, चंद्रस भाग ३ तीन और ऊपरकी आमलसारी गोला भाग तीन मीलके चौंदह भाग उदय। अब विस्तार भाग कहेते हैं, ऊपरका गोला आमलसारी विस्तार १३ तेरा भाग, चंद्रस विस्तार १८ अठारा और आमलसारो कुल विस्तार २८ अठ्ठावीश भाग कहा है।

दो प्रतिरथ, और शेष दो भागका। इस प्रकार कुल नौ भाग हुए। इसी प्रकार मूल शिखरका उपाङ्ग वालंजर समजना। ९० ९१

अथ शुकनाश–प्रमाण प्रासाद के छज्जे मथाले से शिखरके स्कंध बांधणे तक की उंचाई के २१ भाग करना जिसमेंसे नौ, दश, ग्यारा, बारा, और तेराह भाग उदय इस प्रकार पंचविध शुकनाशके प्रमाण जाने[२०]। ९२



प्रासाद सुवर्ण पुरुष

शिखरके शृंग उरुश्रृंग और प्रत्यङ्ग (चोथगराशिया) ये सब अंडककी गिनती संख्यामें ली जाती है, शेष तवङ्ग, तिलक, कर्ण या दुसरे उपाङ्गो पर चढायें जावें तो वे प्रासाद के भूषणरुप जानने। ९२

आमलसारे के विस्तारका दूसरा मान –शिखरके स्कंधका उपाङ्ग में आमना-सामना दो प्रतिरथ का कोण बराबर गोल वृत आमलसारे का विस्तार रखना (ये प्रमाण ओर छे भागके स्कंध के हिसाबसे सात भागका आमलसारा विस्तार। ये दोनों प्रभाण बराबर मीलता है। आमलसारे का विस्तार सें अर्ध उदय मान जानना। ९३

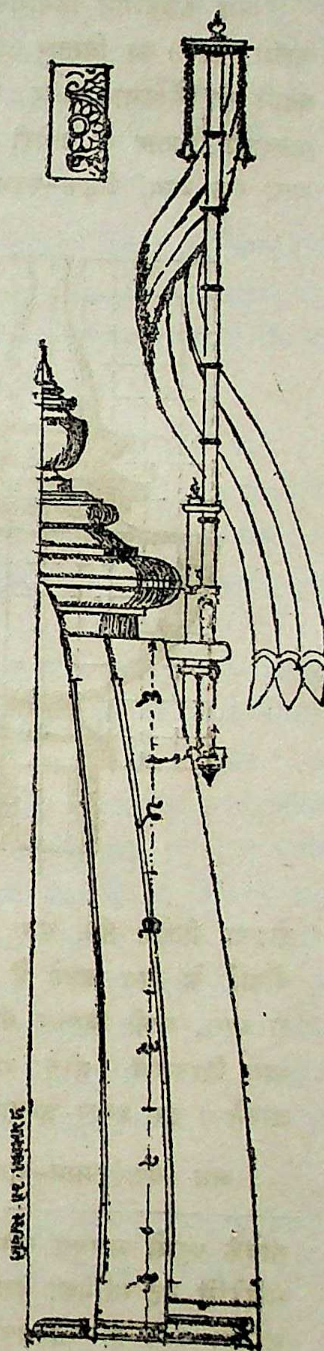
---

२० शुक नाशके प्रमाण में अन्य ग्रंथोंमें छज्जासे शिखर के स्कंध बांधणा तक की उंचाई का २१ भाग करके नौसे तेरह भाग तकका शुकनाश का स्थान रखने को कहा है। ये प्रासाद मंजरीकी एक प्रतिमें "छाद्यातः स्कंधांतं मेकद्विशा भक्तें दिक शिवांशकै। सूर्य विश्वांश शक्रे च छाद्योर्ध्वे शुकनाशके ॥ ८९

इस पाठमें परिवर्तन हो गया हो या कुछभी हो, परंतु २१ भागमें १०, ११, १२, १३, १४, भागे शुकनाशका स्थान कहा है. सूत्र० नाथुजीको यह पाठ कहां से मिला हो? शुकनासके बराबर मंडपका गुम्बज–या संवरणाकी घंटा आमलसारा समसूत्र में रखने यद्यपि मंडपका आमलसारा नीचे भी रखा जा सकता है।

सुवर्णका प्रासाद पुरुष[२१]–आमलसारेके उदर भाग में घृतपात्रके साथ सुवर्ण के प्रासाद पुरुषकी मूर्ति चांदीके ढोलिये पर सुलाकर पधराना ९४

ध्वजाधार स्थान[२२]–प्रासादके शिखरके पीठेके भागमें दाहिनी ओर के पढरेमें "ध्वजाधार"–स्तंभवेध–कलाबा ध्वजादंड खडा रखनेके सहारेके लिये लुम्बी बनाना। ९५



शिखरके ध्वजा दंड

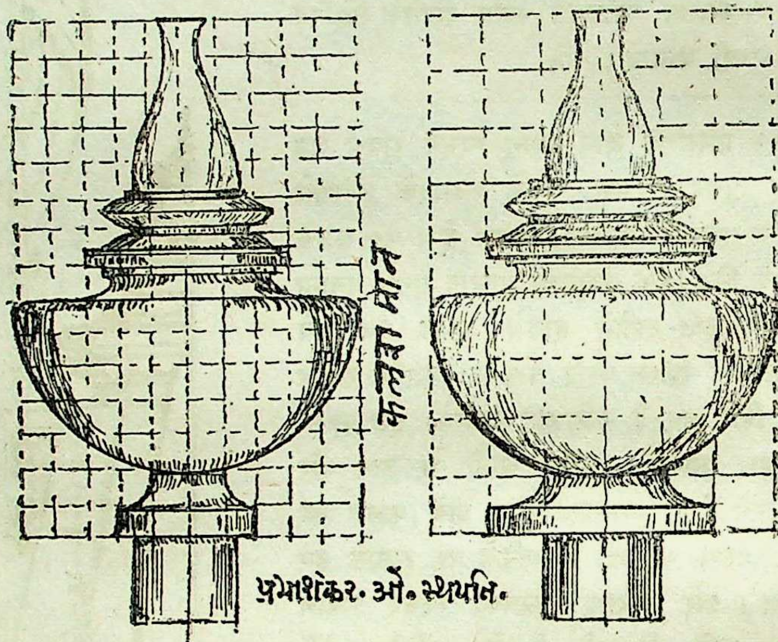
---

२१ प्रासादके जीव स्थान स्वरुप सुवर्ण मय प्रासाद पुरुष। एक गजके प्रासादके प्रमाणसे आधे अंगुलका बनानेका विधान है। ५० गजके प्रासादके लिये २५ अंगुलका प्रासाद पुरुष बनाना उसकी आकृति–दाहिने हाथमें कमल एवं बांये हाथ में तीन शिखा वाली पताका ध्वजदंड सहित धारण किये हुए है (आकृति देखीये) इस सुवर्ण के प्रासाद पुरुषकी आकृति छाती पर हाथ रखे हुए होती है। आमलसारेमें घीके कलश पर चांदीके पलंग पर गद्दी व तकिये पर सुलाते हुए पधराना। इस प्रासाद पुरुषका स्वरुप पाषाण मूर्तिके रुपमें शिखरके पिछले दाहिने पढरेमें रखनेकी प्रथा लगभग १५० वर्षसे प्रचलित हुई है। ध्वजाधार कलाबाके स्थान पर इस आकृतिकी मूर्ति स्थापनेका यह प्रचलन उचित नहीं है।

२२ ध्वजाधार–स्तंभवेध (कलाबा) का स्थान शिखरकी मूल रेखाका उदय (पायचासे स्कंधतक) का चोविश भाग करके नीचेसे २१ इकीश वे भाग पर ध्वजाधार–स्तंभवेध–ध्वजादंड टेकाने का कलाबा शिखरके पीछले भागमें पढरेमें बनाना।

ध्वजादंडकी बाजुमें मजबुत आधार रुप काष्ठकी स्तंभिका आमलसारेकी बराबर उदरमें रखनी। ध्वजादंड के साथ स्तंभिका वस्त्रबंधो

अथ कलशमान विभाग–प्रासाद कर्णे रेखाये विस्तारमें हों उनके आठवें भागका कलश (इंडक) का विस्तार जानना । कहे गये मान में से १६ सोलहवां भाग बढाने से ज्येष्ठमान और १६ सोलहवा भाग घटाने से कनीष्ठमान जानना । कलशका विस्तार से डयोढी ऊंचाई करनी । ऊंचाई के नौ भाग करना जिनमें गला एक भाग, अंडक–पडधा तीन भाग, छज्जी एक भाग, कणी एक भाग, और



डोडला बीजोरु तीन भाग इस प्रकार नौ भाग उदयका जानना । अब कलशकी चोडाई के भाग कहते हैं । डोडला–बीजोरुका अग्र भाग एक, उसके नीचे मूलमें दो भाग, कणी विस्तार तीन भाग, छज्जी विस्तार चार भाग, अंडक पडधा छ भाग विस्तारमें; नीचे गला दो भाग: नीचे पीठ गर्भसे दो (कुल चार) भाग जानने । इस प्रकार कलशके विस्तार के छ भाग जानना । ९६ से ९८

अथ ध्वजदंडमान–प्रासाद जितने कर्ण–रेखाओंसे विस्तार हो इतना ध्वज दंड

तांबेके पट्टासे मजबुत बाँधना। स्तंभिका के उपर कलश बनाना। कितने ही प्राचीन मंदिरोंमें यह स्तंभिका देखने में आइ नही है । परंतु शास्त्रोंका पाठ यही है । लगभग २०० दो सो वर्षो सें आमलसारे में ध्वजादंड स्थापन करते हैं । यह दंड बहुत ऊंचा लगता है । ध्वजादंडका साल (नीचला भाग आमलसारेमें प्रविष्ट होता हैं वे) प्रमाणसे अधिक रखनेकी प्रथा है । वो उचित नहीं है ।

लम्बा करना । उसमें से दशवाँ भाग हीन करने से मध्यमान होता है ओर पांचवां भाग हीन करने से कनिष्ठ ध्वजदंडका जानना । [२३] दंडका पृथुमान (एक गज हस्त) के प्रासादके लिये पौन अंगुलका ध्वजदंड मोढा बनाना । दो से पचास हाथ तकके प्रासादके लिये प्रत्येक हाथ पर आधे आधे अंगुलकी वृद्धि करते जाना । ध्वजदंड गोल (या अष्टांश बनाना)

ध्वजादंडके सम (बेकी २. ४. ६.) कंकणी-ग्रंथी ओर[२४] गाला पर्व विषम (एकी १. ३. ५. करना ध्वजादंड के काष्ठ सीसम, बांस, खेर महुआ, चंदन अथवा अगर तगर का ऐसा बनाना चाहिये। काष्ठमें छिद्र तुट फाट ग्रंथी (गांठ) आदि दोष नहीं किन्तु अच्छा काष्ठका सुशोभित ध्वजदंड बनाना । ९९ से १०१

ध्वजादंडकी उपरकी पट्टिका (पाटली मर्कटी) दंडकी लंबाईसे छट्ठा भाग $\frac{1}{6}$ की लंबी करनी । लंबाइसे अर्ध चौडी बनाना । और चोडाइके तीसरे भाग पृथु=मोटी बनाना चाहिये । पट्टिकाके फिरती चारों ओर कंगूरी बनाना और नीचे अर्ध चंद्राकृतिकी आकृति (शंखोद्धारजेसी) करनी । ध्वजदंडके उपर मस्तके कलश और

---

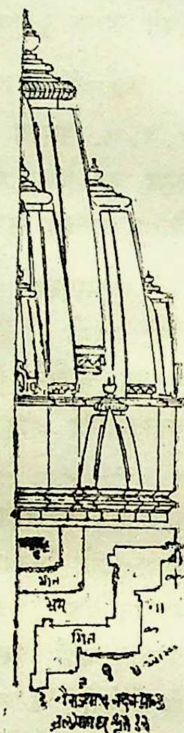
२३ ध्वजदंडके पृथक पृथक मान दीपार्णव ग्रंथमें दिये हुए हैं । (१) प्रासादकी जंघा-कटि विस्तार मानका दंड "विजय" (२) चोकीके पदके दो स्तंभके विस्तारके समान दंड "शक्तिरुप" (३) गर्भगृहके विस्तार के समान दंड "सुप्रभ" (४) प्रासाद कर्ण विस्तार के समान दंडका "जयवह" और शिखरके पायचे-मूलकर्ण के विस्तार के समान दंडका "विश्वरुप" नाम विश्वकर्माने कहा है । यह पंचविध प्रमाण ध्वजदंडके दीर्घ नाम सहित कहा । क्षीरार्णवमें कहा है कि शिखरके कलश से नीचे खुरा तककी उंचाईके तीसरे भागके ध्वजदंड समान लंबा जेष्ठमानका छट्ठा प्रमाण कहा है । सातवा मानप्रमाण पृथक् कहा है । एक हाथसे सात हाथ तक के प्रासादके लिये कोण रेखा विस्तार बराबर ध्वजदंड लंबा करना । आठसे पच्चिश हाथ तक के प्रासाद का ध्वजदंड गर्भगृहके विस्तारमानः और छब्बीशसे पचास हाथके प्रासाद के लिये शिखरके पायचा मूल रेखाके मानसे ध्वजदंड लंबा रखनेका विधान है ।

२४ ध्वजादंडमें सामान्यतया सम कंकणी=ग्रंथी और विषम पर्व-गाला रखनेका विधान है। किन्तु शिव एवं शक्तिके प्रासादके लिये उससे विपरित करनेका विधान "क्षीरार्णव" ग्रंथमें है ।

महायज्ञ याग के उत्सव पर ध्वजा रोपण करनेका शास्त्र विधान है । एक चबुतरे पर ध्वजदंड पंदरा विश हाथका ऊँचा खडा करते हैं ।

पट्टिका (मर्कटि) पर भी कलश बनाना पट्टिका (मर्कटि) के नीचे घंटिकाओ लटकती रखना । १०२

[२५]ध्वजादंडकी लंबाइ समान पताका ध्वजा लंबी रखनी । और पताका–ध्वजाको लंबाई आठवे भाग $\frac{1}{8}$ चौडी पताका चौडी रखनी (यह पताका तीन या पांच शिखाग्र वाली बनाने के लिये विधान है) १०३



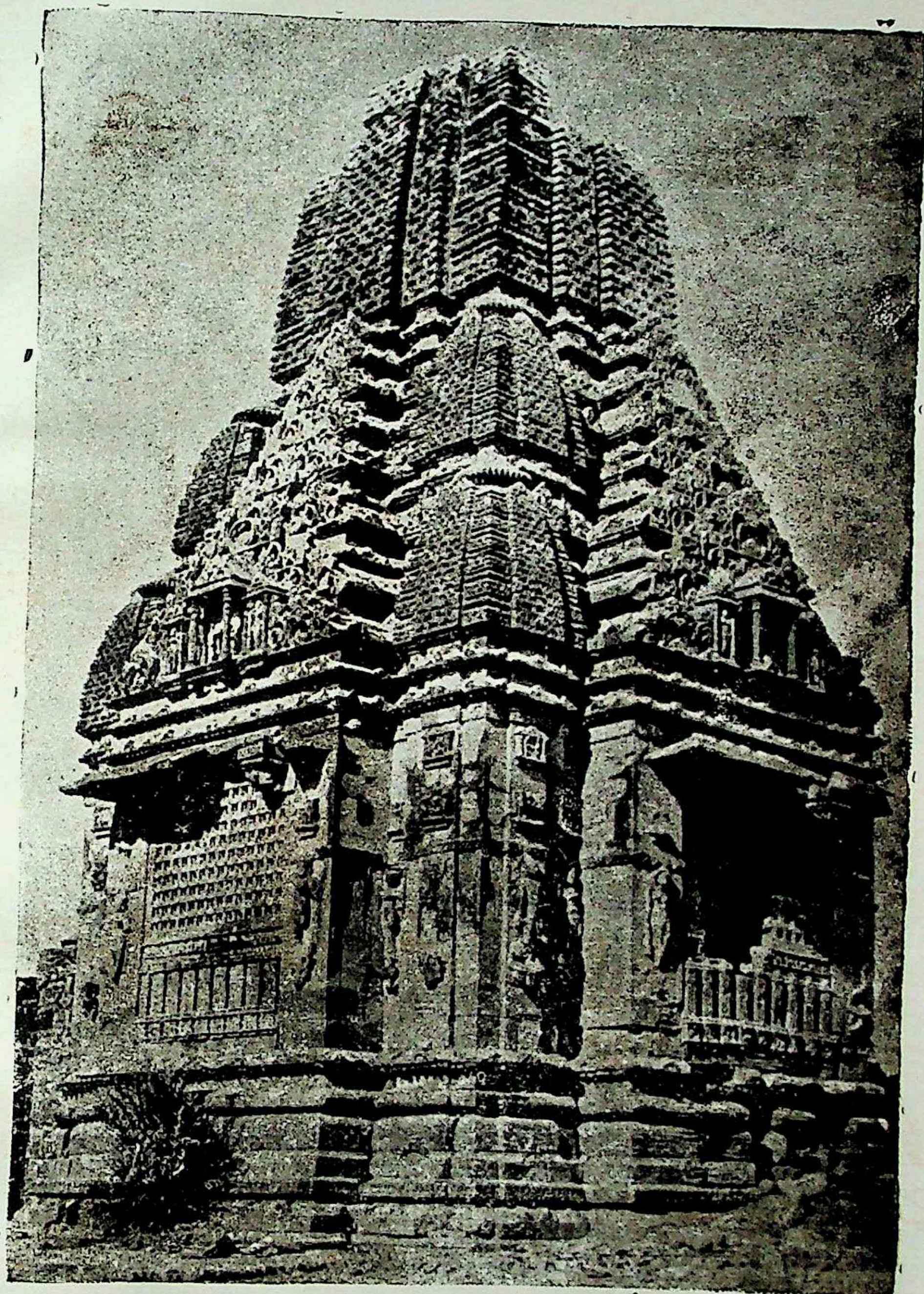
तैयार किया हुआ शिखर अधिक समय तक ध्वजा हीन नहीं दिखना चाहिये । ऐसे ध्वज हीन मंदिरोमें असुर लोग निवास करने की इच्छा करते हैं । (अर्थात् देव प्रतिष्ठा तुरन्त करनी चाहिये) १०४

अथ प्रासादः—वैराज्यादि प्रासाद चोरस चार द्वारवाले और उनके आगे चोकी (चतुष्किका) का निर्माण करना । वैराज्यादि दूसरे प्रासाद के चार भाग करके उनमें से एक एक भागकी रेखा–कर्ण और सारा भद्र दो भागका चौडा और अर्ध भागका भद्रका निर्गम निकाला रखना भद्र मुख भद्र युक्त करना । कर्ण पर एक एक शृङ्ग और भद्र पर दो दो उरुशृङ्ग चढाने से वह "नंदन" नामका वैराज्यादि दूसरा प्रासाद जानना । १०५

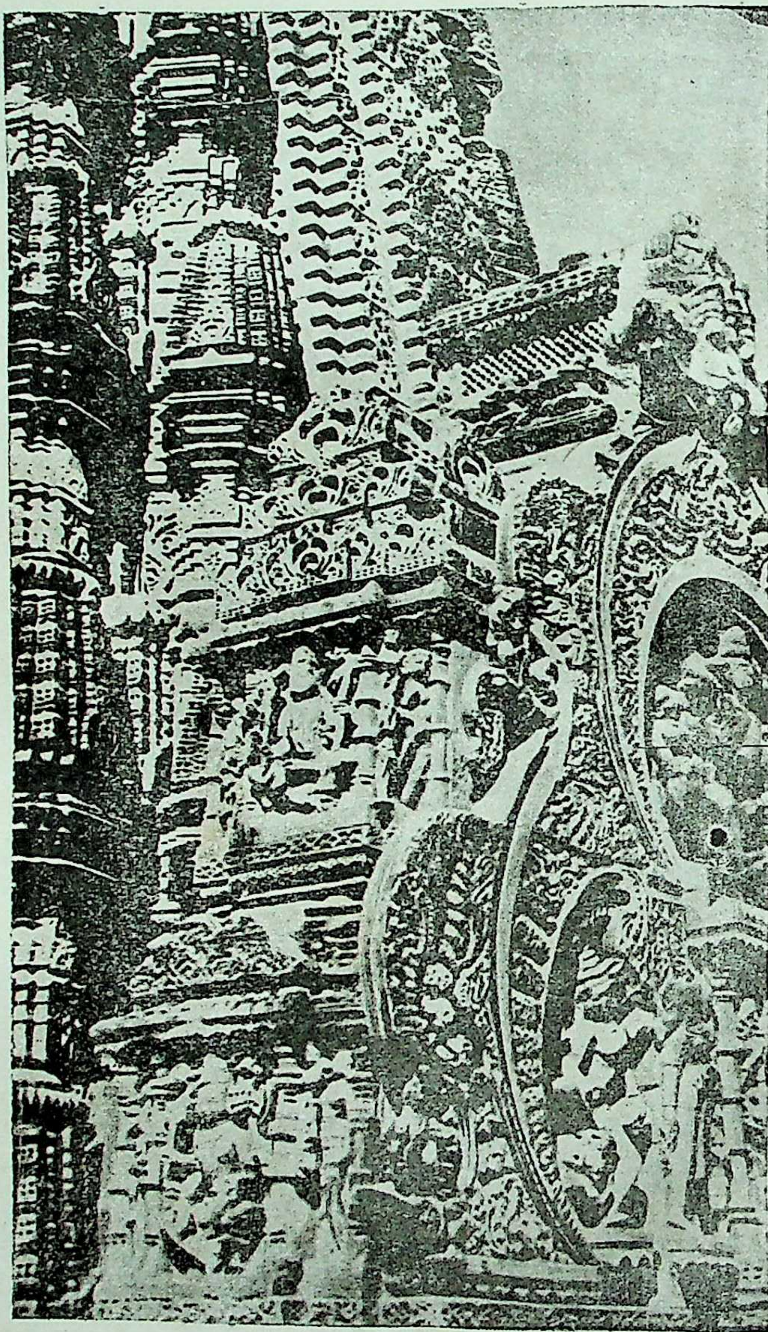
सांधार जातिके भ्रम युक्त प्रासाद में दश, नौ और आठ भागकी भ्रम की भित्ति दीवारकी मोटाईका प्रमाण जानना । १०६

२५ ध्वजा पताका में देवका वाहन अथवा आयुधका चिन्ह करनेकी प्रथा उत्तर भारतमें है । अपितु कलश अथवा ध्वजादंडके उपर भी ऐसे आयुधका चिन्ह करते हैं । शिवका प्रासाद हो तो डमरु । देवीशक्तिके प्रासाद हो तो त्रिशूल । विष्णुके प्रासाद हो तो चक्रका चिन्ह और रामचंद्रजीके प्रासादकी ध्वजा पर हनूमान की आकृति करते हैं ।

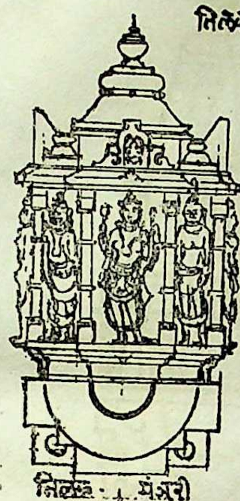
पताका–ध्वजाकी आकृतिके बारेमें क्रियाकांडी ब्राह्मण विवाद करते है कि ध्वजा त्रिकोण होनी चाहिये । इस विषयके बारेमें उन विद्वानोके साथ चर्चा की है । यज्ञादि कर्मका ग्रंथ बताके ब्राह्मण विद्वान प्रमाण बताते हैं, परंतु ये प्रमाण यज्ञ मंडपकी प्रासंगिक ध्वजाके वर्णनमें है । कोइ स्थाइ कार्य या प्रासादके विषयका ध्वजा त्रिकोण करनेका विधान अभी तक मैनें नहीं देखा । अविधिसर के छोटा शिवालय ओर हनुमानजी या अन्य मंदिरोमें कभी त्रिकोण ध्वजा अविधिसरकी

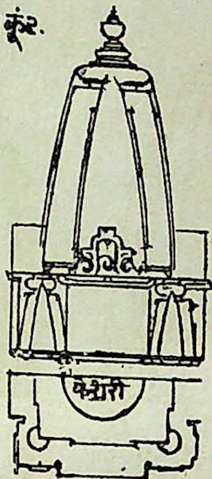


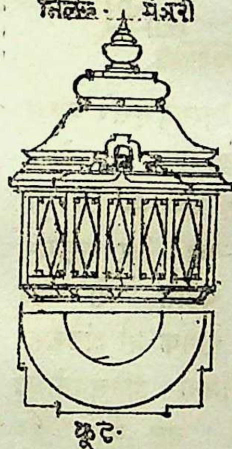
दशवीं – शताब्दीका कूटछाद्य विहिन शिवप्रसाद. केशकोटा (कच्छ)
(आर्च्येलोजी. राजकोटका सौजन्यसे)

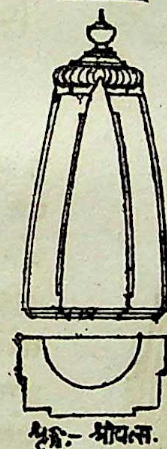


उदयपुर (मालवा) उदयेश्वर प्रासादका कलामय शिखरका सुकनाश.









अथ सांधार केशरादि प्रासाद[२६]

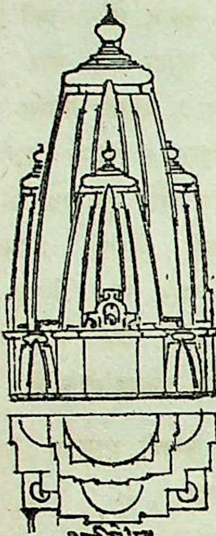
विभक्ति ।।१।। प्रासाद क्षेत्रके आठ भाग करके दो भागकी कर्ण–रेखा और सारा भद्र चार भाग चोडा करना। भद्रका निर्गम आधे भागका रखना। (चारो कर्ण पर एकैक अंडक और मूल एक मिलके) पांच अंडकके केसरी जानना। केसरी से चार चार अंडक की वृद्धि करते हुए एकसो एक अंडक तक का मेरु प्रासाद होता हैं। १०८

इति केसरी प्रासाद १ तुल भाग ८ शृङ्ग ५ ।।

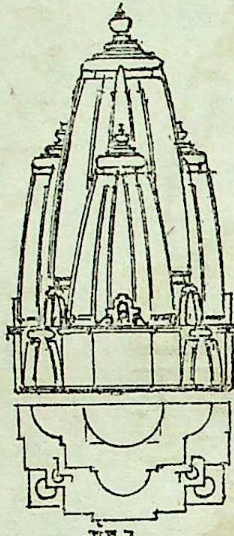
विभक्ति ।।२।। प्रासादके क्षेत्र के दश भाग करके उसमें से दो दो भाग को कर्ण–रेखा, डेढ भागका प्रतिरथ (पढरा) और डेढ भागका आधा भद्र बनाना। रेखा पर एक एक श्री वत्स (शृङ्ग) और भद्र पर एक एक उरुशृङ्ग चढाने से "सर्वतोभद्र" नामक नौ अंडक का प्रासाद दूसरा जानना। १०९

करते ये प्रमाण नही माना जाता। पताका ओर ध्वजाका दोनो का भेद पाडते हैं। जा कोइ विद्वान त्रिकोण ध्वजा के बारे में शास्त्रोक्त प्रमाण प्रासाद विषयमें बतायगा तो हम सहर्ष स्विकार करेंगे।

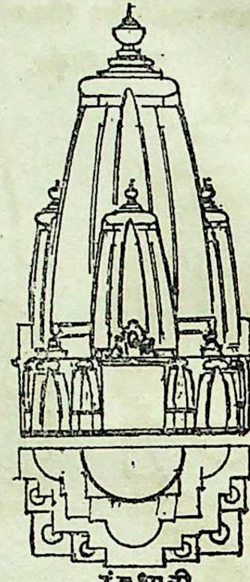
२६ यहां दिये हुए केशरादि पचीश प्रासाद सूत्र संतान अपराजित सूत्र १५९ के अनुरुप है। अपराजित में सविस्तर वर्णन है। यहाँ पर बहुत ही संक्षिप्त में बताया है। उससे कितने ही स्थान पर अध्याहृत रहना पाया जाता है। उसकी पूर्ति करने के लिये अनुवाद में हमे स्पष्ट करना पडा है। सावंधारादि केशरी पचिश प्रासाद के स्वरुप अन्यग्रंथो में जो दिये गये हैं। उनमें से शृंग चढाने की रीति भी भिन्न है। उसी प्रकार तलच्छंद में भी आगे पीछे है। शृङ्गकी कुल क्रम संख्या तो मिलती रहती है।



सर्वतोभद्र.

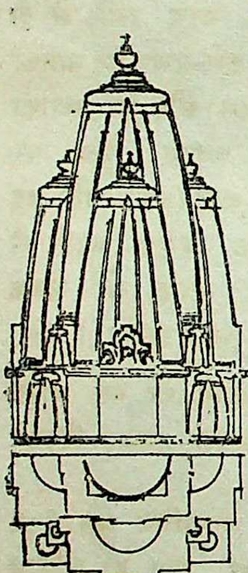


नंदन.

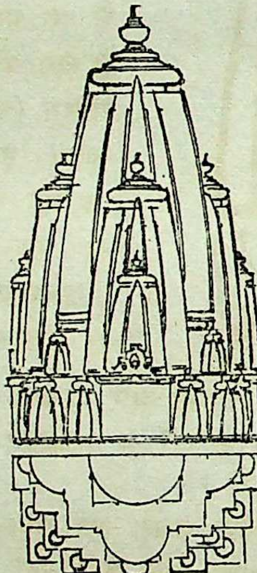


नंदशाली.

(यह प्रासाद दूसरे प्रकार से भी कहा गया है । रेखा कर्ण उपरे उपरापर दो श‍ृङ्ग और रथ–भद्र पर उद्गम=दोढिया चढाने से वह सर्वतोभद्र नामक नौ अंडकका प्रासाद जानना । इतिसर्वतोभद्र प्रासाद २ । तुल भाग १० श‍ृंग ९



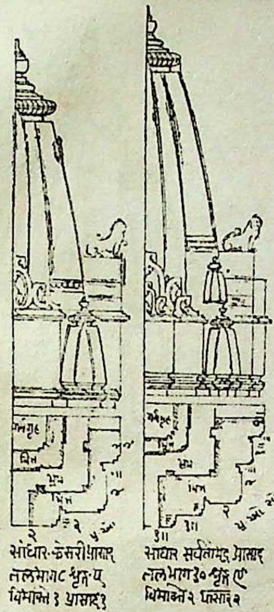
नंदीश.

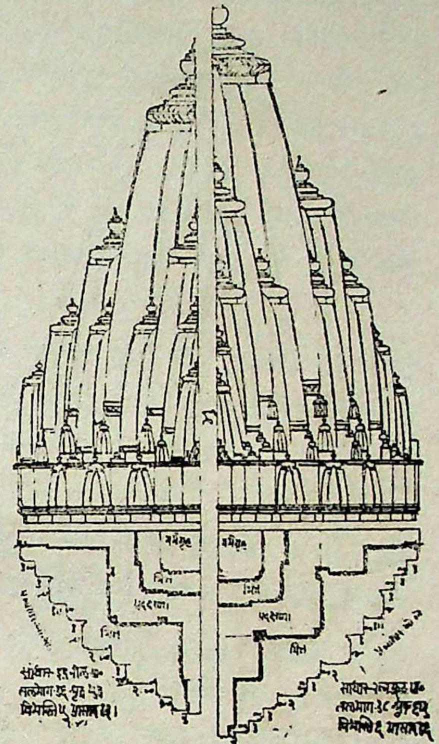


मंदिर.

तृतिय प्रासादः—दशाई तलके उपर दूसरा भेद कहते है । भद्रके ऊपर एक ऊरुश‍ृङ्ग चढाने से "नंदन" नामका तेरह अंडकका तीसरा प्रासाद जानना । ११०

चौथा प्रासादः—उसी प्रकार दशाइ तल पर तीसरा भेद कहते हैं । रेखा कर्ण पर दो श‍ृङ्ग हैं, सो एक रथके प्रतिरथ पर श‍ृङ्ग चढाने से चोथा "नंदशाल" नामक प्रासाद सत्रह अंडकका जानना । इति नंदशाल ११०



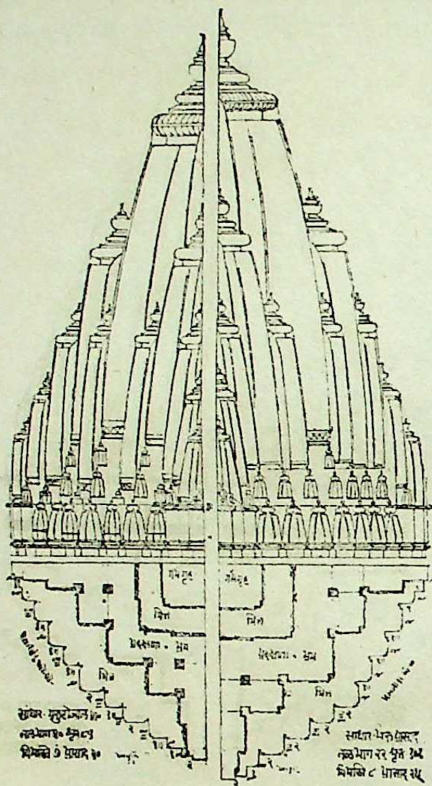


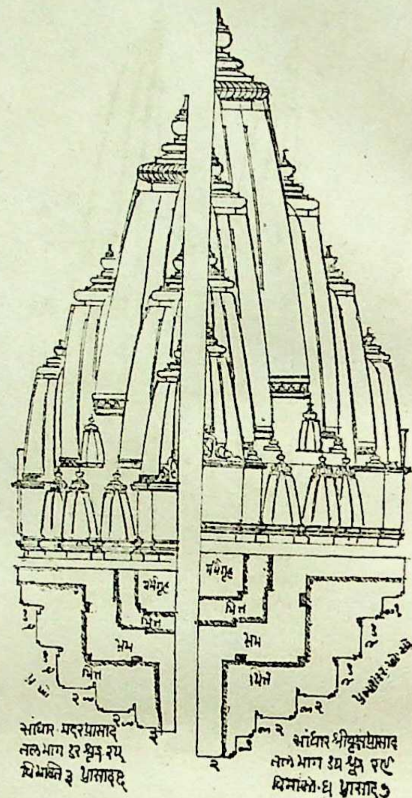
पांचमा प्रासाद—दशाई तल पर चौथा भेद कहते हैं । नंदशाल प्रासाद के स्थान पर कर्ण–रेखा पर एक श्रृङ्ग है वहां दो दो श्रृङ्ग चढाने से पांचवा "नंदिश" नामक २१ अंडक का प्रासाद जानना । इति नंदिश ।

विभक्ति ॥३॥ प्रासादके क्षेत्रके १२ भाग करके कर्ण–रेखा प्रतिरथ और भद्रार्ध दो दो भागके करके कर्ण पर दो और भद्र पर दो दो ऊरुश्रृङ्ग एवं प्रतिरथ पढरे पर एक श्रृङ्ग चढानेसे छठ्ठा "मंदर" प्रासाद २५ अंडक तुल भाग १२ का जानना । इति मंदर । १११–११२

विभक्ति ॥४॥ प्रासाद के क्षेत्रके १४ चौदह भाग करके रेखा, कर्ण, प्रतिरथ और भद्रार्ध दो दो भाग के रखने तथा भद्रकी दोनों ओर (पक्षमें) एक एक भागकी नंदी करनी कुल चौदहाई तल हुआः कर्ण–रेखा पर दो दो, प्रतिरथ पढरे पर एक एक और उन पर एक एक तिलक चढाना, नंदी पर एक तिलक और भद्रके उपर तीन ऊरुश्रृंग चढाने से सातवा "श्री वृक्ष" प्रासाद तुल भाग १४ अंडक उनतीस जानना । इति श्री वृक्ष ।

आठवा प्रासाद—श्रीवृक्ष प्रासादके शिखर पर रेखा–कर्ण के उपर दो के स्थान





पर तीन श्रृङ्ग चढाने से आठवां "अमृतोद्भव" प्रासाद तुल भाग १४ अंडक ३३ इति अमृतोद्भव।

नवमां प्रासाद–अमृतोद्भवके स्थान पर भद्र पर तीन ऊरुश्रृङ्ग के स्थान एक ऊरुश्रृङ्ग छोडकर प्रतिरथ–पढरे पर एकके स्थान दो दो श्रृङ्ग चढाने और कर्ण–रेखा पर तो तीन श्रृङ्ग है ही। ऐसा नवाँ "हिमवान" प्रा० तुल भाग १४ अंडक ३७ होवे ११३ इति हिमवान।

दशवा प्रासाद–हिमवानके स्थान पर भद्रके उपर दो ऊरुश्रृङ्ग हैं। वहां तीन तीन ऊरुश्रृङ्ग चढाने से दशवा "हेमकूट" प्रा० तुल भाग १४ अंडक ४१ होवे ११५ हेमकूट।

ग्यारहवा प्रासाद–हेमकूट के स्थान पर कर्ण–रेखा पर से एक श्रृङ्ग छोडकर नंदीके उपर एक एक श्रृङ्ग चढ़ाने से और रेखा–कर्ण पर एक तिलक चढ़ाने से ग्यारहवा "कैलास" प्रा० तुल भाग १४। अंडक ४५ होवे इति कैलास।

बारहवा प्रासाद–कैलास के स्थान पर कर्ण-रेखा पर दो के स्थानपर तीन श्रृङ्ग चढाने से बारहवां "पृथ्वीजय" प्रा० तुल भाग १४ अंडक उनपचास जानना ११६ इति पृथ्वीजय।

विभक्ति ॥५॥ प्रासाद के क्षेत्र के १६ भाग करके कर्ण रेखा पढरा-प्रतिरथ और भद्रार्ध दो दो भागके रखने-कर्ण एवं प्रतिरथके बीच एक भाग कोणी तथा भद्रके पास में एक भागकी नन्दी करनी। भद्रका निकाला एक भागका रखना। रेखा-कर्ण पर दो उसके पास कोणी के उपर एक एक तिलक चढाकर प्रत्यङ्ग चढाना। प्रतिरथ पढरे पर दो दो शृंङ्ग और भद्रके उपर तीन तीन ऊरुशृङ्ग चढाने और भद्र नन्दी पर एक एक शृङ्ग चढाने से तेरहवां "इन्द्रनील" प्रा० तुल भाग १६ अंडक ५३ जानना। ११७-११८ इति इन्द्रनील।

चौदहवाँ प्रासाद- इन्द्रनील के स्थान पर कर्ण रेखा के उपरका एक शृङ्ग छोडकर वहाँ तिलक चढाना और रेखाके पासकी कोणी के उपर तिलक छोडकर वहां शृङ्ग चढाने से चौदहवाँ "महानील" प्रा० तल भाग १६ अंडक ५७ जानना। ११९ इति महानील।

पंद्रहवां प्रासाद-महानील के स्थान पर रेखा कर्ण परका तिलक तजकर शृङ्ग चढाने से पंद्रहवां "भूधर" प्रा० तल भाग १६ अंडक ६१ जानना १२० इति भूधर।

विभक्ति ॥६॥ प्रासादके क्षेत्रके १८ भाग करके उनमें उपरोक्त सोलाइ तलके भद्रकी ओर एकके स्थान दो दो नन्दी करनी। शेष सोलाइ तलके समान तल भाग जानने। कर्ण के उपर दो शृङ्ग और एक तिलक चढाना। रेखा-कर्णके पास वाली कोणी पर एक शृङ्ग ओर उस पर तिलक चढाकर उस पर प्रत्याङ्ग दो दो भागके करने। शेषकी दो नन्दी पर दो दो तिलक चढाने। भद्रके उपर चार ऊरुशृङ्ग और प्रतिरथ-पढरे पर तीन तीन शृङ्ग चढाने से सोलहवां "रत्नकूट" प्रा० तलभाग १८ अंडक ६५ का शिवलिङ्ग हेतु। कामना को पूर्ण करने वाला जानना। १२१ इति रत्नकूट।

सत्रहवां प्रासाद रत्नकूटके स्थान पर रेखा-कर्ण पर दो के स्थान पर तीन तीन शृङ्ग चढाने से सत्रहवां वैडूर्य प्रा० तल भाग १८ अंडक ६९ जानना। १२२ इति वैडूर्य।

अठारहवां प्रासाद-वैडूर्य के स्थान पर रेखा-कर्ण के उपर के तीन शृङ्गमें से एक छोडकर प्रतिरथके पासवाली नंदी पर शृङ्ग चढाने से अठारहवाँ "पद्मराग" प्रा० तल भाग १८ अंड्क शृङ्ग ७३ जानना। इति पद्मराग।

उन्नीसवाँ प्रासाद-पद्मरागके स्थान पर कर्ण-रेखा पर जैसे कि पूर्व ही थे उसी प्रकार तीन तीन शृङ्ग रखने से उन्नीसवा "वज्रक" प्रा० तल भाग १८ शृङ्ग ७७ जानना १२३ इति वज्रक।

विभक्ति ॥७॥ प्रासादके क्षेत्रके वीश भाग करके दो भाग कर्ण-रेखा कोणी डेढ भाग, रथ दो भाग, नंदी डेढ भाग, भद्र नंदी एक भाग एवं सारा भद्र चार भागका बनाना । इस प्रकार कुल वीसाइ तल भाग हुआ । रेखा पर दो शृङ्ग और एक तिलक चढाना । तब शिखरका पायचा चौदह भागके विस्तारका होगा। नंदी पर एक एक शृङ्ग और तिलक चढाके उस पर प्रत्यङ्ग चढाना । प्रतिरथ पर तीन तीन शृङ्ग और भद्र पर चार चार उरुशृङ्ग चढाना । नंदी पर एक एक शृङ्ग और तिलक । उसी प्रकार भद्र नंदी पर एक शृङ्ग चढाने से वीसवां "मुकुटोज्ज्वल प्रा० इक्याशी अंडकका प्रासाद जानना १२४-२५-२६ इति मुकुटोज्ज्वल ।

इक्कीसवाँ प्रासाद- मुकुटोज्ज्वल प्रासादके स्थान पर रेखा पर तीन शृङ्ग चढाने से इक्कीसवां "गजराज" प्रा० तल भाग २० अंडक शृङ्ग पिच्याशी १२७ इति गजराज ।

बाइसवाँ प्रासाद-गजराजके स्थान पर रेखा पर जहां तीन शृङ्ग हैं उनमें से एक शृङ्ग छोडकर वहाँ तिलक रखना । और भद्र कर्ण पर एक शृङ्ग चढाने से ब्रह्माजी को प्रिय ऐसा बाइसवाँ "राजहंस" प्रा० तल भाग २० निव्वाशी शृङ्गका जानना । १२८ इति राजहंस ।

तेइसवां प्रासाद-राजहंसके स्थान पर रेखा पर जैसे कि पूर्व थे, वैसे ही तीन शृङ्ग चढाने से और भद्र नंदी पर तिलक चढाने से लक्ष्मीपति विष्णुको प्रिय ऐसा तेइसवां गरुड प्रा० तल भाग २० शृङ्ग तिरानवेका जानना । १२९ इति गरुड ।

विभक्ति ॥८॥ प्रासादके क्षेत्रके बाईस भाग करके भद्रकी पक्ष-पडखो पर एक एक भागकी नंदी तीन प्रतिरथ और रेखा तथा आधा भद्र-ये सब दो दो भागके बनाने से कुल बाईस भागका तल हुआ; कर्ण रेखा पर दो श्रृङ्ग और एक तिलकः भद्र पर चार चार ऊरुश्रृङ्ग; कर्णकी बाजूवाले प्रतिरथ पर दो दो श्रृङ्ग ओर उन पर तीन भागके विस्तारका प्रत्यक्ष (चोथगराशिया) चढाना; रथ पर तीन तीन श्रृङ्ग उपरथ पर दो दो श्रृङ्ग और भद्र नंदी पर एक एक श्रृङ्ग चढाने से हर-शिवको प्रिय ऐसा चोबीसवां "वृषभ" प्रा० तलभाग बाइस श्रृङ्ग सतानवेका जानना इति वृषभ. १३०-१३१

पचीशवा प्रासाद—वृषभके स्थान पर रेखा पर जो तृतीय श्रृङ्ग चढाया जावे तो सिद्धिको देने वाला ऐसा पचीसवा "मेरु" प्रासाद तल भाग २२ श्रृङ्ग एकसो एक का जानना. १३२

२७ इसी प्रकार केशरादि सांधार अथवा निरंधार प्रासादका पचीश शिखर बनाये जा सकते हैं इति मेरु प्रासाद.

---

२७ सांधार केशरादि प्रासादकी आठ विभक्तियो पर पचीश भेद कहें यथा

मेरु प्रसाद—पांच हाथका एक सौ एक अंडक श्रृङ्गका करना; जिसमें बीस बीस अंडककी वृद्धि करते हुए पचास हाथ तकके मेरु प्रसादके लिये एक हजार एक अडक होने पर, वह "महामेरु प्रासाद" कहलाता हैं; पूर्वोक्त मेरु प्रासाद राजाओं के लिये ही बनवाने, दूसरे वर्णोंके लिये नहीं; मेरु प्रसाद ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं सूर्यके लिये बनवाने चाहिये, अन्य देवोंके लिये नहीं. १३३–३४

अथ मण्डप—प्रासादके आगे एक या तीन द्वारका मंडप बनाना; जिन ब्रह्मा, विष्णु ओर शिवके प्रासादों कें लिये गूढ स्त्रीक एवं नृत्य मंडप अनुक्रम से बनाने। एक या दो हाथकी डेरीके आगे चोकी चतुष्किका बनानी। तीन हाथके प्रासादके लिये दूना, चार हाथके लिये पोने दोगुना, पांच हाथसे दश हाथके लिये ड्योढा और दशसे पचास हाथ तक के प्रासादों के लिये सवा गुना अथवा सम. (अर्थात् जितना प्रासाद होवे उतना) मंडप बनाना। यह शुभ जानना। प्रवेश मंडप गर्भगृहसे ड्योढा या दुगुना बनाना। १३५–३६–३७–३८

जयमत—विश्वकर्माके पुत्र जय कहते हैं कि प्रासादके प्रमाणसे मंडप सम अर्थात् प्रासादके बराबर सवागुना, डोढगुना; पोनेदोगुना अथवा दूना करना। ऐसा पंच विध प्रमाण कहा है। १३९

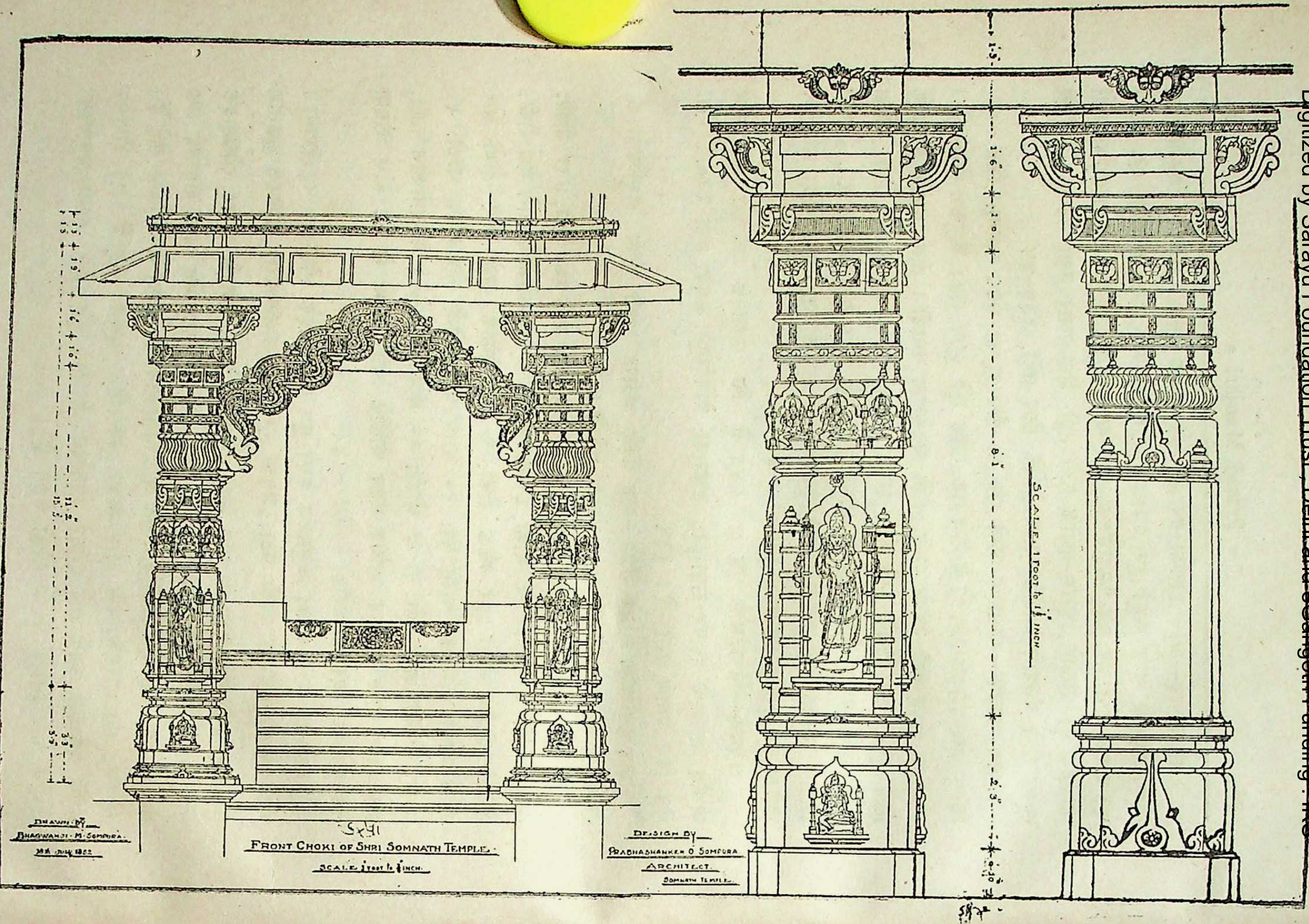
अथ चतुष्किका प्राग्रिव मंडप—एक पदसे अठारह पदकी चोकी चतुष्किका की रचना के प्राग्रिव मंडपांके बारह स्वरुप कहे हैं। [२८]

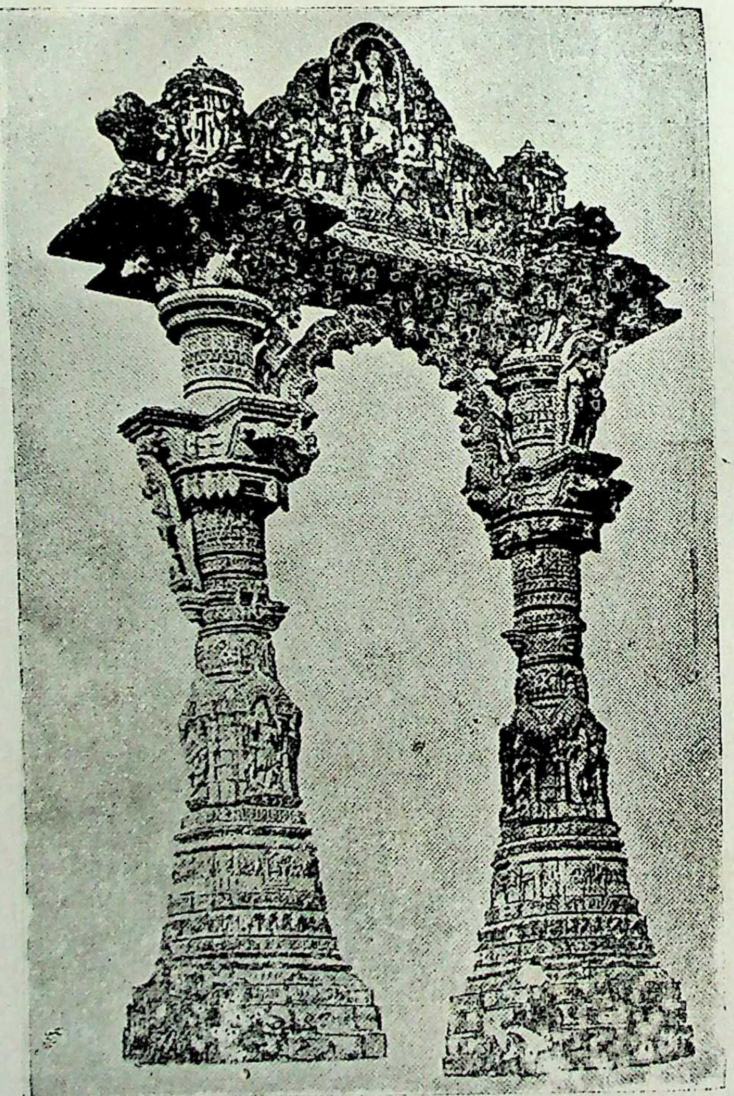
१ एक चोकी; २ तीन चोकी. ३ तीन चोकी और आगे एक चोकी, ४ छ चोकी; ५ छः चोकी और आगे एक चोकी; ६ नव चोकी; ७ नव चोकी के आगे एक चोकी: ८ नव चोकीके दोनों ओर एकैक चोकी; ९ नव चोकीके आगे ओर दोनों ओर एकैक चोकी मिलकर बारह पद: १० बारह पदके दोनों ओर एकैक चोकी; ११ बारह चोकीके दोनों ओर दो दो चोकी; १२ पंदर पद ५ × ३ के आगे तीन चोकी; इस प्रकार बारह प्रकारके प्राग्रिव मंडप चोकीके चार स्तंभो से २८ स्तंभ संख्या तक जानना। एक पद=चोकी। १४०–१४१

मंडपका मध्य पदका अनुसरण करते हुए अन्य पदके स्तंभोका पद रखना। मंडप परकी संवरणा परकी घंटा (अथवा गुम्बजका आमलसारा) शिखरके शुकनाश

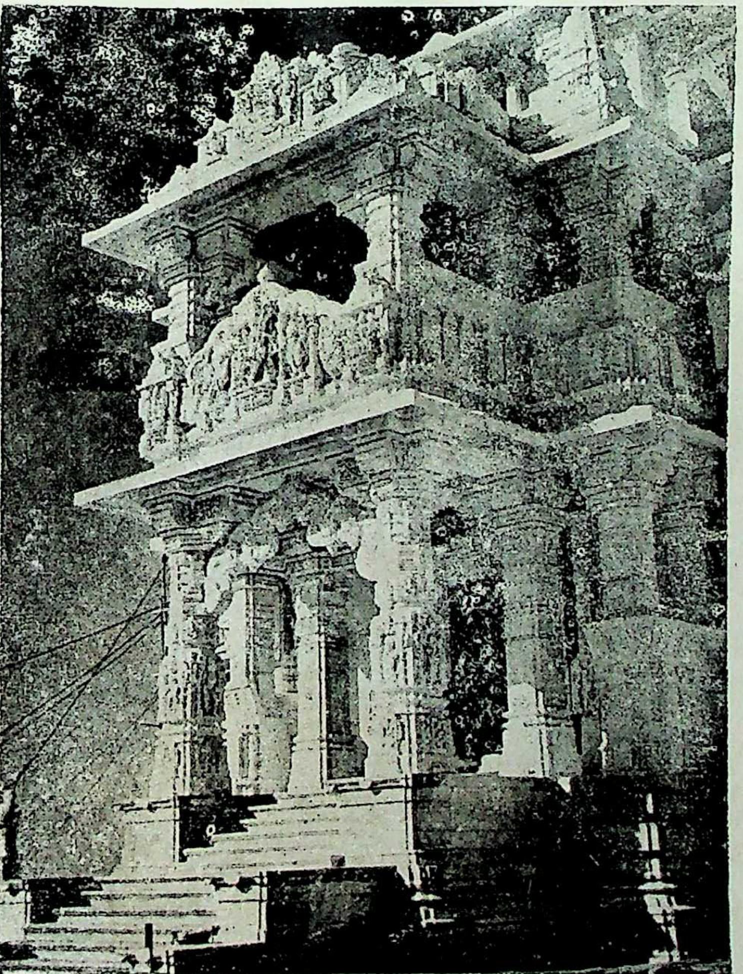
अट्ठाइका एक भेद, दशाइके चार भेद, बाराहाइके एक, चौदाइके छ भेद, सोलहाइके तीन भेद, अठारहाईके चार भेद, बीसाईके तल पर चार भेद और बाइसाई तल पर दो भेद कहे हैं। इस प्रकार कुल आठ विभक्तियें पर पचीश भेदके शिखर कहे हैं।

२८ इन बारहके नाम और स्वरुप अपराजित सूत्रमें कहे हैं एवं दीपार्णव ग्रंथके प्रकाशमें उसके तल दर्शनके मानचित्र भी दिये हुए हैं; चोकी=चतुष्किका अर्थात चार स्तंभके पदको चोकी कहते हैं।

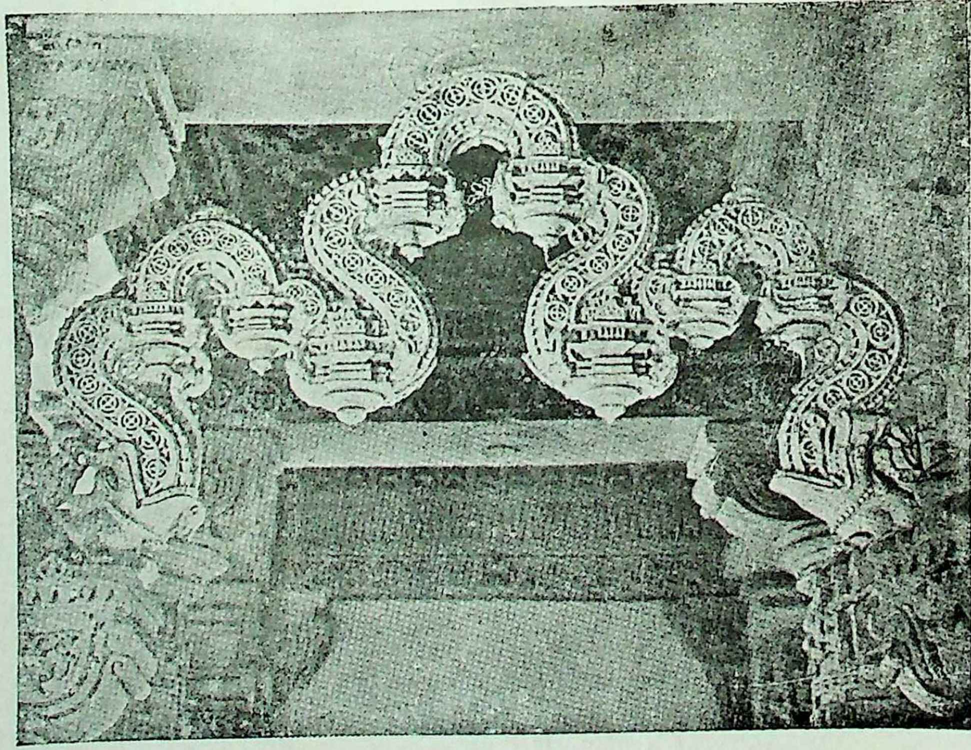

SCALE, 1 FOOT to 1½ INCH
DRAWN BY
BHAGWANJI M. SOMPURA
FRONT CHOKI OF SHRI SOMNATH TEMPLE.
DESIGN BY
PRABHASHANKER O. SOMPURA
ARCHITECT
SOMNATH TEMPLE



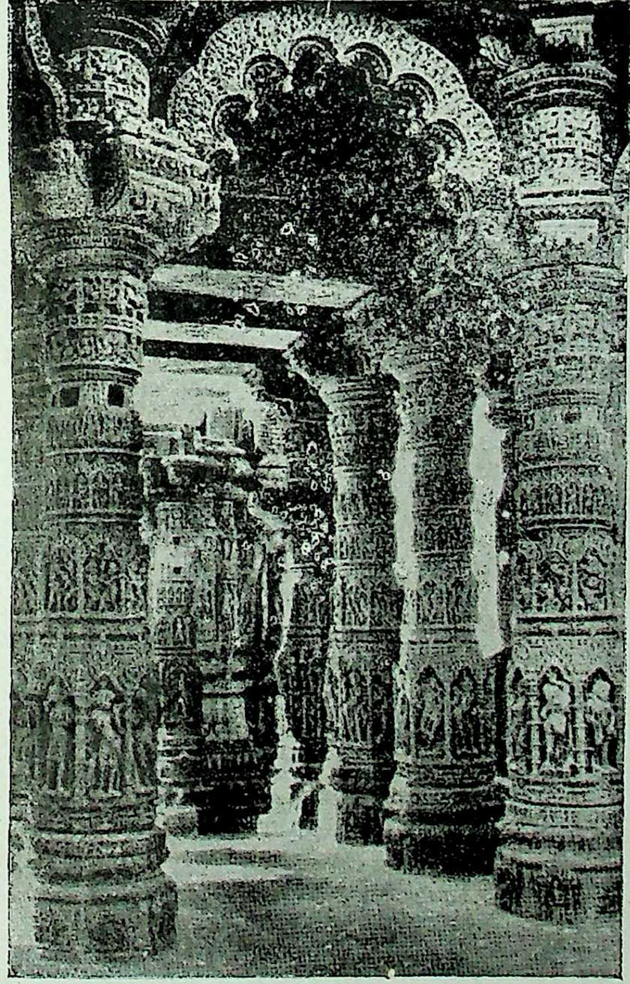
प्रतोल्या तोरण - वडनगर.



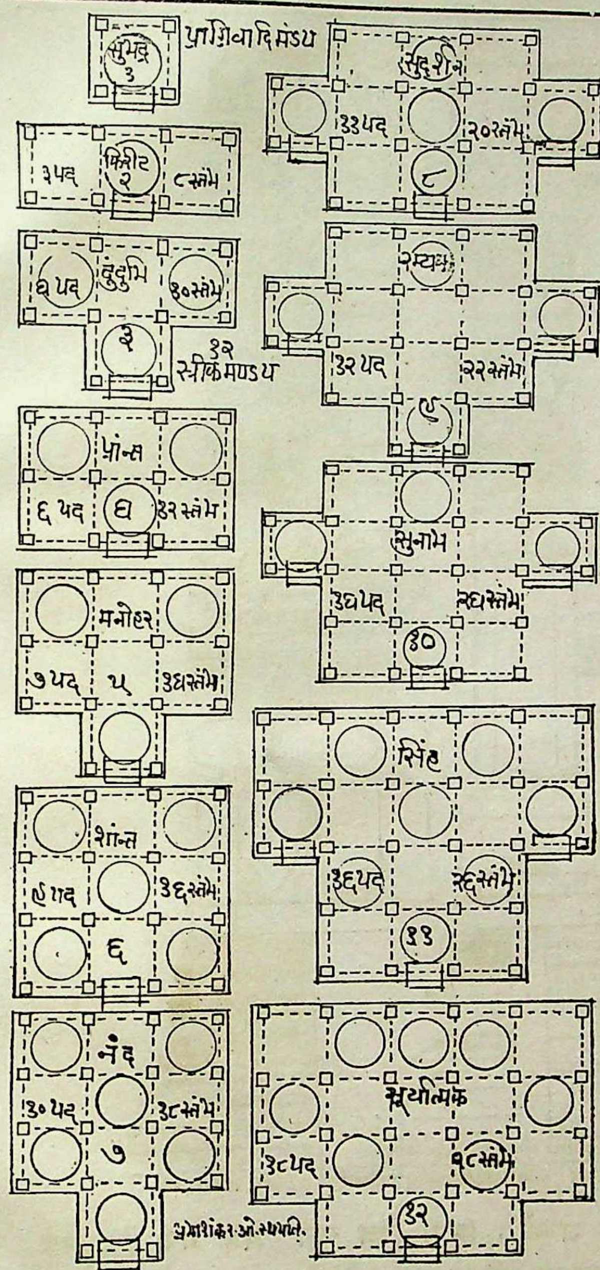
श्री सोमनाथजी महाप्रासादके प्रवेशभाग.



कलामय – हिंडोलक तोरण – सोमनाथ



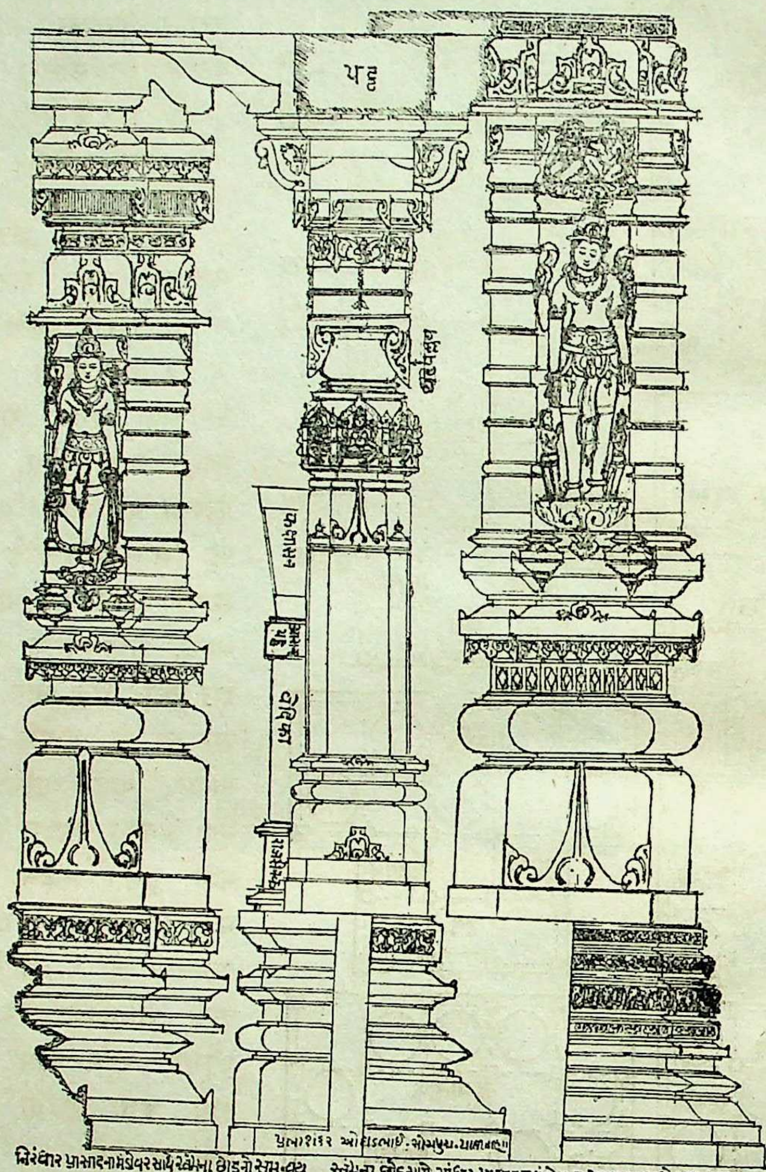
मोढेरा सूर्यमंदिरके मंडप स्तंभ –और काचलावाला तोरण



बराबर मिलाना। मंडपकी घंटाका आमलसारा नीचे हो यह श्रेष्ठ है परंतु ऊंचा नहीं होना चाहिये। १४२

निरंधार प्रासादके मंडपका उदय प्रासादके बराबर रखकर उसके उदय के १३ भाग करने। पीठ पर सवा भागका राजसेनक, सवा तीन भाग वेदिका एक भाग आसन पट्ट (आसरोट); साढे पांच भागका स्तम्भ; पोने भागका भरण, सवा भागका शराः इस प्रकार तेरह भाग और उस पर दो भागके पाटः भारोट; पाट भारवट ये सब मिलकर उदयके पन्द्रह भाग हुए। पाटमें एक भागका मोटा छज्जा बनाना। जो पाटके पेटमें ढालू समाविष्ट करनाः आसन पट्टके उपर एक हाथ ऊंचा ढलता हुआ कक्षासन करना। १४३, ४४, ४५.

अथ गूढमंडप—प्रासादोंको जोडने वाले भित्ति दिवार वाले गूढ मंडपके आठ प्रकारके स्वरुप कहे हैं। १ चोरस, वर्धमान, २ भद्रयुक्तः स्वस्तिक, ३ प्रतिरथ युक्त गरुड नामकः ४ भद्र और उसके साथ प्रभद्र युक्तः सुरानंद नामक; ५ कोणी युक्त सर्वतो भद्र नामक; ६ अधिक भद्र युक्त मुखभद्र युक्त कैलास नामकः दो प्रतिरथ युक्त इंद्रनील नामक, तीन प्रतिरथ युक्त 'रत्नसंभव' नामक; इस

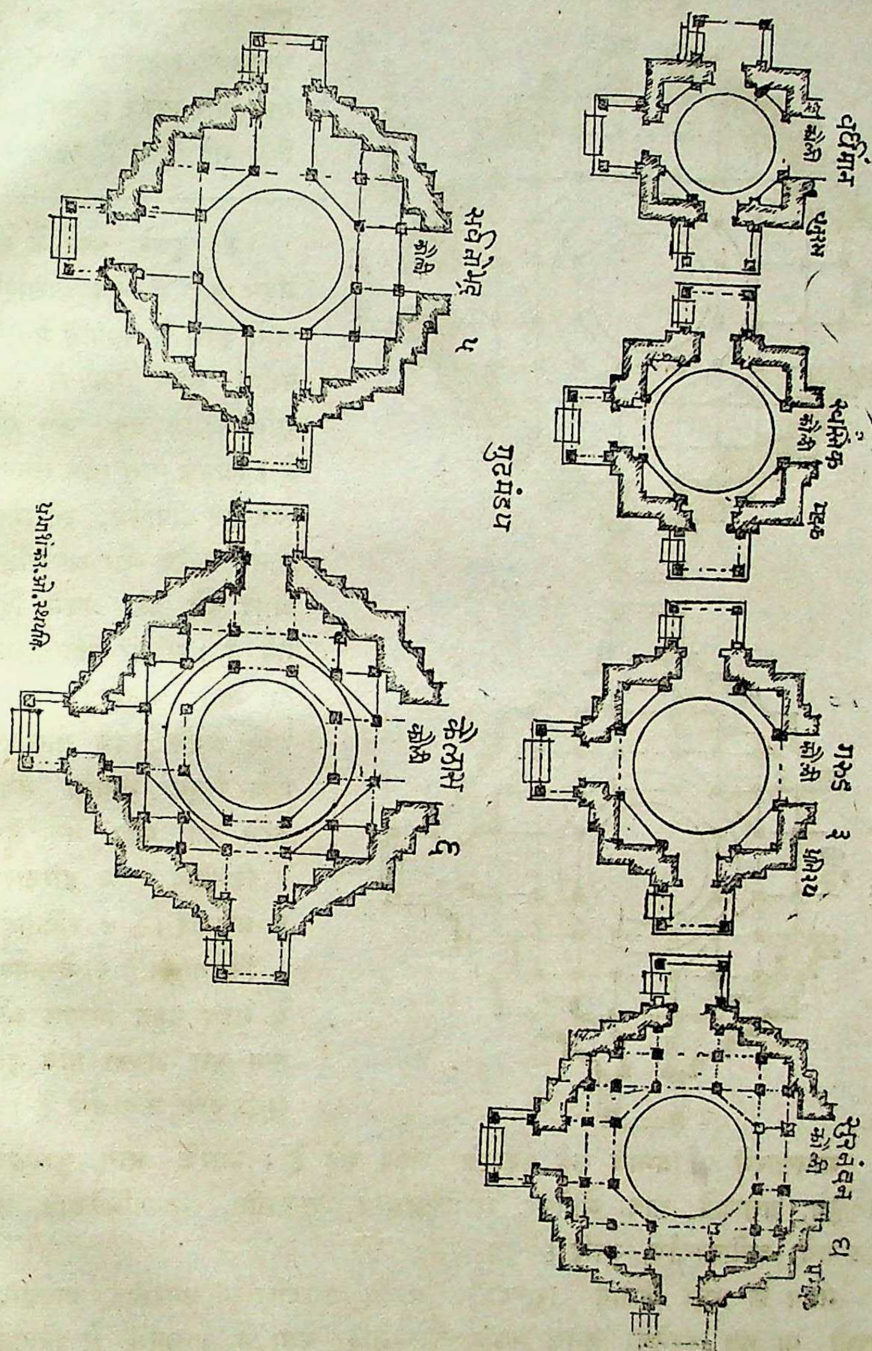


નિરંધાર પ્રાસાદના મંડોવર સાથે સ્થંભના છોડનો સમન્વય   સ્તંભના છોડ સામે સાંધાર પ્રાસાદના મંડોવરના થરવાળા સાથે સમન્વય.

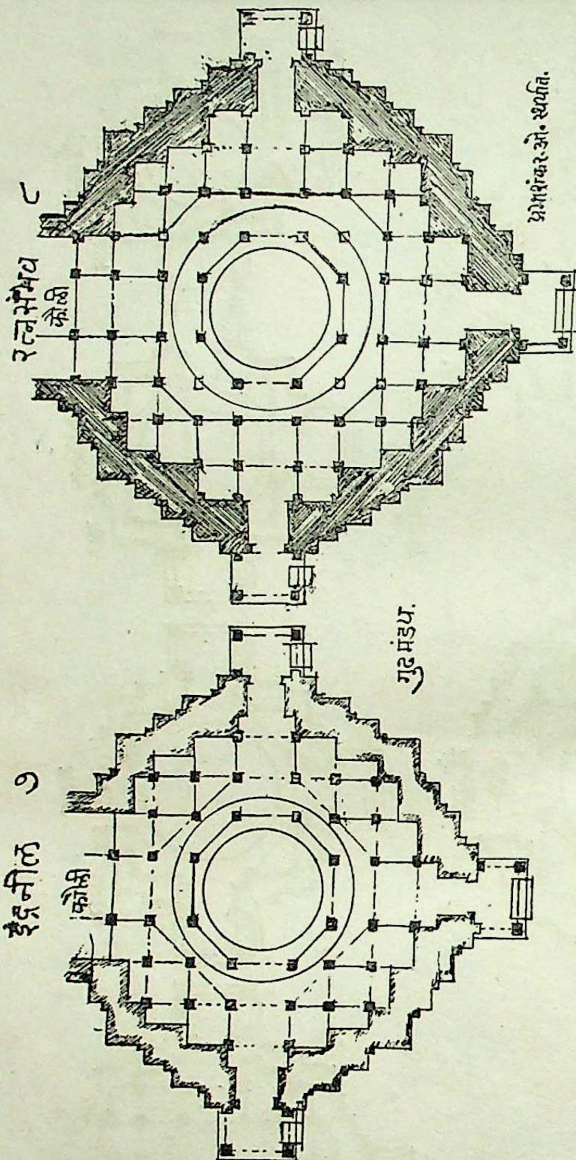
प्रकार आठ गूढ मंडप के स्वरुप जानने। (मान चित्र यहाँ दिया गया है) कर्ण रेखा से दूना भद्र और पौने भागका प्रतिरथ और भद्रसे अर्ध मुखभद्र बनाना। ये मुखभद्र कक्षासन चंद्रावलोकित करना। २९ १४६ ४७.

---

२९ गूढमंडप भित्ति दिवार युक्त होते इस लिये मंडपको प्रासाद जैसा पीठ एवं मंडोवरका स्तर बनाना। एक या तीन द्वार करने से कामना फल प्राप्त होता है। द्वारके आगे एक या तीन या चार पदकी चोकी चतुष्किका करना।



अथ नृत्यमंडप—पुष्पकादि सताईस प्रकारके मंडप स्तंभ संख्याके अनुसार कहे हैं। प्रथमत्वार स्तंभो के सुभद्र नामका मंडप से दो दो स्तंभोकी वृद्धि करते



हुए चोसठ स्तंभों तक के पुष्पकादि सताईस मंडपों के नाम ओर स्वरुप शिल्पग्रंथोमें दिये गये हैं।[30] १४८, ४९

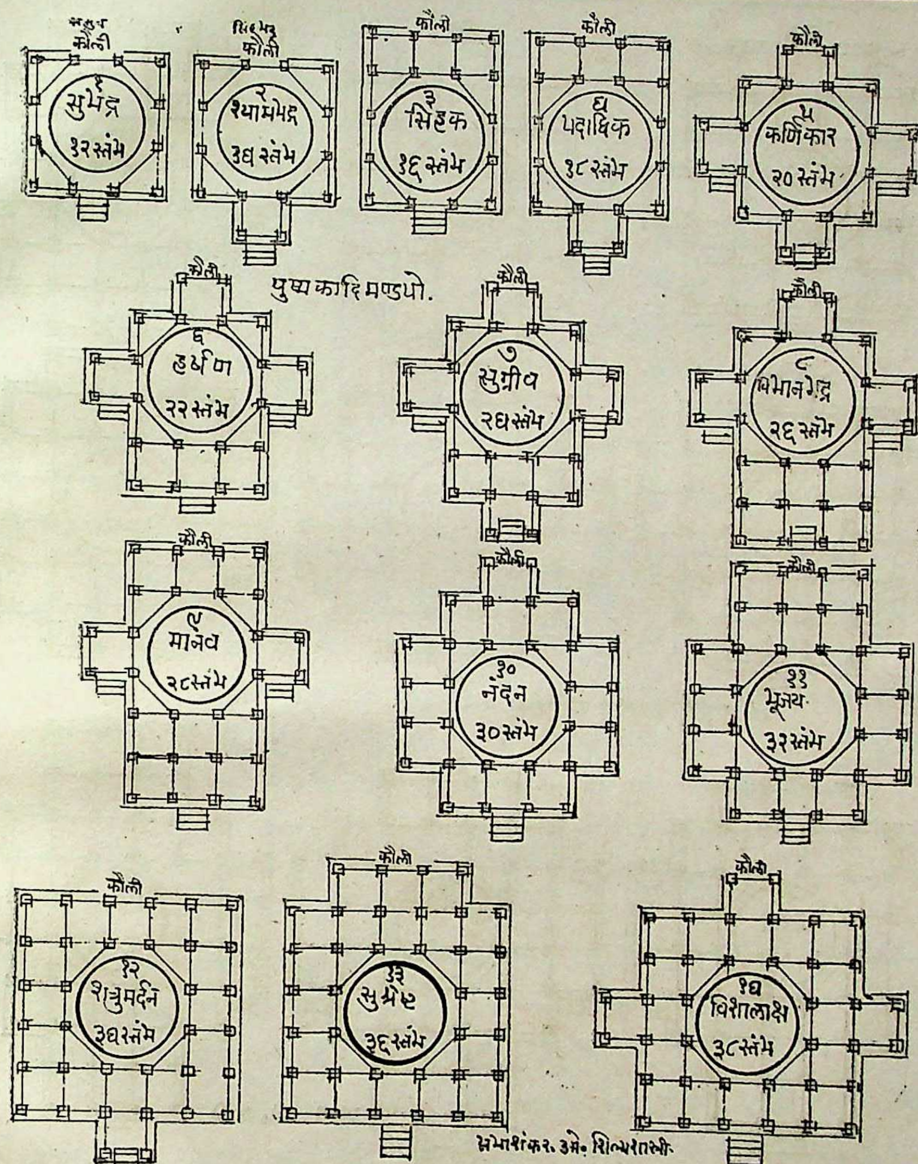
---

३० दूसरे प्रकारके भी मंडप कहे हैं–देव प्रासादके आगे करने के मंडपोमें मेर्वादि पचीश मंडप एक से पांच भूमि=मंजिल तक किये गये हैं। जिनके नाम स्तंभ संख्या, स्वरुपादि दीपार्णव, क्षीरार्णव, ज्ञान रत्नकोश और अपराजित आदि बडे बडे ग्रंथमें दिये गये हैं। सांधार महा प्रासाद या महा चातुर्मुख मंडपके आगे अमुक देवके प्रासादके लिये अमुक नामका मंडप करने का कहा गया है। १ शिवनाद। २ हरिनाद। ३ ब्रह्मनाद। ४ रविनाद। ५ सिंहनाद। ६ मेघनाद। ये मंडप बहुत विशाल और तीन चार अथवा पांच भूमि (मंजिल)के ऊंचे होते हैं।

मानसारमें प्रयोजनार्थ कई प्रकारके मंडप कहे हैं। नगरके आगे, पुण्यक्षेत्रे, तीर्थक्षेत्रे, जलाशये, यात्रा मार्गपर, राज्यशृङ्गारार्थ, नृत्यगीत, राज्याभिषेकार्थ, नृप भोजनार्थ, अग्निकार्यार्थ, आदि।

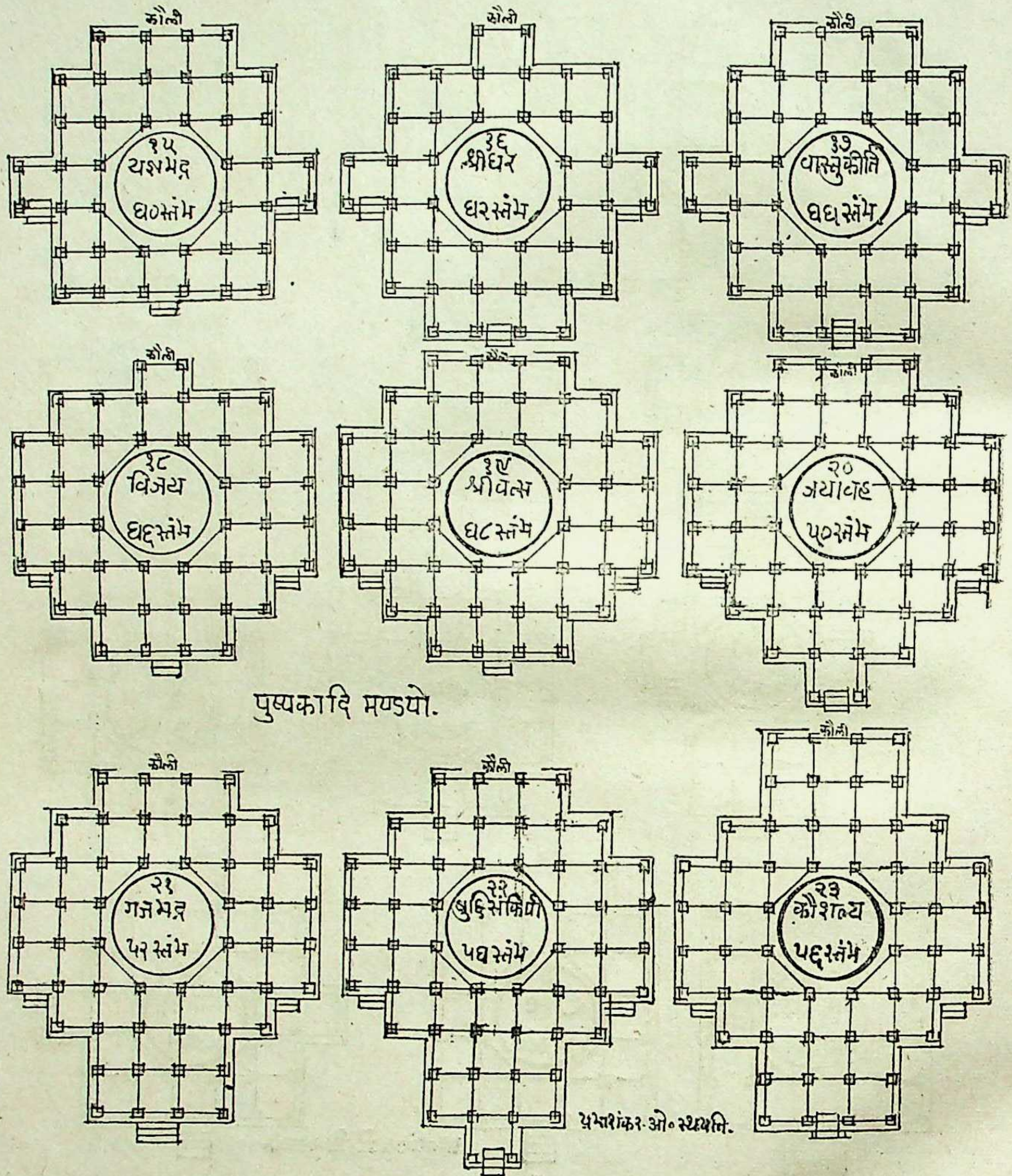
मंडप के ऊपर वितान (गुम्बज) अर्थात् आकाश या उपरकी आच्छादक चंदनी या छत करनेका अनेक प्रकार शिल्पज्ञोंने कहा है। उनमें से वितानके तीन विधान प्रधान हैं।

सर्व वितानके लक्षणोंकी उत्पत्तिः समः सरखा छतः छातियां ढकने से प्रथा



शुरु हुई। वितान–घुमट विचित्र प्रकारके अनेक कहे हैं। इनमें से तीन प्रमुख हैं। प्रथम क्षिप्तउक्षिप्त, दुसरा समतल, तीसरा उदित इस क्रमसे मुख्य समजना।

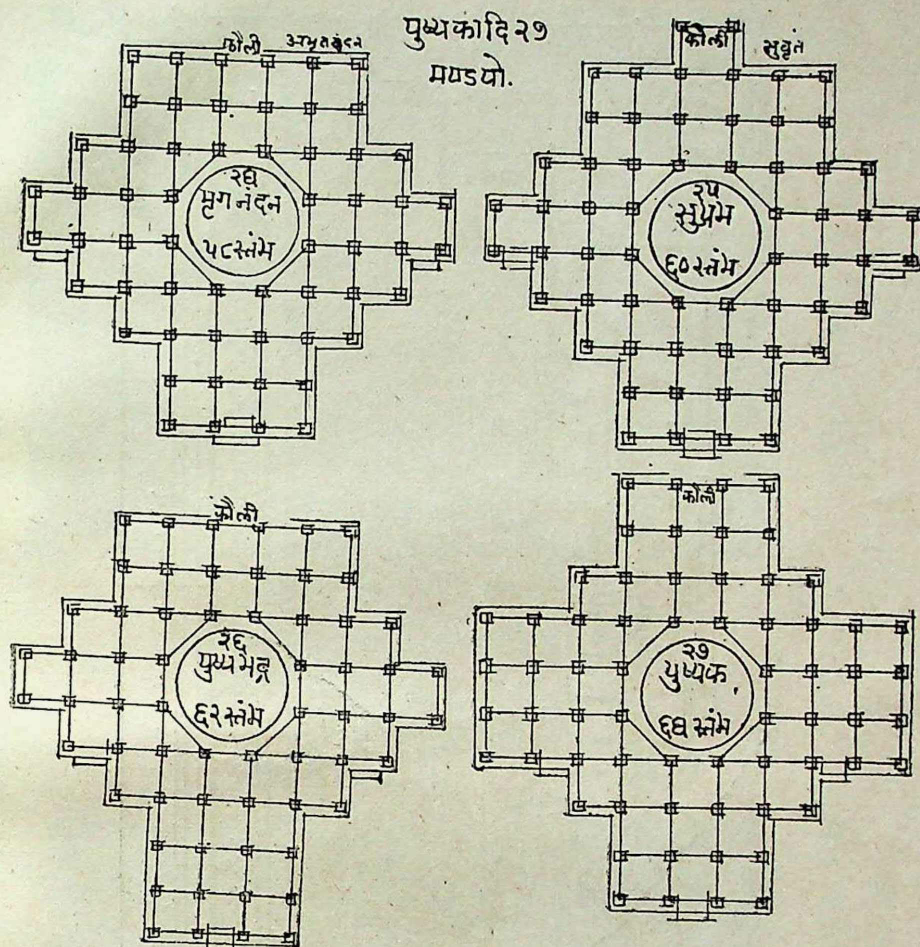
१ क्षिप्तउक्षिप्त अर्थात् गुम्बजका थरो कोल गवालु उपर चढके नीचे उतरकर फिर वापिस उपर चढता है। इसी रीतसे गुम्बज आच्छादित होते हैं उसका नाम "क्षिप्त–उक्षिप्त"।



पुष्पकादि मण्डपो.

२ समतल अर्थात् सीधी छत–छतियासे ढकाती छत ये "समतल" यह छातीया सादा हो या पद्मकी आकृति जैसा उत्कीर्ण हो ।

३ उदित–अर्थात् गुम्बजका कोल गवालुका थरो एक से एक संकिर्ण संकोची संक्षिप्त करके आच्छादित करके ढकनेकी रीति "उदित" नामक कहाता है । बीचका झुमर जैसा विभाग पद्मशिला कहा जाता है ।



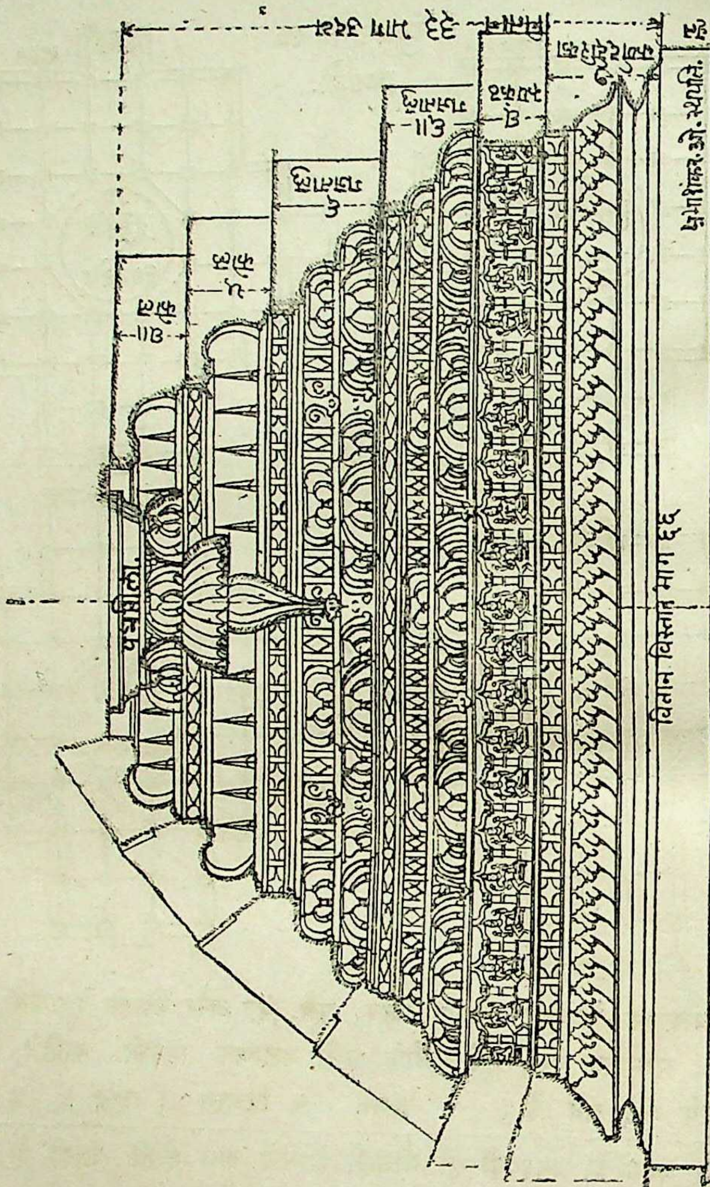
अथ बलाणक-[३१]ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चंद्र और जिनके देवालयो, जलाश्रयों राजप्रासादो, सामान्य घरों, एवं दुर्गोंके आगे बलाणक बनाने चाहिये। बलाणक पांच प्रकारके कहे गये हैं। १ वामन, २ विमान (उत्तुङ्ग), ३ हर्म्यशाल,

---

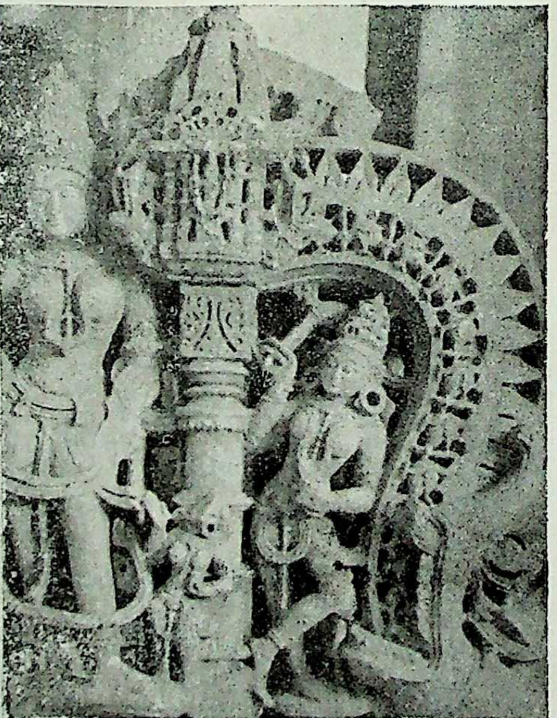
वितान बनानेकी प्रथा दो सो तीनसो सालसे कम होती जाती है। निम्नः नीचे वितान उसके उपर संवरणा होती है। संवरणा भी कम होती है। उस स्थान पर संन्यासीका मस्तक जैसा सीधा सादा गोल गुम्बज होने लगा है।

वितानके तीनों प्रमुख प्रकारकी आकृति एवं फोटा अिस ग्रंथमे दिया हुआ हैं सो देखनेसे स्पष्ट समझमें आ जायेगा।

३१ बलाणकके स्वरुप अन्य ग्रंथोमें थोडे फेरफार के साथ दिये हुए हैं। देव प्रासादके आगे और जगती में समाविष्ट हुए मंडपके लिये "वामन" दुर्ग, एवं राजभवन के आगे विमान, प्रजाजनके भवनके आगे डेहल "हर्म्यशाल," जलाश्रयके

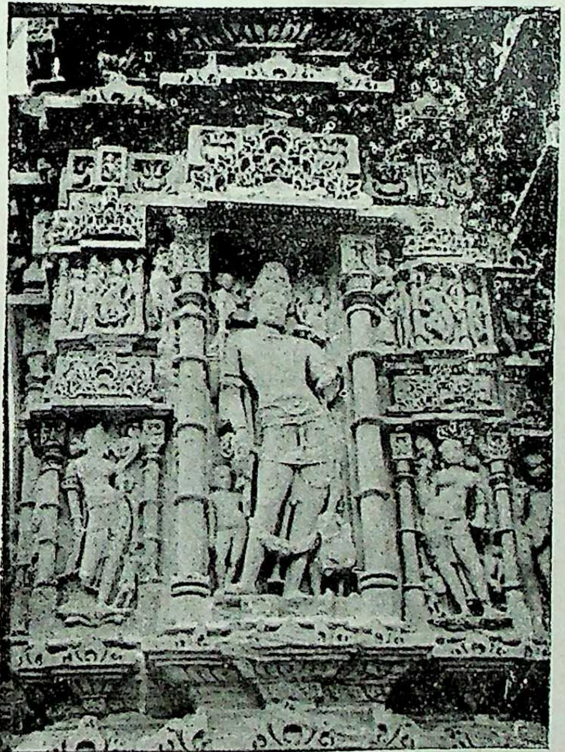


आगे या मध्यमें मंडप होवे उसको "पुष्कर"; राजभवन के आगे पांच या सात या नौ भूमि ऊंचे बलाणक को उत्तुङ्ग" कहते हैं; उत्तुङ्ग टावर या कीर्तिस्तंभ जैसा जानना। चितोडमें ऊत्तुङ्ग मंदिर के आगे और एक स्वतंत्र है। जो युद्ध विजय के स्मारकमें बनाया होनेका कहते है। पाटण सहस्रलिङ्ग के बडे सरोवर के किनारे पर ऐसा उत्तुङ्ग कीर्ति स्तंभ जैसा बनाया था अब उनका अवशेष भी नहि दिखाते। साहित्यमें उसका उल्लेख है। प्रजाका भवनके आगे हर्म्यशाल जो मूल घरसे नीचे

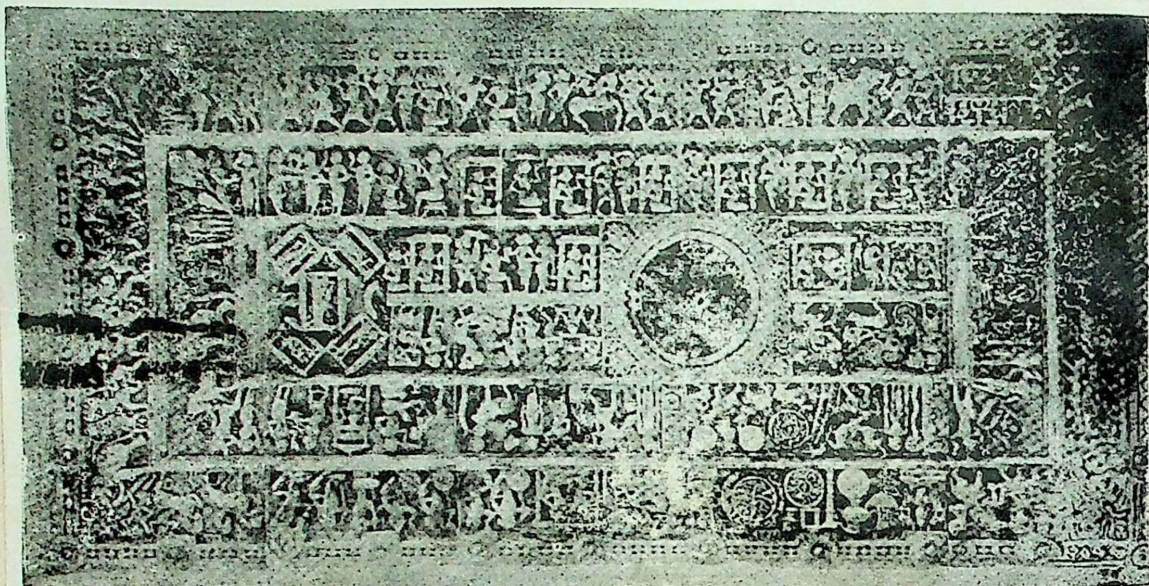


श्री सोमनाथ – प्रतोल्या परका ईलिकाका अंश.

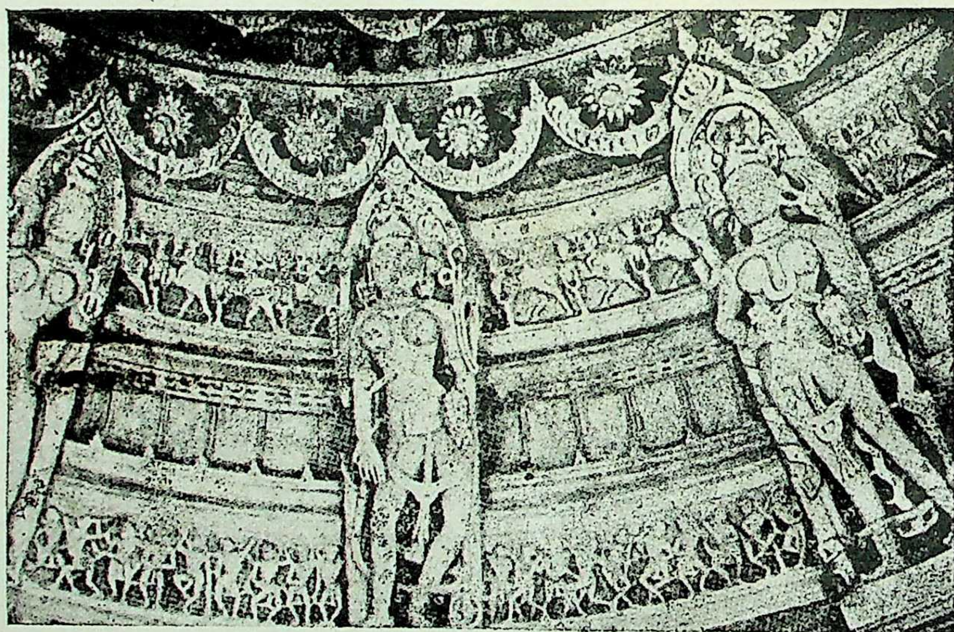
श्री सोमनाथ – प्रतोल्यापरका तोरणका अंश.



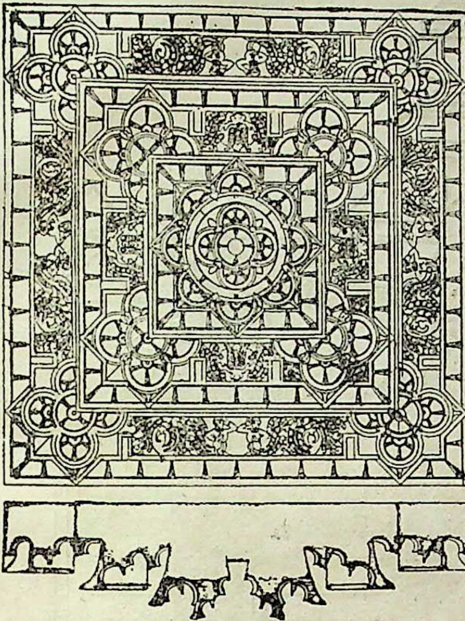
मोढेरा सूर्यमंदिरकी जंघाका देवस्वरुप

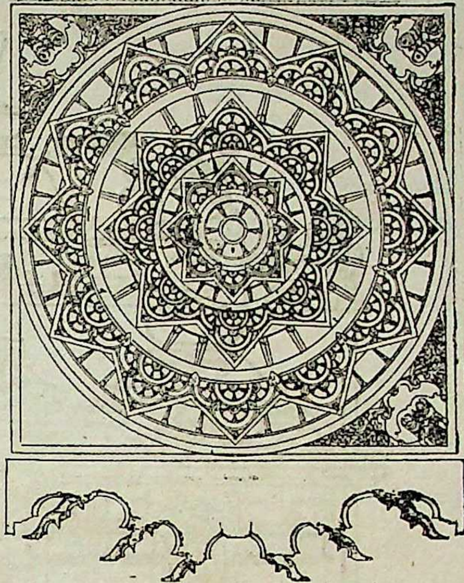


समतलानि प्रकारके विनान (छत – छातीया)



ऊदितानी प्रकारके कलामय वितान (गुम्बज) रुपकोल, गजतालु – गवालु.





४ गोपुरम् ५ पुष्कर नामक बलाणक जानना । एक दो तीन चार छ एवं सात पद दूर स्थल विस्तारके प्रमाणसे बलाणक बनाना । बलाणकके द्वार उत्तरङ्ग, पाट मूल प्रासादके अनुसार समसूत्र उदयमें रखना । १५०, ५१, ५२.

१ प्रासादकी जगतीके आगे या जगतीके बराबर देव प्रासादके आगेका बलाणक का नाम "वामन" कहा है ।

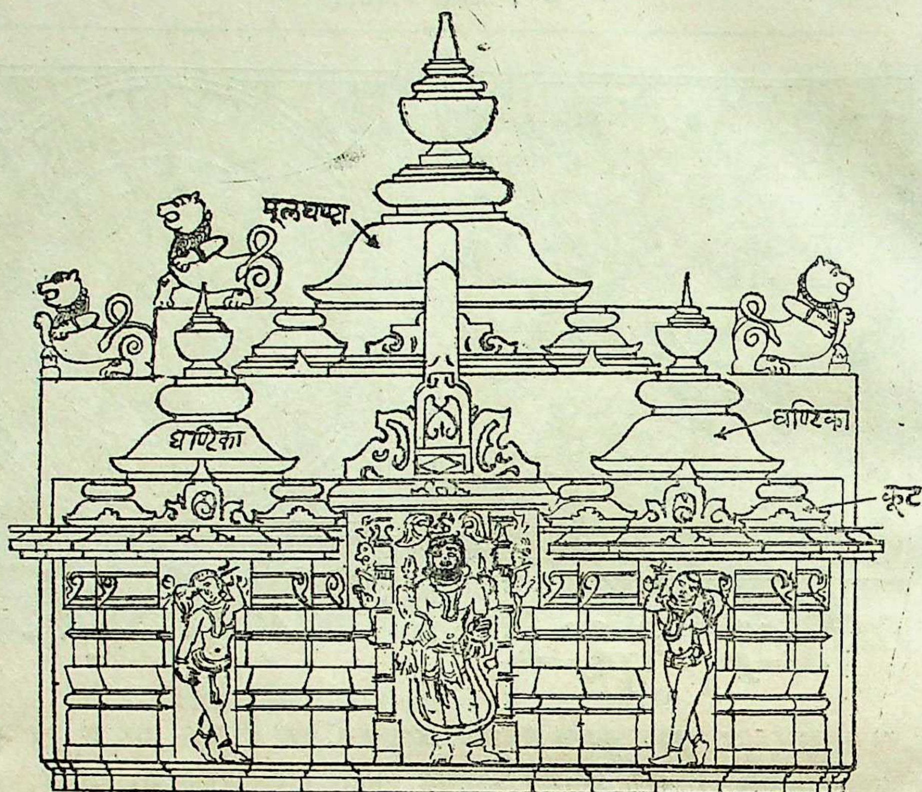
२ राजप्रासादके आगेका बलाणकको "विमान" एवं उत्तुङ्ग भी कहते हैं । उत्तुङ्ग पांच या सात या नौ भूमि मंजिलका होता है । नव भूमि से ज्यादा उदय करना नहीं ।

३ सामान्य घरोंके भवनके आगेका बलाणक "डेहली" को "हर्म्यशाल" कहते हैं । वह मूल भवनका उदयसे नीचा रखना ।

४ नगरके द्वार–दरवाजे परका बलाणकको गोपुर नामक जानना । उसकी गोपुर जैसी आकृति करनी ।

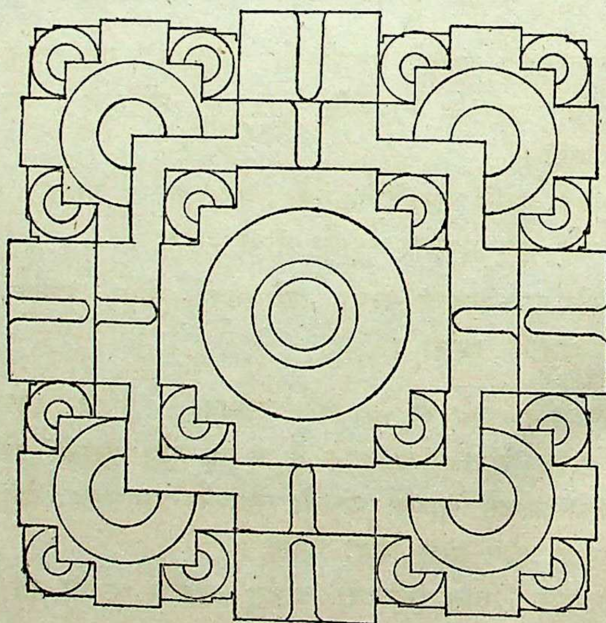
रखना । यदि ऊंचा होवे तो वेध दोष जानना । द्रविड प्रदेशमें मूल प्रासादसे द्वारपरका गोपुरम् बहुत ऊंचा करते हैं । यह प्रथा पुरानी नहि है । विजय नगर राज्यकी उन्नति कालसे चारसो पांचसो साल से द्वारपरका गोपुर ऊंचा करनेका एवं परिघका दो तीन पांच किल्ला करना ।

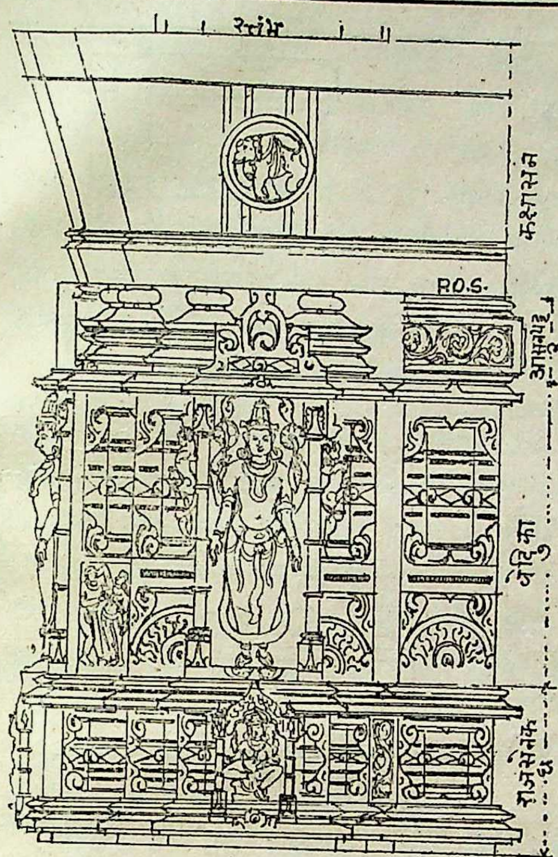
मंडपके उपर वितान (गुम्बज) अर्थात् आकाश या उपरकी चंदनी आच्छादित



पुष्पिका नाम संवर्णा (१) घण्टिका ५ कूट १६. सिंह ८. भाग ८.

प्रभाशङ्कर. ओ. स्थपति.





५ जलाशयके बीच या आगे सीढियांके पहले बनाये हुए बलाणकका नाम पुष्कर जानना ।

इसी रीतसे बलाणकका लक्षण स्थान मान देखके भूमि मंजिल करना। १५४, ५५

अथ संवरणा–[३२]प्रासादके मंडप पर विशेष करके संवरणा (शामरण) हो। उसके पचीश प्रकार कहे हैं। इनके नाम घंटा कूट आदिकी संख्याके साथ शिल्प ग्रंथोमें अलग दिये हुए हैं। वे पांच घंटा से लेकर चार चार घंटाकी वृद्धि करते हुए १०१ घंटे तक पचीश नाम 'संवरणा'का कहा है। प्रथम आठ भाग तलसे शुरु होती है। १५६,५७.

शिवलिङ्ग–प्रासादके मानके अनुसार पाषाणका घटित लिङ्ग–राजलिङ्ग शास्त्रमें कथित विधिसे बनाना। परंतु स्वयंभूलिङ्ग बाणलिङ्ग, अथवा रत्नके लिङ्ग प्रासाद प्रमाणसे न्युनाधिक छोटा या बडा हो तो उसका दोष कहा नहीं है। प्रासादकी जगती से तीन चार एवं पंचगुणा ऐसे तीन विधिसे देवपुर प्रासाद बनाना। १५७,५८

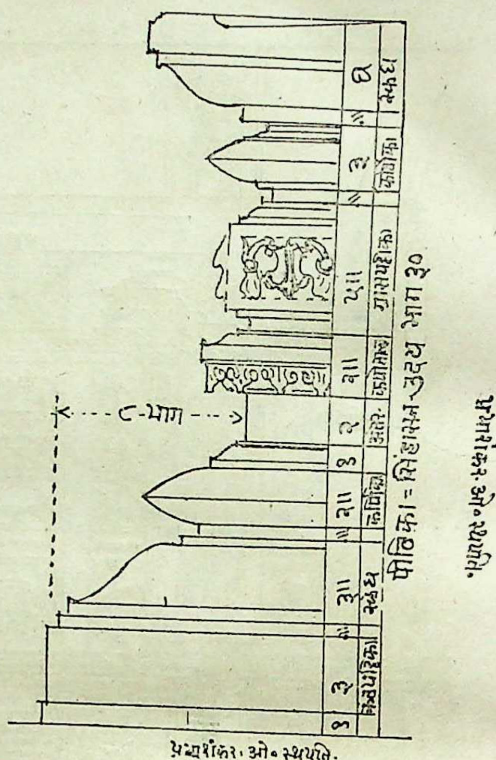
अथ भिन्नादिदोष–ब्रह्मा विष्णु शिव एवं सूर्यके प्रासादमें यदि मकडी आदिके जाले हो तो उसका भिन्नदोष लगता नहीं है। परंतु दूसरे देवो यथा गणेश, गौरी और जिनके प्रासादमें जो ऐसा हुआ तो वहां भिन्नदोष लगता है। लिङ्ग या

३२ संवरणाकी शास्त्रोक्त प्रथा लगभग दो सोक वर्षसे विस्मृत हुई हो ऐसा लगता है। संवरणा के मुख्य अङ्गो के थरो में घंटा, कूट, छाद्यकी उद्गम, उरुघंटा, मूलघंटा और सिंह उरुघंटा शिखरके ऊरुशृङ्ग रुप है। अपराजित दीपार्णव ज्ञानरत्नकोशमें संवरणा विषय दिये गये हैं। संवरणा के अपभ्रंश शामरण हुआ। वर्तमानमें बनती संवरणा अकीला घंटाका थरोकी होती है कूट छाद्यकी या उद्गम नहीं होती।

मुखलिङ्ग के प्रासादमें भिन्नदोष लगता नहीं परंतु दोष कहा हो या न कहा हो तो भी प्रासादमें स्वच्छता रखनी चाहिये । १५९

कहे हुए मान प्रमाणसे अधिक लम्बा चौडा अल्प या वक्र टेढा जो प्रासादमें होवे छंद भेद या जातिभेद या मान हीन होवे तो यह महान दोषका उत्पादक है । १६०

अथ प्रतिमामान–१ गर्भगृहके द्वारकी ऊंचाईके नौ भाग करके उनमें से उपरका भाग तज कर शेष आठ भागो के तीन भाग करके दो भागोकी खडी प्रतिमा और शेष एक भागकी पीठिका (सिंहासन) बनवाना । १६१



२ प्रतिमाका दूसरा प्रमाण–देवगृहके द्वारकी ऊंचाईके ३२ भाग करके जिनमें से चौदाह पंद्राह एवं सोला भागकी खडी प्रतिमाका प्रमाण जानना । और चौदाह तेराह एवं बाराह भाग की बैठी प्रतिमा का प्रमाण जानना १६२

प्रासादके चोरस क्षेत्रके दश भाग करके दो दो भागकी दीवारोंकी मोटाई जाननी । शेष छ भागका गर्भगृह जानना । १६३ । उस गर्भगृहके तीसरे भागकी प्रतिमा का ज्येष्ठमान जानना । दसवां भाग कम करनेसे मध्यमान और पांचवा भाग हीन करनेसे कनिष्ठ मान प्रतिमाका जानना [33] १६४ (ये प्रतिमाका तीसरा मान)

३३ प्रतिमा प्रमाणका चोथामान–प्रासादके दो कर्ण तक का मापका चौथे भागकी प्रतिमा का प्रमाण जानना । शेषशायी–सुप्त प्रतिमाका प्रमाण कहते है । गर्भगृहके सात भाग करके उनमेंसे पांच भागकी शयन प्रतिमा लम्बी करनी । प्रतिमाका पांचवाँ प्रमाण–एक से पांच हाथ तक के प्रासादके लिये प्रत्येक गज छ छ आंगुल, छ से दश हाथ तक के प्रत्येक हस्ते तीन तीन आंगुल, ११ से ५० तक के प्रासादके लिये प्रत्येक हाथ एकैक आंगुलकी वृद्धि करने से बैठी प्रतिमाका मान समजना । छट्ठा प्रमाण खडी प्रतिमाका ११ आंगुल से एक हाथ के प्रासादके लिये ११ आंगुलकी खडी प्रतिमा चार हाथ तक प्रत्येक गज दश दश आँगुलकी वृद्धि

अथ प्रतिमा द्रष्टिमान[३४]—गर्भगृहके द्वारकी ऊचाईके आठ भाग करके उपरका भाग छोडकर सातवे' भागके फिर आठ भाग करके उसके सातवें भाग पर देवद्रष्टि वृषाय--सिंहाय या ध्वजाय पर रखना शुभ है। १६५

उपरोक्त आठ भागो में से छट्ठे भागके आठ भाग करके उनमें से पांचवें भाग पर लक्ष्मीनारायणकी द्रष्टि रखनीः शेषशायीन भगवान और मुखलिङ्गकी द्रष्टि द्वारके अर्धभाग पर रखनी। परंतु द्वारके नीचेका अर्ध भागका उल्लंघन करके (शिवलिङ्ग सिवाय) द्रष्टि न रखनी।

देवता पद स्थापन—[३५]गर्भगृहके पृष्ठ पाट–भारवटके नीचे यक्ष भूतादिकी

करनी। ५ से १० हाथ तक के प्रासादके लिये प्रत्येक हाथ दो दो आंगुलकी वृद्धि करनी ११ से ५० हाथ तक के प्रासादके लिये प्रत्येक गज–हाथ एकैक अंगुलकी वृद्धि करनी यह उत्तम मान कहलाता है।

३४ देवता द्रष्टि संबंधमें विभिन्न ग्रंथोमें मत मतांतर कहे हुए हैं। यहाँ दिये हुए द्रष्टि विभाग में वृष, सिंह और ध्वज आय देनेका विधान है। ऐसा सू० मंडनका भी कथन है। इन दोनों भाईयों का मत, विश्वकर्मा प्रणीत ग्रंथो और अन्य कोइ भी प्राचिन ग्रंथोमें आय प्रमाण विषयक नहीं दिया गया हे। एक पुराने ग्रंथमें गजांश शब्दका प्रयोग कीया हे किन्तु इसका अर्थ सातवाँ भागके बदलेमें कहा है नहीं के आय के हिसाबसे।

शिल्पि वर्ग तो विभागसे जहां द्रष्टि सूत्र बताया हो वहीं पर बरावर चक्षुकी पुतलीका गर्भका मिलान करता है। अब कितनेक जैन विद्वान द्रष्टि सूत्रमें आय मेलका आग्रह रखते है।

अपराजित सूत्र, क्षीरार्णव, दीपार्णव, समराङ्गण सूत्रधार, ठक्करफेरु वास्तुसार आचार्य वसुनंदी कृत प्रतिष्ठासार–ये सभी ग्रंथकार द्रष्टि सूत्रमें एक मत नही है। बहुत अंतर है। इसी प्रकार प्रतिमा स्थापन पद विभाग विषयमें भी यही बात है।

द्रष्टि सूत्रके आये हुए मान से आयका मेल बिठाते हुए द्रष्टि नीची रखनी पडती है। यह प्रश्न वडा विवादास्पद है। ऐसा हम मानते हैं। 'देवता मूर्ति प्रकरण' और 'ज्ञान रत्नकोश' ग्रंथमें द्रष्टि विषयमें विभिन्न मत है। इस सम्बन्ध में बहुत विस्तार से दिपार्णव ग्रंथके अनुवाद प्रकाशन में कोष्टकादि से स्पष्टिकरण किया गया है।

३५ देवता पद स्थापन विभागमें भिन्न भिन्न मत है। क्षीरार्णव, दीपार्णव, अपराजित सूत्र, ज्ञान रत्नकोश ग्रंथोमें गर्भगृहके २८ भाग करके अमुक विभागमें अमुक देव स्थापन करनेका कहते हैं–देवता मूर्ति प्रकरणम् और समराङ्गणे

प्रतिमा स्थापित करनी । पाटडे–भारवटके आगे सभी देवताओंकी स्थापना करनी। उनसे भी आगे विष्णु एवं उनसे भी आगे ब्रह्माकी स्थापना करनी। गर्भगृहके मध्यमें शिवलिङ्गकी स्थापना करनी । १६७

अथ प्रतिष्ठा मुहूर्त—पूर्वोक्त (श्लोक २७ में) कहा हुआ सप्त पुण्याह दिन और प्रतिष्ठा करने से सर्वसिद्धि प्राप्त होती है। सूर्य उत्तरायणमें हो उस समय प्रासादकी प्रतिष्ठा करनी शुभ है। १६८

प्रतिष्ठाके शुभ नक्षत्र—तीन उत्तरा : उत्तराषाढा, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तरा भाद्रपद, मूल, आर्द्रा, पूनर्वसु, पुष्य, हस्त, मृगशीर्ष, स्वाति, रोहिणी, श्रवण और अनुराधा इतने नक्षत्रोंको प्रतिष्ठा कार्यमें शुभ जानना । १६९

वर्जनीय—रिक्तातिथि, मंगलवार, नक्षत्रवेध नेष्टग्रह, दग्धातिथि, अपयोग, गंडात योग चर राशि और उपग्रह ये सर्व प्रतिष्ठादि शुभ कार्यमें त्याज्य हैं । १७०

शुभदिन शुभ मुहूर्तमें शुभ ग्रह लग्नमें सौम्य ग्रह देखकर राज्याभिषेक देवप्रतिष्ठा और गृह प्रवेश कराना शुभ है । १७१

प्रतिष्ठामंडप—प्रासादके आगे या ईशान या उत्तर दिशामें प्रासादसे तीन पांच सात नौ ग्यारह या तेरह हाथकी दूरी पर प्रतिष्ठाके यज्ञमंडपका निर्माण करना । १७२ यह मंडप आठ दश बारह या सोलह हाथ तकके प्रमाणका समचतुरस करना। कुंडोकी अधिकता के कारण सोल हाथसे भी अधिक प्रमाणका

सूत्रधार में ४९ विभाग गर्भगृहके कहते हैं और भी मत दिया है । सूत्रधार वीरपाल विरचित प्रासाद तिलक में और सूत्रधार राजसिंह विरचित वास्तुराज ग्रंथ ये प्रासाद मञ्जरीके नाथुजीके मतका समर्थन करते हैं। प्रासाद मंडनमें सूत्रधार मंडन भी यह मत बताते हैं। दोनों भ्रातृके एकी मत है। परंतु मंडनके अन्य ग्रंथमें भिन्न मत प्रदर्शित किया है। शिव विष्णवादि देव मंदिरोंमें विधि सहित कथित विभागोमें स्थापित किये गये हैं। उनके पीठे प्रदक्षिणा मार्ग प्रथानुसार रहता है। किन्तु जैन प्रतिमाको पधरानेका विधान शास्त्रोक्त विधिसे देखने में आया नहीं है। बडे बडे जैन प्राचिन तीर्थोंमें भी नहीं है। बावन जिनालय या चोविस जिनालयकी देवकुलिकाओं में कथित भागसें पधरानेका व्यावहारिक नहीं होता। दूसरे देवोंके लिये विभागसे स्थापन हो सकता है। जिन प्रभुके लिये तो विचारणीय है। जिन प्रभु "पट्टाधो यक्षभूताद्या" सूत्रके आधारसे स्थापना होती है। अठाइश विभाग जो कहे हैं ये अन्य देवोके लीये ठीक है।

कहा हुआ विभाग प्रतिमाका कर्ण गर्भमें पादुका गर्भमें अथवा बाहु गर्भमें स्थापन करनेका शास्त्र प्रमाण है।

मंडप करना । १७३ (यज्ञ मंडप बीस गज–हाथका बनानेका विधान तुला प्रदान के विषयमें है।) तोरणोंसे सुशोभित सोलह स्तंभोके मंडपमें चारों ओर चार द्वार रखना। मंडपके मध्यमें वेदिका और पांच आठ या नव कुंड बनाना। १७४

यज्ञकुंडका मान—एक हाथके यज्ञकुंडके तीन मेखलाएं और योनि बनानी। आगम एवं वेद-मंत्रसें विधिपूर्वक देवताओंको आमंत्रित करके यज्ञ होम करना। १७५ दशहजार आहुतियों के लिये एक हाथका, पचास हजार आहुतिओं के लिये दो हाथका, एक लाख आहुति के लिये तीन हाथका। दश लाखके लिये चार हाथका, त्रीश लाखके लिये पांच हाथका, पचास लाखके लिये छ हाथका, एंसी लाखके लिये सात हाथका; एक करोड आहुतियों के लिये आठ हाथका यज्ञकुंड बनानेके प्रमाण है। १७६–७७ ग्रह पूजा आदि विधान के लिये एक हाथका कुंड बनाना। उसके चार तीन एवं दो अंगुलकी तीन मेखलाएं अनुक्रम से करनी। १७८

वेदी उपर एक दो या तीन हाथका मंडल भरना। ब्रह्मा विष्णु एवं सूर्य के लिये सर्वतोभद्र मंडल भरना। १७९

सर्व देवताओंकी प्रतिष्ठामें भद्रं नामक मंडल भरना। तथा नव नाभि वाला लिङ्गोद्भव मंडल भरना। शिवप्रतिष्ठा में लिङ्गोद्भव तथा लता लिङ्गोद्भव नामक मंडल भरना। १८० सर्व देवीओंकी पूजा प्रतिष्ठामें भद्र मंडल तथा गौरी तिलक नामका मंडल भरना। तालाब की प्रतिष्ठा में अर्धचंद्र मंडल धनुष्याकार भरना। १८१

स्थपति पूजन–विधिपूर्वक देव प्रतिष्ठा यज्ञयागादि करके सूत्रधार प्रमुख स्थपतिकी सन्मान पूर्वक पूजा करके भूमि, उत्तम प्रकार के वस्त्र, सुवर्ण रत्नादि के आभूषण द्रव्य, गौएं, दास दासियां, गृह, घोडे आदि वाहन देकर संतुष्ट करना। अन्य कार्य कर्ता शिल्पिओंका भी योग्य रीतिसे पूजन करके अपनी अपनी योग्यता के अनुसार उन्हें वस्त्र भोजन ताम्बुल आदिसे सन्मान करना। १८२–८३ तत्पश्चात् यजमान अर्थात् गृहपतिको मुख्य स्थपति से इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये कि —"हे स्थपते हमारा पुण्य प्रासाद पूर्ण हुआ।" इसके उत्तरमें स्थपति को कहना चाहिये कि–"हे स्वामिन्, आपका कार्य अक्षय हो।" १८४

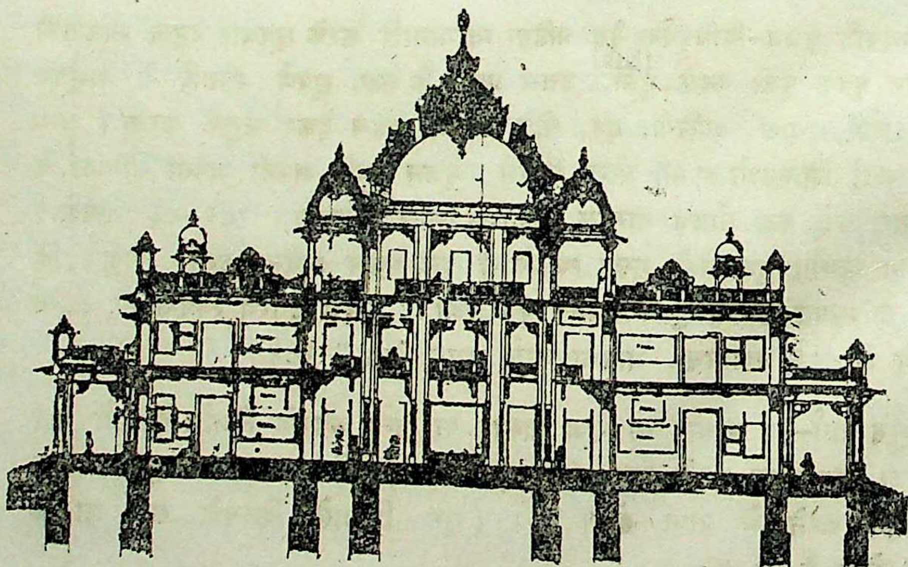
गुरु मार्ग–देव प्रासाद या राज प्रासाद वा अन्य भवनके निर्माण के लिये सर्व प्रकारका शिल्पज्ञान उसके लक्ष (ध्येय) एवं लक्षणोंका अभ्यास गुरु मार्गका अनुसरण करने से प्राप्त होता है। (गुरु शिक्षासे शिल्पके सर्व ज्ञानकी प्राप्ति होती है।) १८५

शिल्पशास्त्र अनेक है–एक शास्त्रके अभ्याससे सभी गुणोंका विकास नहीं होता है। अन्य ग्रंथोके अभ्यास के बिना कार्यकी सिद्धि नहीं होती है। इस लिये प्रकारान्तर–अन्य मतमतान्तरों का विचार कर विवेक बुद्धिसे कार्य करना चाहिये। जिस प्रकार मणिके गुण जानने के लिये किंकिणी की सहायता लेनी पडती है इसी प्रकार महान गुणवान पुरुषोंको तो बहुत ग्रंथोका अभ्यास मनन करके कार्य करना चाहिये । १८६

इस प्रकार शिल्प ग्रंथोका संशोधन करके साररूप यह वास्तु मञ्जर्यान्तर्गत प्रासाद मञ्जरी की श्री क्षेत्र (खेता) सूत्रधार के पुत्र सूत्रधार श्री नाथजीने रचना की । १८७

इति श्री मेवाडाधिप पृथिवी पति राजमल्लजी राज्ये सूत्रधार क्षेत्रा (खेताका) पुत्र विविध कला शास्त्रका सुधीर सोमपुरा ज्ञातिय भारद्वाज गोत्रमें उत्पन्न सूत्रधार नाथजीने वास्तुमञ्जरी के प्रासादाधिकारके दूसरा स्तबक का निर्माण किया ।

पादलीप्तपुर (पालीताणा) स्थपति प्रभाशंकर ओघडभाई शिल्प विशारद । सोमपुरा ज्ञातिय भारद्वाज गोत्रने इस प्रासाद मञ्जरी पर गुर्जर भाषान्तर कर सुप्रभ नाम्नी भाषा टीकाकी रचना की जिसका राष्ट्रभाषा हिन्दीमें पुनः अनुवाद सोमपुरा भारवेन्दुने किया ।



एक हस्तः गजसे पचास गज तकके प्रासादका कूर्मशिला, जगती भीट, पीठ, उदयमान, द्वारमान, स्तंभमान, खडी, बेठी प्रतिमाके प्रमाणका कोष्टक

शिवलिङ्ग स्वरूप तत्त्वो

शिवलिङ्ग

दिगम्बराचार्य

ठक्कुर फेरु वास्तुसार मत

१ शिवलिङ्ग

२ शिव-शक्ति

प्रासाद मंडन प्रत द्वारोदय आठ

२ शिवलिङ्ग

विविध ग्रंथोके मतानुसार देवद्रष्टि स्थान दर्शक कोष्टक

सूत्रसंतान-अपराजित	दीपार्णव वास्तुविद्या क्षीरार्णव	प्रतिष्ठासार दी. वसुनंदी	वास्तुसार ठक्कुर फेरु	प्रासादमंडन प्रासादमञ्जरी
६३ वैताल	३२ ०	९	१०	८
६१ भैरव	३१ ०			
५९ चंडी	३० ०			
५७ अघोररुद्र	२९ भैरव चंडिका		१ छत्र चामर-घर देवी	
५५ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र जिन	२८ ०	८		७ -ब्रह्मा-विष्णु -सूर्य, जिन
५३ हरसिद्धि	२७ ब्रह्मा विष्णु रुद्र सूर्य			
५१ पद्मासन त्रिमूर्ति	२६ मानवचंद्र		८ चंडिका	
४९ गणेश-सरस्वती	२५ कुवेर			
४७ धाता (ब्रह्मा)	२४ सरस्वती गणेश	७ -जिनप्रभु		६
४५ लक्ष्मीनारायण	२३ ०		-७ शासन देव - देवी यक्ष - यक्षणि	-लक्ष्मीनारायण
४३ ऋषिमुनि	२२ ०			
४१ ब्रह्मयुग्म	२१ लक्ष्मी जिन		-जिनप्रभु	
३९ बुध	२० दुर्गा ऋषिमुनि ब्रह्मयुग्म	६		५
३७ उमारुद्र	१९ बुद्ध चित्रलेप		-६ चित्रलेप प्रतिमा	
३५ भृंग वहार	१८ उमा रुद्र विष्णु लक्ष्मी ब्रह्मा सावित्री			
३३ यक्ष	१७ ०	५		४ शेषशायी
३१ मातर	१६ यक्षराज		५ वराह	
२९ गरुड	१५ ०			
२७ जलशायिन विष्णु	१४ मातृदेवी	४		
२५ शेषनाग	१३ ०		४ लक्ष्मी नारायण	
२३ व्यक्त	१२ शेषशायिन			३
२१ व्यक्ताव्यक्त	११ ०	३		
१९ अव्यक्त	१० ०		३ शेषशायी	
१७ ↑	९ ० ↑			
१५	८-			२ शिवलिङ्ग
१३	७-	२	२ शिव-शक्ति	
११ शिवलिङ्ग स्वरूप तथा	६- शिवलिङ्ग			
९	५-	१		
७	४-			१
५	३-		१ शिवलिङ्ग	
३	२-			
१ ↓	१- ↓			

सूत्रसंतान अपराजित ६४ विभाग द्वारोदय

ज्ञानप्रकाश दीपार्णव वास्तुविद्या द्वारोदय ३२ विभाग

दिगम्बराचार्य वसुनंदि प्रतिष्ठासार मत द्वारोदय नव विभाग सातवां भागका नौ भाग करके सातवा विभागे जिन दृष्टि

निम्न छ भाग त्याग ——→ सातवां भागका नव विभाग करके सातवा भागे जिनदृष्टि ←उपरका दो भाग त्याग

ठक्कुर फेरु वास्तुसार मत द्वारोदय दस भाग — सातवां भागका दस भाग करके सातवां भाग जिनदृष्टि

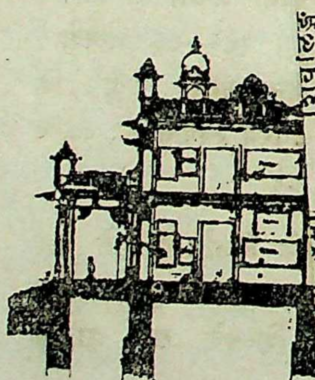
प्रासाद मंडन मत द्वारोदय आठ भाग ——→ छठ्ठा भाग मे आठ भाग करके पांचवा — सातवां भागका आठ विभाग करके सातवां भाग

शिल्पशास्त्र अ
होता है। अन्य ग्र
प्रकारान्तर–अन्य म
जिस प्रकार मणिके
इसी प्रकार महान
कार्य करना चाहिये

इस प्रकार शिल
प्रासाद मञ्जरी की
रचना की। १८७

इति श्री मेवाडाधि
पुत्र विविध कला शा
नाथजीने वास्तुमञ्जरी व

पादलीप्तपुर (पा
सोमपुरा ज्ञातिय भा
कर सुप्रभ नाम्नी भा
अनुवाद सोमपुरा भारते

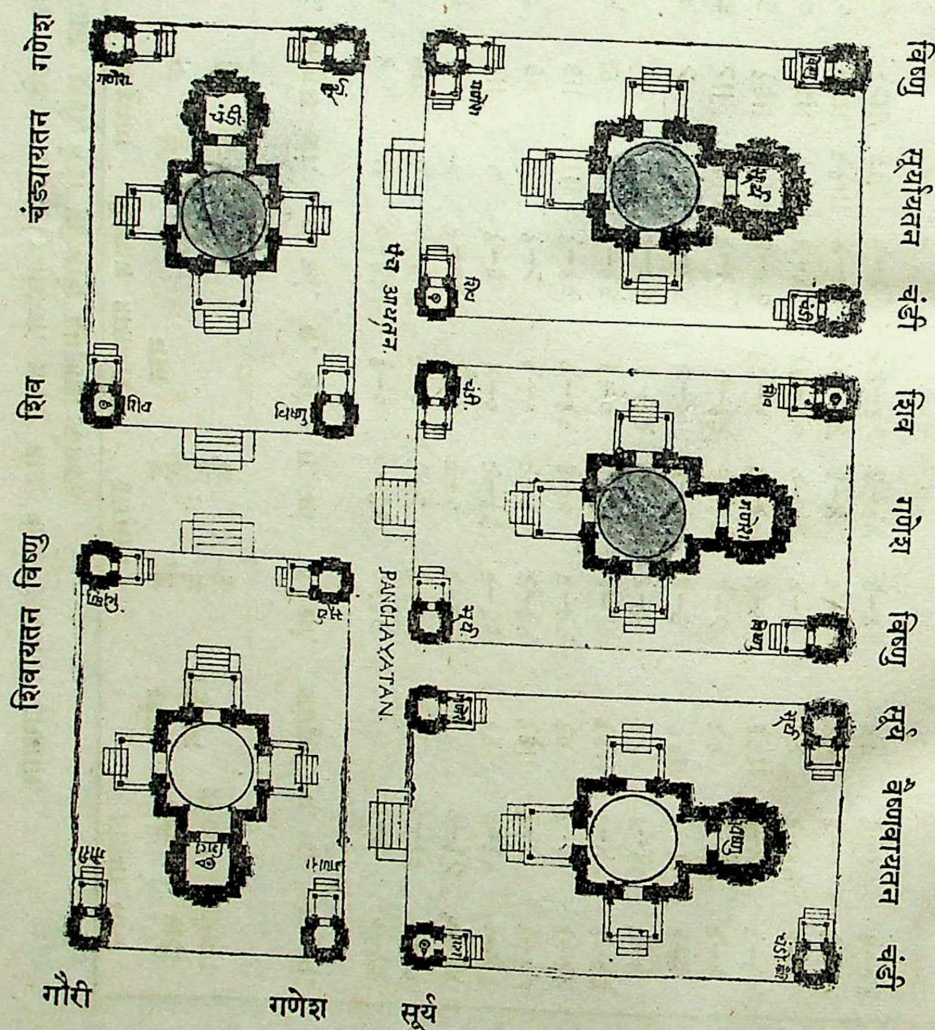


एक हस्तः गजसे पचास गज तकके प्रासादका कूर्मशिला, जगती भीट, पीठ, उदयमान, द्वारमान, स्तंभमान, खडी, बेठी प्रतिमाके प्रमाणका कोष्टक

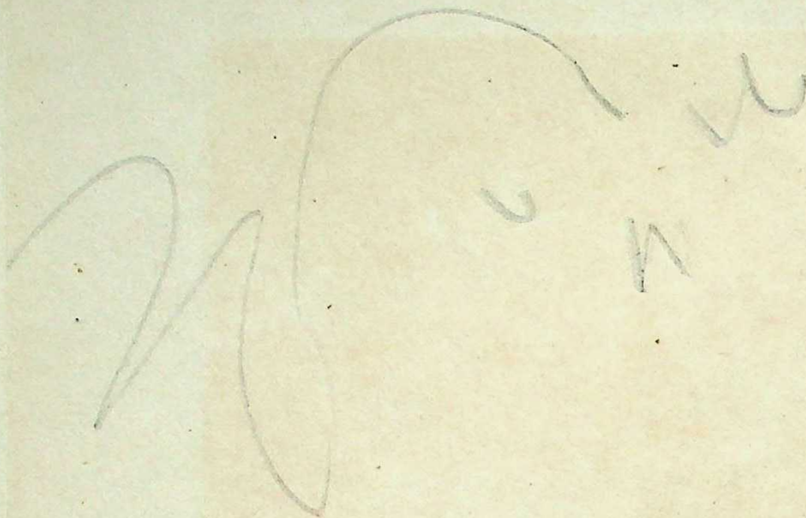
प्रासाद गज १ से ५०	कूर्मशिला		जगती प्रमाण		भीट्टमान		पीठमान	प्रासादोदय मान	द्वारमान		स्तंभ	प्रतिमा मान	
	चांदी	पाषाण दीपार्णव	दीपार्णव	क्षीरार्णव प्रा० म.	प्रा. म.	दीपार्णव			क्षीरार्णव	दीपार्णव	पृथुमान	बेठी प्रतिमा	खडी प्रतिमा
	आंगुल	आंगुल	हाथ आं.	ग. आ.	आंगुल	आं.	ग. आं.	ग. आं.	ग. आं.	ग. आं.	आंगुल	ग. आं.	ग. आं.
१ गज	०॥ आं.	४	१ गज	०–१२	४	४	०–१२	१–०	०–१६	०–१६	४	०–६	०–११
२ गज	१ आं.	६	१–१२	१–०	४॥	५	०–१७	२–०	१–८	१–८	७	०–१२	०–२१
३ गज	१॥ आं.	९	२–०	१–१२	५	६	०–२२	३–०	२–०	२–०	९	०–१८	०–३१
४ गज	२ आं.	१२	२–१२	२–०	५॥	७	१–३	४–०	२–१६	२–१६	१२	०–२४	०–४१
५ गज	२॥ आं.	१२॥।	३–०	२–१२	६	८	१–८	५–०	२–२०	२–१९	१३॥	१–३	१–१७
६ गज	३ आं.	१३॥	३–१२	३–०	६॥	८॥।	१–१२	५–१२	३–०	२–२२	१५	१–६	१–२१
७ गज	३॥ आं.	१४।	४–०	३–१२	७	९॥	१–१६	६–०	३–४	३–१	१६॥	१–९	१–२३
८ गज	४ आं.	१५	४–१२	४–०	७॥	१०।	१–२०	६–१२	३–८	३–४	१८	१–१२	२–१
९ गज	४॥ आं.	१५॥।	५–०	४–१२	८	११	२–०	७–०	३–१२	३–६	१९॥	१–१५	२–३
१० गज	५ आं.	१६॥	५–१२	५–गज	८॥	११॥।	२–४	७–१२	३–१६	३–८	२१	१–१८	२–५
२० गज	८॥। आं.	२२	९–४	८–१६	१३॥	१६॥।	३–१०	१२–५	४–२२	४–४	३२॥	२–४	२–१५
३० गज	११। आं.	२५॥	१२–०	११–०	१८॥	१९।	४–४	१६–१०	५–१८	५–०	४२	२–१४	३–१
४० गज	१२॥ आं.	२७॥	१४–१२	१३–०	२३॥	२१॥।	४–२२	२०–१४	६–४	५–२०	४७	३–०	३–११
५० गज	१४ आं.	२८॥।	१७ गज	१५–०	२८॥	२४।	५–८	२४–१८	६–१४	६–१६	५२	३–१०	३–२१

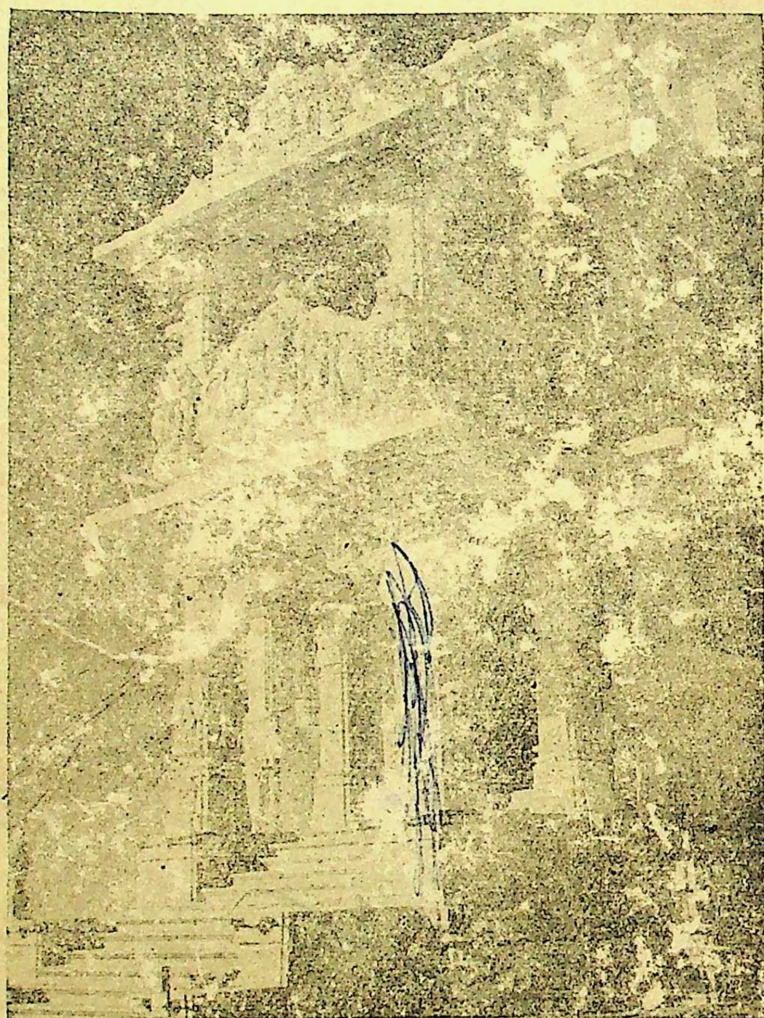
पंचायतन देवोकी देवकुलीका स्थान।

आयतन	ईशान	अग्नि	नैऋत्य	वायव्य
सूर्यायतन	शिव	गणेश	विष्णु	चंडी
गणेशायतन	सूर्य	चंडी	शिव	विष्णु
वैष्णवायतन	सूर्य	गणेश	शिव	चंडी
चंड्यायतन	विष्णु	शिव	गणेश	सूर्य
शिवायतन	विष्णु	सूर्य	गणेश	गौरी









श्री सोमनाथजी महाप्रासाद के प्रवेश भाग